Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों की सुविधा एवं बचत के लिए

नये रूपाकार में सारिका का यह अंक आपके हाथों में है. इस रूपाकार में हम आपको 100 पृष्ठों से अधिक की सामग्री 76 पृष्ठों में ही दे रहे हैं जबकि मूल्य में वृद्धि केवल 50 पैसे की ही हुई है. यदि आप वार्षिक चंदा हमें सीधे भेजें तो वर्ष में आपको 6 रुपये की और भी बचत हो सकती है. आपको करना केवल इतना है कि अपने शुल्क का राशि हमें बैंक ड्राफ़्ट/मनी आर्डर/पोस्टल आर्डर सहित नीचे दिये गये कूपन के साथ तत्काल भेज दें.

शुल्क की रियायती दरें इस प्रकार हैं :

देश में (बंगलादेश, नेपाल सहित)

वार्षिक : 90 रुपये

छमाही : 47 रुपये

विदेश में सिर्फ समुद्री डाक से :

144 रुपये वार्षिक

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह मास के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम ....

पता ....

....

....

हस्ताक्षर ....

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें.

मुख्य प्रसार प्रबंधक
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

अगला अंक

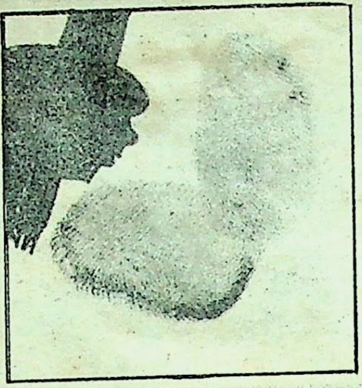

चोरी के लिए उठा हुआ हाथ व्यवस्था के प्रति विद्रोह होता है या अपराध...?

ज्यों-ज्यों समाज शिक्षित और सभ्य होता जा रहा है त्यों-त्यों बढ़ते ही जा रहे हैं अपराध, पुलिस और जासूस! . . . पिछले सौ साल से लेकर अब तक अपराधियों एवं जासूसों की आंख-मिचौली के क्रिया-कलाप और कार्यप्रणाली को रेखांकित करती सारिका : रजत जयंती वर्ष की चौदहवीं भेंट—

अपराध और जासूस कथा अंक

अपराध और जासूस-जगत में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और मनोविज्ञानिक संदर्भों सहित—चोरी-डकैती, ठगी-जालसाजी, धोखा, मिलावट और हत्या के पहलुओं को उजागर करती, जमीन से लेकर आसमान तक पहुंचे जासूसी साधनों के संग-साथ चलती देश-विदेश की रोचक, लोमहर्षक और नये से नये रहस्य खोलती अनेक रचनाएं, जिनके प्रख्यात और सिद्धस्त कथाकार हैं—

देवकी नंदन खत्री, दुर्गाप्रसादखत्री, श्रीलाल शुक्ल, जैक रिची, सत्यजित राय, अगाथा क्रिस्टी, ओ. हेनरी, जान ओ' हारा, फ्रेडरिक फोरसीथ, अलेक्सांद्र सेराफीमोविच, एल्फ्रेड हिचकॉक, आर्थर कानन डायल, बाला दुबे, डोरथी एल. सेअर्ज आदि.

- आत्मावलोकन
- जाते हुए लोग—इंदु तेजेंद्र की कहानी—'मध्यान्ह के बाद'
- छात्र-वर्ग में पनपती अपराध प्रवृत्ति : विनय विश्वास

सारिका 16-31 जुलाई, 1985

अपनी प्रति आज ही सुरक्षित करवा लें.

प्रत्येक अंक : विशेष अंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

विचित्र-कथा-अंक

प्रेत की प्रासंगिकता

ठाकुर प्रसाद सिंह की 'प्रेत', फ्रंज काफ्का की 'कायाकल्प' तथा एच. जी. वेल्स की 'अंधों का देश' ने काफी भीतर तक प्रभावित किया. अंक सार्थक रहा. विशेष कथा 'प्रेत' रही तथा उस पर प्रदीप पंत की टीप भी महत्वपूर्ण एवं ध्यानाकर्षक लगी. मगर पंतजी, क्या आज भी हममें से ज्यादातर लोग 'प्रेत' नहीं हैं? पंत जी, मुझे तो 'प्रेत' व्यर्थ नहीं अपितु मानवीय स्वभाव एवं दुर्बलताजन्य एक सूक्ष्म शरीरी मगर दुर्दम्य व सशक्त व्यक्तित्व प्रतीत हुआ. वास्तव में इस 'प्रेत' की उत्पत्ति सर्वहारा या सामान्य जनता की सामंतवादी व्यवस्था (तानाशाही भी कह सकते हैं) द्वारा की गयी उपेक्षा, प्रताड़ना, शोषण के फलस्वरूप प्रतिक्रियावश होती है. यह 'प्रेत' गरीब जनता के आत्मसम्मान का प्रतीक भी है जो कहानी के राजपूत (पात्र) की तरह नष्ट एवं मिट्टी में मिल जाता है. कहानी मूलरूप में कुछ भी रही हो, ठाकुर प्रसाद सिंह द्वारा कथ्य का प्रस्तुतीकरण दादा-नानी की याद दिला गया, साथ ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी चित्रण भी नेत्रों को सजल कर गया. इन सबके मूल में उभरी—शोषित की विवशता.

'कायाकल्प' में 'स्वप्न' की स्वाभाविक स्थितियों का अर्थपूर्ण चित्रण है.

0 के. पी. भारती, लखनऊ

विश्व साहित्य और हिंदी की समृद्धि

विचित्र कथा विशेषांक हिंदी पत्र जगत की एक उपलब्धि है. इतने कम समय में ही सारिका ने हिंदी पाठकों को विश्व साहित्य के जितने आयामों से परिचित करा दिया है, वह प्रशंसनीय है.

कहने की बात मात्र यही है कि सारिका, ऐसी स्तरीय पत्रिका में **'विचित्र वृत्तांत'** के अंतर्गत **'डा. जेकल एंड मि. हाईड'**, **'पागल परिंदे'**, **'राजनीति की शवयात्रा'**, **'कायाकल्प'**, **'बेरिनेस'** सरीखी रचनायें ही शोभा देती हैं, जादू-टोने आदि से संबंधित सामग्री नहीं. भूत-प्रेत, जादू-टोने आदि के अंतर्गत तो जो चाहे कह दिया, सब समीचीन है. **एच. जी. वेल्स** का **'अंधों का देश'** अनुवाद की काफी संक्षिप्तता के कारण संप्रेषणीयता खो बैठा है.

भाई **राकेश वत्स** अपने कथन में सर्वथा सही हैं, उनकी **तीसरी नजर** वस्तुतः सटीक होती है. बधाई.

0 चंद्रमोहन प्रधान, मुजफ्फरपुर

अनावरण आवरण का

एक 'आधुनिक कला' की चित्र प्रदर्शनी में एक चित्र को देखते हुए एक सज्जन के मुंह से अचानक निकल पड़ा, "अरे वाह! चित्र देखकर तो मुंह में पानी आ गया." पास ही खड़ा कलाकार यह सुनकर चौंका. "मुंह में पानी, श्रीमान, यह आधुनिक चित्र जीवन की जटिलता का प्रतीक है." सज्जन को विश्वास न हुआ, आश्चर्य से बोले, "अच्छा, मैं तो समझा था कि यह जलेबी है."

कहने का तात्पर्य यह कि आधुनिक कला के चित्रों के बारे में जब तक कलाकार खुद नहीं बता देता कि वह चित्र किस बात का प्रतीक है, तब तक दर्शक (भले ही वह कला पारखी हो) निश्चय ही स्वतंत्र होता है अपने मन से उसे समझकर आलोचना या प्रशंसा करने के लिये.

सारिका के मुखपृष्ठों के चित्रों का भी यही हाल रहा है सदा ही. खासकर जब से रजत जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में विशिष्ट सामग्रियों के आधार पर अंक आ रहे हैं. निःसंदेह रूप से आपने बहुआयामी और बहुअर्थी विचार को ध्यान में रखते हुए आधुनिक चित्रों का चुनाव किया है. यद्यपि सारिका के मुखपृष्ठ के चित्र कल्पनाशीलता के बहुत से अर्थ पाठकों के सामने परत दर परत खोलते चले जाते हैं, तथापि सही अर्थ आपके विवरण से ही स्पष्ट हो पाता है और तभी उस चित्र की सार्थकता भी उस अंक विशेष के लिये स्पष्ट हो पाती है.

चित्र मारयो के रहे हों या अमित चक्रवर्ती के या सज्जाकार सुमीता के रहे हों, आवरण पर एक पहेली-सा तो आनंद अवश्य देते हैं.

सारिका द्वारा मनाये जा रहे रजत जयंती वर्ष के विशेषांकों के लिये बधाई देने के क्रम में आवरण के चित्रकारों को नजरअंदाज कर देना सरासर नाइंसाफी होगी कलाकारों के साथ. अंक हाथ में आने पर सबसे पहले तो आवरण को ही पाठक देखते हैं और कुछ पल सोचते भी हैं कि चित्र अंक के अनुकूल है क्या. ऐसी स्थिति में तो बधाई सर्वप्रथम आवरण के चित्रकारों को ही दी जानी चाहिये.

आवरण चित्रों के सभी कलाकारों को मेरी ओर से बधाई व हार्दिक शुभकामनायें.

0 डॉ. सुशील कुमार गुप्त, खगड़िया

मूक समर्थन की सजा

अभी तक सब कुछ सहनीय लग रहा था लेकिन **विचित्र कथा विशेषांक** और **गोविंद मिश्र** के पत्र को पढ़कर लगा कि हालात वाकई असहनीय हो चुके हैं.

इस अंक को पढ़कर मुझे लगा कि **सारिका** का विस्तार उचित नहीं रहा. अगर इस सामग्री को पाकेट बुक संस्करण के रूप में छापा जाता तो सस्ते उपन्यासों का मजा लिया जा सकता था और तब **'रत्नप्रभा की कथा'** अधूरी छोड़ने की नौबत नहीं आती. क्योंकि तब हमारी मानसिकता व अपेक्षा बदल गयी होती. शायद यह अंक हमारे पिछले मूक समर्थन की सजा है.

0 महेंद्र कुमार अग्रवाल, शिवपुरी

अपेक्षित—अनपेक्षित

विचित्र कथा विशेषांक अन्य विशेषांकों की अपेक्षा काफी फीका रहा. **'अपनी बात'** में आपने इस विशेषांक की जो अच्छी भूमिका दी है वह कहानियों में परिलक्षित नहीं होती है.

गोविंद भाई की आलोचना गले से नीचे नहीं उतरती है. वास्तव में **सारिका** ही केवल एक ऐसी पत्रिका है जो अपना साहित्यिक रूप बरकरार रखे हुए है. विज्ञापन युग में भी साहित्य को लगातार प्रोत्साहन देने का श्रेय हिंदी पत्रिकाओं में केवल सारिका को ही है. हां, यह बात जरूर है कि सारिका के रजत-जयंती वर्ष में विशेषांकों से जितनी अपेक्षा की की उतना अच्छा प्रारूप वे नहीं दे पाये, हालांकि कुछ विशेषांक अच्छे बन पड़े हैं.

0 संजीव कुमार देव, फालना

जरूरत भाषायी सद्भाव की है

कोई भी कहानी **विचित्र कथा** जैसी नहीं लगी. किसी भी कथा को पूरा पढ़ने का मन नहीं हुआ.

इससे पहले अन्य विशेषांक भी पढ़े थे, परंतु उन अंकों में फिर भी कुछ कहानियों में पढ़ने-सोचने की सामग्री रही.

सारिका को हिंदी के पक्ष में नये वातावरण का वाहक बनना चाहिए. नये-नये विचारों, आंदोलनों को अभिव्यक्ति प्रदान करने तथा साहित्यिक पक्ष के साथ-साथ हिंदी के व्यावहारिक पक्ष को उभारने का माध्यम भी बनना चाहिए. हिंदी व भारतीय भाषाओं को नजदीक लाने के विशेष प्रयत्न होने चाहिए.

0 भीमबली वर्मा, नयी दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावावेग की कहानियां

पिटारे को बेइंसाफी

अंक बहुत ही पसंद आया. इस्मत चुगताई की 'जरा-सी बात' ने अंतर्मन छू लिया. किस-किस का नाम लूं, पूरी की पूरी सारिका अपनी अमिट छाप छोड़ती है. ऐसी सारिका के लिए आपको व सारिका परिवार को बधाई.

विषवमन से भरे 'सांप का पिटारा' को सारिका के चार अमूल्य पृष्ठ देकर आपने बेइंसाफी की है, यद्यपि यही विषय-वस्तु एकाध पृष्ठ में होती तब भी तीसरी नजर के लिए काफी थी.

o संतोष सुमन, रायबरेली

देह से देहातीत की आसक्ति

भावावेग की इन देशी-विदेशी कहानियों को पढ़ते समय बड़ा आनंद आया. आप अंग्रेजी, फ्रांसीसी, उर्दू, बंगला सभी भाषाओं की श्रेष्ठ कहानियां एक साथ एक अंक में देकर पाठक वर्ग का महान उपकार, महान हित साधन कर रहे हैं. इसके लिए हम आपके आभारी हैं. स्थितियों, समस्याओं, व्यक्तियों या थीम्स को लेकर विशिष्ट सामग्री देने की जो आपकी महान योजना है; वह सचमुच नंदनीय, बंदनीय, स्तुत्य है. इसीलिए आपका हर उपहार एक परम विशिष्ट उपहार बनता जा रहा है, जो सर्वथा संग्रहणीय, बारंबार आस्वादनीय हो जाता है.

भावावेग की कहानियों के इस उपहार अंक में मैत्रेयी देवी की रचना 'न हन्यते' बड़ी अच्छी लगी. एक रोमांटिकता, एक काव्यात्मकता, एक दार्शनिकता, आध्यात्मिकता लिए हुए—गीता के सारमूल को कहानी के माध्यम से जीवंत कर देना, व्याख्यायित-रूपायित कर देना मैत्रेयी देवी का ही कमाल हो सकता है. देह से देहातीत की आसक्ति, तलाश और लब्धि एक सिद्ध दृष्टि और रससिद्ध कलम की ही उपज हो सकती है.

और फिर इस्मत चुगताई की 'जरा-सी बात' कितनी बड़ी बात बन जाती है. मुझे लगता है कि भावना और भावुकता में ही वृहत्तर सृजन की प्रेरणा है और मानव को देवत्व में प्रतिष्ठित करने की क्षमता. आस्कर वाइल्ड के महान उपन्यास 'डोरियन ग्रे का चित्र' का और लेव तालस्तोय के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'पुनरुत्थान' का संक्षिप्त रूपांतर बड़ा पसंद आया. संक्षेपकारों को धन्यवाद.

ताराशंकर बंद्योपाध्याय की 'नागिन,' ज्यां पाल सात्रे की 'अंतरंग' और बलराज वर्मा की 'बंसी काका' स्थायी प्रभाव छोड़ गयी.

o रवींद्रनाथ ओझा, बेतिया (बिहार)

जनहित के सवालों का सवाल

सारिका रजत जयंती वर्ष की दसवीं भेंट भावावेग की कहानियां यानी आपका दसवां सफल प्रयास मन को बेहद भाया.

भारतीय और अभारतीय साहित्य के भंडार में से, दुविधा की तकलीफदेह स्थिति झेलते हुये, भावावेग की कहानियों के चयन में स्वयं भावावेग में न बहकर समझते-बूझते हुए प्रायः सभी तरह के भावावेग का प्रतिनिधित्व करा सकने में आप निश्चय ही सफल हुए हैं.

o सुशील अकेला, खगड़िया

'फल' राजा को ही मिलता है

भावावेग की सभी कहानियां अच्छी नहीं रहीं पर कुछेक अपना प्रभाव छोड़ने में पूर्ण सक्षम रहीं. तारा शंकर बंद्योपाध्याय की 'नागिन' इस अंक की बेहद प्रभावपूर्ण रचना रही. प्रेम किसी से हो तो किस कदर पागलपन बनकर छाता है और डाह किसी से हो जाए तो किस कदर आज नहीं तो कल डसकर रहती है—उक्त तर्क का साक्षात चित्रण इसमें मिला. लंगड़े शेख का चरित्र, उसकी चाल के अनुसार, धीरे-धीरे पेश करके-पाठकों के मस्तिष्क में बैठाने के मामले में लेखक सफल रहा है.

वैसे भी तारा बाबू का साहित्य वह चाहे बंगला में पढ़ा जाये अथवा हिंदी में, आप को सोचने पर मजबूर जरूर करेगा.

'धरती बरसात मांगती है' (रमेश बत्तरा) ने मेहनत की है इसमें कोई दो राय नहीं है. काफी अच्छी बन पड़ी है यह रचना. इस रचना के मध्य में एक राजा और फल का जो किस्सा दिया है— वह राजा भर्तृहरि हैं. उन्होंने ही फल रानी को दिया और फल दूसरे-दूसरे हाथों में होता हुआ (परिक्रमा कर) वापस राजा के पास पहुंच गया.

o याद सुगंध, रिवाड़ी

सवाल किसी वर्ग के आदमी का नहीं सिर्फ आदमी का है

'चरम आवेग के काम: कितने सही-कितने गलत' (परिचर्चा) में **प्रकाशित डॉ. महीप सिंह का यह कहना कि जून के हादसे को देश का एक वर्ग आनंद और उन्माद के रूप में देख रहा था किंचित संकीर्ण सोच का परिणाम है. आम भारतीय की तरह मुझे भी इस हादसे से गहरा दुख पहुंचा था. पर मेरा दुख महज छः जून तक ही सीमित नहीं है. दुख मुझे उस दिन भी हुआ था जब लाला जगतनारायण की हत्या का समाचार सुना था. या बसों के यात्रियों की सामूहिक हत्या. और दुख आज भी होता है जब राजधानी, गुजरात, असम कहीं भी दंगों के समाचार सुनती हूं.**

कोई भी धर्म मानने से पहले हम इंसान हैं और मैं चाहती हूं कि हमारे विचार या आवेग इंसानियत के आवेग से निर्धारित हों न कि धर्म से.

o अमिता सक्सेना, इंदौर (म.प्र.)

चर्चा : परिचर्चा

परिचर्चा ('चरम आवेग के काम : कितने सही—कितने गलत') पढ़ी. श्रद्धेय महीप सिंह जी अपने विचार प्रकट करते समय लगता है यह भूल गये कि वे रचनाधर्मी हैं अर्थात उनका धर्म साहित्य है, सत्य है. वे भी अतिसाधारण भावावेग में बह गये. उन्हें स्वर्ण मंदिर में मारे गये उग्रवादियों के लिये दुख है, उनके कारण पवित्र मंदिर के टूटने का दुख है, सैनिकों के मारे जाने का कदापि नहीं?

उग्रवादियों के लंबे समय तक चल रहे आतंक का कदापि नहीं? श्रीमती गांधी की हत्या पर उनकी कोई प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि अचानक सारे देश में भड़के दंगे उन्हें नियोजित लगते हैं. कब तैयार हुयी थीं उनकी योजना, किस मंदिर में, किस पुजारी द्वारा?

जिस आनंद की चर्चा उन्होंने की है (स्वर्ण मंदिर कार्यवाही के बाद) क्या वही आनंद श्रीमती गांधी की मौत के बाद उन्होंने नहीं देखा? तब उन्हें अजीब नहीं लगा? शायद तब वे भी उन्माद में प्रसाद बांट रहे होंगे.

o पंकज शर्मा, अलीगढ़

कहीं न कहीं आवेग

अंक अच्छा लगा. प्राचीन साहित्य से लेकर आज वर्तमान तक हमारे यहां के साहित्य में कहीं न कहीं आवेग मिल ही जायेगा चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष हो. भावावेग की कहानियों के भंडार में से आपने जो रचनाएं ली हैं, निस्संदेह वे भावावेग का सही मायने में प्रतिनिधित्व करती हैं. इसमें कोई शक नहीं कि सारिका समय-समय पर ऐसे विषय उठाती है जो कहीं अन्य पढ़ने को नहीं मिलते हैं. इसी क्रम में भावावेग की कहानियों ने मन पर अपनी अमिट छाप अंकित की है. आशा है भविष्य में भी सारिका अपने पाठकों के लिए ऐसे ही रोचक व वास्तविकता को उजागर करने वाले अंक प्रस्तुत करेगी.

o राजेश व्वेल, उज्जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहस :

साहित्य नहीं रहेगा तो क्या हम भी बचेंगे?

सारिका अपना रजत जयंती वर्ष कुछ विशिष्ट सामग्री के आधार पर मना रही है. यह विशिष्ट सामग्री कुछ स्थितियों को लेकर भी हो सकती है और कुछ समस्याओं, व्यक्तियों या 'थीम्स' को लेकर भी. हमारे इस प्रयास को सुधी पाठकों ने काफी सराहा है. सारिका के शुभाकांक्षी गोविंद मिश्र ने विशिष्ट सामग्री लेकर प्रस्तुत की जा रही इस योजना के अन्यतम पहलुओं की ओर संकेत करते हुए हमें सचेत भी किया है. (देखें, विचित्र कथा अंक, 1-15 मई, 85) इसलिए इस संदर्भ में हमने पाठकों की प्रतिक्रिया आमंत्रित की थी. हमें खुशी है कि पाठकों ने इस पर अपनी महत्वपूर्ण प्रतिक्रियाएं भेजीं. उन्हीं में से क्रमशः प्रारंभिक प्रतिक्रियाएं पिछले दो अंकों में प्रकाशित की गयी थीं. प्रस्तुत हैं कुछ और प्रतिक्रियाएं—

सारिका के पांच प्रतिशत पाठक ही विदेशी साहित्य पढ़ पाते हैं!

यद्यपि, रजत जयंती वर्ष के विशेषांकों में विदेशी कथाओं व उपन्यास अंशों का औसत देशी सामग्री की अपेक्षा काफी अधिक रहा है तथापि मुझे नहीं लगता कि इससे साहित्य के नहीं रह जाने का कोई खतरा पैदा हो गया है या हो सकता है.

"सारिका ने अपना साहित्यिक स्वरूप और दायित्व का रास्ता न तो बदला है और न बदलना ही चाहती है." यह बात आपने विशेषांकों की श्रृंखला शुरू करने के पूर्व या दो-तीन विशेषांक निकालने के बाद भी कह दी होती तो शायद गोविंद मिश्र जी बहस छेड़ने की बात न सोच पाते.

इसमें किंचित संदेह नहीं कि **'सारिका'** के पृष्ठों का उपयोग नये लेखकों को सामने लाने, नयी पीढ़ी की पहचान बनाने में जितना होता रहा है उतना अन्य किसी भी स्तरीय साहित्यि पत्रिका के पृष्ठों का नहीं होता. इस कारण इन पृष्ठों का दुरुपयोग (?) होते देख वेदना तो स्वाभाविक ही है.

वैसे, इन विशेषांकों से एक लाभ तो अवश्य हुआ है कि हिंदी साहित्य के पाठकों को अनगिनत प्रख्यात विदेशी साहित्यकारों की चर्चित कृतियों को पढ़ने का सहज सौभाग्य प्राप्त हो गया है. माना कि जिन्हें कामू, हैमिग्वे पढ़ना है. . .वे तो ढूंढकर पढ़ लेंगे उसे, पर सारिका में प्रस्तुत उनके सार-संक्षेप हिंदी में पढ़कर हिंदी भाषी पाठकों को तुलनात्मक अध्ययन का अवसर मिला है. कामू, हैमिग्वे या अन्य प्रख्यात विदेशी साहित्यकारों की मूल कृति को पढ़ पाना सारिका के पांच प्रतिशत पाठकों से भी संभव नहीं.

सारिका की रजत जयंती उपहार योजना से ऐसा भ्रम तो अवश्य मन में पैदा हुआ है कि हिंदी में 'विशिष्ट सामग्रियों' का नितांत अभाव है, दूसरी तरफ इस बात की प्रसन्नता भी हो रही है कि जिन विदेशी साहित्यकारों का केवल नाम ही सुना था, किताबों का नाम तो पहली बार सारिका में ही देखा, पर वे अपने देश में विख्यात थे, उनकी रचनाओं के मूल्यांकन का अवसर सारिका के इन आयोजनों से ही तो मिल पाना संभव हुआ है. और फिर यह रजत जयंती वर्ष तक ही तो. . .

सारिका के रजत जयंती वर्ष की उपहार योजना के अंतर्गत प्रस्तुत विशेषांकों की श्रृंखला जनमानस को सुसंस्कृत करने का पवित्र काम करते रहने की निरंतरता में अल्प विराम भी नहीं लगा रही. बस, जरा समझ का फेर है. मैं श्री गोविंद मिश्र को नासमझ कहने का दु:साहस नहीं कर रहा. वह अपनी जगह ठीक ही हैं. पर मैं तो सारिका की उपहार योजना से सहमत हूं.

o डा. सुशील कुमार गुप्त, खगड़िया (बिहार)

साहित्य में चौधराहट उचित नहीं!

श्री मिश्र जी इस विशेषांक पद्धति से क्षुब्ध हैं. कुछ और लोग भी इस बात से क्षुब्ध होंगे, जिन्हें इस दरमियान अपनी तस्वीरें **'सारिका'** के पृष्ठों पर नहीं दीखेंगी, पर आपको बता दूं, तस्वीरों की दुनिया अधिक पुख्ता और स्मरणीय नहीं होती. समय के साथ सामयिक साहित्य भी भुला दिया जाता है. इसकी तुलना में जनवरी से जो उपहार योजना कार्यान्वित है, कहना न होगा कि यह समुचित, संग्रहणीय एवं अत्यधिक उपयोग की ही सिद्ध हुई है. ऐसी सामग्री की कुछ निजी विशेषताएं होती हैं. सभी रचनाओं के संयोजन में एक ही उद्देश्य निहित होता है. एक ही स्थिति, समस्या या 'थीम्स' पर विभिन्न नजरिये से दृष्टिपात होता है. इसी से यह सामग्री देश-काल से परे होती है. साथ ही इन रचनाओं को इस बारीकी से एक साथ ही इन रचनाओं को इस बारीकी से एक सूत्र में पिरोया जाता है कि विभिन्न रत्न कंठ-हार का नामकरण पाते हैं जिसमें लेखक प्रायः गौण ही हो जाता है. सामने आता है रचना का व्यापक दृष्टिकोण एवं सार्थक स्वस्थ सोच और मनोरंजन. ऐसा उपहार पाठकों को भी दिशा देने में समर्थ होता है. मुझे तो हर अंक शोध ग्रंथ या हितोपदेश लगा है.

वैसे श्री मिश्र जी का कहना भी सही है. यदि प्रकाशन सामग्री संयोजित करते समय केवल ख्यातिलब्ध साहित्य एवं साहित्यकार को प्रकाशित करने से पत्रिका अपनी ख्याति बढ़ाने का प्रयत्न करती है, तो ऐसा करना पाठकों के हित में ठीक न होगा. जाहिर है, ऐसा छद्म पाठक पर प्रकट हो ही जायेगा. वैसे ऐसा तभी सोचा जा सकता है जब पत्रिका के मूल उद्देश्य से कटकर; संयोजित सामग्री को लेखक के माध्यम से पहचानने की कोशिश की जाये.

स्तरीय साहित्य उत्तरोत्तर लिखा जाता रहे, इसके लिए सारिका की शुरू से ही पुरजोर कोशिश रही है. और उसका यह सहयोग समय-समय पर सराहा जाता रहा है.

क्या साहित्य में केवल इसी भावना को लेकर प्रकाशन किया जाना चाहिए कि जब विदेशी पत्रिकाएं भारतीय लेखकों को नहीं छापतीं तो हमें विदेशी लेखकों का बहिष्कार करना चाहिए? क्या यह कथन हमारी ओछी मानसिकता को प्रकट नहीं करता? यदि कुछ स्थितियों, समस्याओं और थीम्स को मुद्दा बनाकर एक महत उद्देश्य के परिप्रेक्ष्य में सामग्री आयातित की जाती है, इन नजरियों में एक नजरिया एक विदेशी लेखक का भी है; तो इससे साहित्य की समझ रखनेवाले पाठक को भला क्या आपत्ति हो सकती है? साहित्य की मूल संवेदना (रोना, हंसना, प्रेम, करुणादि भाव) पर विदेशी संवेदना की क्या मोहर लग जाती है? फिर लेखकों के वर्ग विभाजन या पार्थक्य रेखा खींच देने पर भी साहित्य अलग-अलग नहीं होता. युवा लेखक, नया लेखक, वरिष्ठ लेखक, नारी लेखक, जनवादी, प्रगतिवादी—जैसे वर्ग भेद करना कहां तक उचित है. और यदि ऐसी व्यवस्था खड़ी की जाती है तो वह सामंतवादी मानसिकता की सूचक है. ऐसी व्यवस्था में लोगों के सर पर चौधराहट का दंभ चढ़कर बोलने लगता है. विवादास्पद स्थितियों की खाट खड़ी की जाती है और साहित्य को कोरी बहस का रंग दिया जाता है. कुछ लोगों को उकसाकर घालमेल, तालमेल की स्पर्धाएं होती हैं. आरक्षण की नीति-निर्धारित कर अपनी उदारता का परिचय देते हुए अपनी चौधराहट की तूती पीटी जाती है. इससे भला साहित्य के संवर्धन में पता नहीं क्या बढ़ोत्तरी होती है.

इन सब भ्रांतियों से अलग हटकर सारिका ने जो रजत जयंती के अवसर पर उपहार योजना शुरू की है वह वास्तव में ही सराहनीय है. भविष्य में स्वर्ण, हीरक जयंतियों की तैयारी करें; जिससे ये जयंतियां बड़े ही उल्लास और उत्साह से मनायी जायें, ऐसी हार्दिक कामना है.

o ब्रजमोहन दुबे, गंजबासौदा (म. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तिबोध

सब कहीं एक अमानवीय तिलिस्म के खिलाफ युद्धरत रचनाकार जो आपको भी अपनी लड़ाई में हिस्सेदार बनाता है! और आप इस हिस्सेदारी से बच नहीं सकते, इसलिए...

राजकमल पेपरबैक्स में प्रकाशित

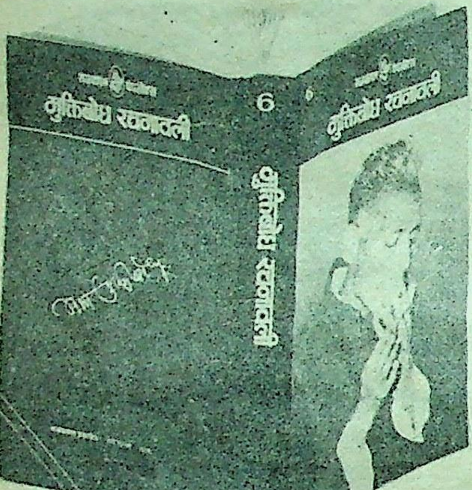

मुक्तिबोध रचनावली आपके लिए है!

- छह खण्डों में लगभग 2550 पृष्ठ
- छठे खण्ड में उनकी विवादास्पद पुस्तक **भारत: इतिहास और संस्कृति** भी, जो रचनावली के सजिल्द संस्करण में नहीं थी

छह खण्डों के पूरे सैट का मूल्य रु० 180.00

लेकिन आपके लिए केवल रु० 150.00

यदि आप 10 अगस्त तक रु० 50.00 अग्रिम भेजते हैं

और मात्र रु० 135.00

यदि आप 10 अगस्त तक यह पूरी राशि अग्रिम भेजते हैं

डाक-खर्च दोनों स्थितियों में हम देंगे

रचनावली की प्रकाशन-तिथि– 30 सितम्बर 85

राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
8 नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली - 110002

विदेश की तंग ख्याली का अनुकरण ठीक नहीं

इन विचारों से हम अवश्य ही सहमत हैं कि साहित्य की स्तरीय पत्रिकाओं का उद्देश्य मात्र क्रय-विक्रय को आधार मानकर रचनाओं का प्रकाशन नहीं बल्कि एक ठोस अभिव्यक्ति का माध्यम ही इसका लक्ष्य है. लेकिन गले से नीचे नहीं उतरने वाली बात यह है कि विदेशी पत्रिकाओं में हमारे देश की महत्वपूर्ण साहित्यिक रचनाओं का प्रकाशन चूंकि नहीं होता अतः हमें भी विदेशी रचनाओं को छापना बंद कर देना चाहिये. पुरानी स्तरीय रचनाओं को नहीं छापकर नयी रचनाओं को शामिल किया जाए यह भी बहुत हद तक बेतुका लगता है क्योंकि हमारे देश की 80% आबादी गांवों में रहती है. उनसे भी ज्यादा लोग गरीबी से नीचे की जिंदगी जीते हैं. क्या हर्ज है अगर हमारे निम्नवर्गीय पाठक भी मात्र चार रुपये में ही देशी-विदेशी रचनाकारों, देश-विदेश के साहित्य, संस्कृति से परिचित हो जाते हैं.

दूसरी विषमता यह है कि हम मानते हैं कि अगर हमारा साहित्य नहीं होगा तब हम भी नहीं बचेंगे. लेकिन क्या हमारे साहित्य को होने के लिए हमारा होना आवश्यक नहीं है? साहित्य समाज का दर्पण होता है और दर्पण का काम है हमारे चेहरे के एक-एक धब्बे के साथ हमारे चेहरे को दिखलाये. भले ही हम दर्पण को उठाकर फेंक दें. हो सकता है गोविंद भाई अपने धब्बों के साथ अपना चेहरा देखना पसंद नहीं करते हों और साहित्य का समाज के साथ समझौता होना मुमकिन नहीं. हम यहां पर यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यह ठीक है कि गोविंद मिश्र की अपनी निजी लायब्रेरी हो सकती है, परंतु क्या यह भी सच नहीं है कि ऐसे न जाने कितने पाठकों को इन महंगे उपन्यासों से वंचित होना पड़ता है क्योंकि उनके सामने साहित्य से भी ज्यादा जरूरी समस्याएं रहती हैं? विदेशी रचनाओं का अनुवाद छपवाना बंद करवाने की सिफारिश क्या बदले की भावना से उत्पन्न प्रतिक्रिया नहीं है.?

0 हरिकिशोर चतुर्वेदी, अररिया

सबसे बड़ा सवाल सहज अपेक्षा का है

मुझे मिश्र जी के विचारों में काफी दम नजर आया. ऐसी बात नहीं है कि सारिका अपने पथ से विमुख हो गयी है. क्योंकि स्तरीय साहित्य के प्रति इसकी वचनबद्धता से हम वाकिफ हैं.

रजत जयंती वर्ष का हर अंक विशिष्टताओं से परिपूर्ण है. कुछ तो विशेष रूप से संग्रहणीय हैं. हमें इन विशेषांकों की अनिवार्यता का मान है, पर सब के बावजूद सारिका से हमें काफी अपेक्षा रहती है. हम इस पर अपना अधिकार समझते हैं, इसे अपने विस्तृत साहित्यिक परिप्रेक्ष्य का रखवाला समझते हैं. क्योंकि 'सारिका' ही एकमात्र पत्रिका है जो समकालीन साहित्य को एक मंच देती है. नये लोगों को अवसर एवं दिशा निर्देश देती है. ऐसी पत्रिका से हमारा विशेष अपेक्षा रखना सहज है.

0 मनोज कुमार 'ज्ञानेश', पटना

वे, जो अस्तित्व की खोज में भटक रहे हैं...

सारिका का कभी (कुछ समय पहले) ऐसा स्वरूप था कि कोई भी इसे नवीन एवं स्तरीय साहित्य की उत्साहवर्धक एवं हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाओं में से एक कहने में नहीं हिचकता था. किंतु हाल के कुछ अंकों को देखने से लगता है कि जिस सारिका को हम अपना समझ बैठे थे वह धीरे-धीरे बिरानी और बेगानी होती जा रही है. गोविंद भाई का यह कहना कि जिन्हें सुप्रसिद्ध व तथाकथित 'बड़े' लेखकों की रचनाएं पढ़नी हैं वे तो इसे कहीं भी पढ़ सकते हैं. बिल्कुल सही है. आज लगभग हर लाइब्रेरी में उनका साहित्य उपलब्ध हो सकता है किंतु उन रचनाकारों की रचनाएं, जो अभी अस्तित्व की खोज में भटक रहे हैं, अगर सारिका जैसी पत्रिकाएं नहीं छापेंगी तब उनकी रचनाएं क्या समय की गर्त में दबकर नहीं रह जायेंगी?

0 देवेश्वरानंद भट्ट, रुड़की (उ. प्र.) ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

कथा साहित्य का ऐतिहासिक दस्तावेजी दौर और प्रतिनायक या अनायक

हिंदी काव्य के लिए नायक की जो परिकल्पना की गयी थी ठीक वैसा ही नायक हिंदी कथा-साहित्य को कभी रास नहीं आया. भारतीय काव्य समीक्षकों ने नायक के चार भेद किये थे—धीरोदात्त, धीर ललित, धीर प्रशांत और धीरोद्धत. धीरोदात्त नायकों में 'रघु' और 'राम' आदि के नाम लिये जाते थे. धीर ललित में 'दुष्यंत' और 'पुरुरवा' आदि के, धीर प्रशांत में 'युधिष्ठिर' और 'विदुर' आदि आते थे तथा धीरोद्धत में 'रावण', 'कंस' आदि आते थे. ये सब राजपुरुष थे, इनके हाथ में राजशक्ति थी. इनके चरित्रों के आधार पर ही ये विभाजन किये गये थे.

हिंदी कथा-साहित्य की शुरुआत भी राजपुरुषों के चरित्रों से की गयी लेकिन बदलती हुई परिस्थितियों और परिवेशों के कारण ऐसे चरित्र-नायक हिंदी कथा-साहित्य के पाठकों और रचनाकारों को अधिक स्वीकार्य नहीं हुए. यही कारण है कि गहमरी, गोस्वामी, देवकीनंदन खत्री और दुर्गाप्रसाद खत्री से आगे इन चरित्र-नायकों की परंपरा नहीं बढ़ सकी. सामाजिक न्याय की मांग के साथ सामाजिक परिवर्तन के दौर में नायक का परंपरागत स्वरूप थोड़ा परिवर्तित हुआ. लेकिन उसकी गुणवत्ता में विशेष परिवर्तन नहीं आया. वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नैतिक मूल्यों की परंपरा को अपने में समेटे रहा. लेकिन यह नायक के स्वरूप के परिवर्तन की एक समय-सापेक्ष प्रक्रिया थी. सही अर्थों में यही प्रक्रिया आज के नायक की जन्मदात्री कही जा सकती है.

इस समय-सापेक्ष और समाज-सापेक्ष नये नायक की अवधारणा के समानांतर ऐतिहासिक कथा-लेखन का सिलसिला भी हिंदी साहित्य में शुरू हो गया था. इस ऐतिहासिक कथा-लेखन का नायक परंपरागत नायक की परिकल्पना से स्वयं को मुक्त नहीं कर सका—इसीलिए ऐसे लेखन का सिलसिला अधिक नहीं चल पाया. हालांकि वृंदावनलाल वर्मा की ऐतिहासिक परंपरा को चलाने की काफी कोशिश की गयी, लेकिन वह कोशिश सफल नहीं हो पायी. मुंशी प्रेमचंद ने परंपरागत नायक की अवधारणा को खंडित करने का जो सिलसिला शुरू किया था वह सिलसिला आज तक समाप्त नहीं हुआ है. यही कारण है कि आज का कथाकार यदि अपने आपको परंपरा के नाम पर किसी से जोड़ता भी है तो प्रेमचंद से ही जोड़ता है.

हर पांच या दस साल बाद नायक पुराना होता गया है और उसकी प्रतिमा को तोड़कर नयी प्रतिमा गढ़ने की कोशिश चलती रही है. नयी कहानी के दौर में नायक का जो स्वरूप निश्चित हुआ था, उस स्वरूप को अ-कथा के दौर ने तोड़ दिया और अ-कथा की नायकहीनता को उसके बाद के दौर ने समाप्त कर दिया. प्रतिनायक, अ-नायक या ऐंटी-नायक या ऐंटी-हीरो की कहानियां बदले हुए जीवन-मूल्यों और नयी सामाजिक मान्यताओं तथा परिस्थितियों की देन थी. हालांकि ऐसी कहानियों का दौर आज एक बंद दस्तावेज बन चुका है लेकिन उसके तत्कालीन महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता. जो लोग यह कहते हैं कि उन्होंने इस लेखन को उसी समय पूरी तरह नकार दिया था वे सिर्फ अपने अहम् की रक्षा करते हैं जबकि सच्चाई यह है कि वह नकार उस समय की समर्थ प्रतिभाओं को बरगलाने और तोड़ने का एक षड्यंत्र था और उसमें उन्हें काफी हद तक सफलता भी मिली.

अ-नायक या प्रतिनायक अधिकतर मध्य-वर्ग के चरित्र होते थे जिनके पास अपना कोई चेहरा नहीं था, लेकिन उनमें अपने खोये हुए चेहरे की तलाश की इच्छा अवश्य होती थी. अधिकांशतः ऐसे नायक औद्योगीकरण और शहरीकरण की देन हैं. रोजमर्रा की जिंदगी में घुटन-टूटन और संत्रास को भोगते हुए ये नायक समझौता-परस्ती को एक जरूरी जीवन प्रक्रिया मान बैठते हैं और वे रिश्तों से टूटकर भी उनसे जुड़े रहने का छल पाल रहे हैं. इस अंक की कहानियां कुछ-कुछ ऐसे ही नायकों की कहानियां हैं. हमारी कोशिश रही है कि ये कहानियां कथा-साहित्य के ऐतिहासिक दस्तावेजी दौर का प्रतिनिधित्व कर सकें. सफलता-असफलता की पहचान आपको ही करनी है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयांतर

फणीश्वरनाथ रेणु

बहुत से साधारण-असाधारण चरित्र प्रायः साहित्यिक रचनाओं के आधार बनते रहे हैं, लेकिन वे साहित्यिक विधाओं और भाषाओं को बनायें-बिगाड़ें, ऐसा कम ही होता है. प्रस्तुत है एक ऐसा ही विरल चरित्र-भिमल मामा!

हाल ही में छपी रेणु की नयी किताब 'वन तुलसी की गंध' में संकलित 'विषयांतर' के 'भिमल मामा' अपने गांव में बड़े-बड़ों की बोलती बंद कर देते थे, यहां तक कि रेणु भी उनसे मिलते हुए घबराते थे, लेकिन क्यों?

नान्हू चौकीदार—मेरे गांव का चौकीदार है. बचपन से ही देख रहा हूं, उसकी याद आते ही मन के पर्दे पर एक सिलहुट छवि उतर आती है—गाढ़े लाल रंग की छाया! ! . . .सरकारी नीली वर्दी और पगड़ी ही इस 'कंपलीमेंटरी कलर' का कारण है—पिछले साल मेरे चित्रकार बंधु ने बताया. . .'कंपलीमेंटरी कलर' इंप्रेशनिस्ट का आविष्कार है. फिर उसने 'कंपलीमेंटरी कलर' के बारे में समझाते हुए कहा था—किसी भी पत्र-पत्रिका में लाल रंग के मोटे अक्षर या ब्लॉक को देर तक देखने के बाद—सफेद दीवार पर नजर डालने से अक्षर अथवा ब्लॉक की हरी छाया दिखायी पड़ेगी. . .एकदम विरोधी रंग! . . .चित्रकार मित्र ने मुझे एक भारी भ्रम से निकाल लिया! पिछले साल तक इसे मैं कोई 'अलौकिक व्यापार' मानता था! . . .नीली वर्दी का 'कंपलीमेंटरी कलर'—लाल रंग का नान्हू चौकीदार!

नान्हू की देह—उस नीली वर्दी के अंदर ही अंदर इतनी जर्जर हो चुकी है; हाल में मालूम हुआ. 'ढोला कुम्हार' गीत-कथा गाते समय जब वह हांफने लगा, तब समझा. . .मेरे लोक-गीतों का यह जीवंत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेकार्ड अब जवाब दे रहा है. . .इसके गीतों को 'टेप रेकार्ड' करवाने की बहुत दिनों से बात चल रही है—यानी मेरे मन में! और, एक स्केच करने की लालसा है, एक स्केच लिखने की इच्छा है.

सामने एक हल्का प्रकाश दे दूं इस सिलहुट छवि पर! नान्हू की ऊंची किंतु भोथरी नाक पर प्रकाश का एक हल्का 'परस'! . . घनी, किंतु छोटी मूंछ की आड़ में टूटी; उखड़ी दंत-पंक्तियां. . .कलेसर का 'नड़हा कुआं' देखा है न? टूटी ईंटों पर तरह-तरह के जंगल-झाड़ पैदा हो गये हैं! ! मगर यही उसकी सजीव मुस्कराहट की मुद्रा है! ! मूंछों के उस पार से झांकती हुई हंसी. . .लगता है, अभी-अभी उसने घुघली-घटवार की गीत-कथा गाकर समाप्त की है.

ऋणी हूं मैं इस बूढ़े चौकीदार नान्हू ततमा का. . .कुमर बिजैभान, लोरिक, घुघली-घटवार और होरिल सिंह के अलावा निल्हे साहबों-मेमों की अनेक कहानियां उसने मुझे सुनायी हैं. . .मोबर्ली साहेब, एंथनी साहेब, मकफरसन साहेब की. ,.! अपनी भरी जवानी में वह रहिकपुर कोठी के विलियम साहब के यहां काम करता था! सैकड़ों कहानियां नाच की, मगरमच्छ के शिकार की, साहेब-मेम की लड़ाई. . .बेहयाई की भी! ! . . .नान्हू का एक स्केच लिखना है.

स्केच! . . .स्केच! . . .जब कभी स्केच लिखने बैठता हूं—भिमल मामा की याद आ हाजिर होती है—"क्या लिखता है? स्केच ! !"

मेरे किसी प्रकाशित स्केच को पढ़कर भिमल मामा ने गांव के पुस्तकालय में 'पठनागार' में—खूब रस लेकर बातें की थीं–'हिस्ट्री, स्टोरी, नावेल, ड्रामा, खंड-अखंड काव्य—सब सुना, तब सुना, रिपोर्टाचारज! और अब यह स्केच! स्केच'! ! रेखाचित्र, शब्द चित्र! ! . . .क्या अर्थ? परिभाषा बताओ!'

भिमल मामा के चेहरे पर भी रोशनी डाल दूं? . . .क्योंकि भिमल मामा से पहले ही परिचय करा देना अच्छा है. स्केच लिखने वाली कला का मूलमंत्र मैंने उन्हीं से प्राप्त किया है...आज भी वे स्केच का नाम सुनकर चिढ़ते हैं, भड़कते हैं और समय पड़ने पर 'युद्धम्देहि' कहकर ललकारते भी हैं—"नो. . .नो! . . .नहीं, नहीं! ! भिमल को राजा अकबर मत समझो कि बीरबल ने बीच 'परपट मैदान' पर परिस्तान दिखा दिया.

भिमल मामा. . .सारे परानपुर के मामा! ! मेरा घर-गांव परानपुर . . .इसलिए मेरे भी मामा. . .ग्रामवासी योगी हैं. तीस साल पहले पत्नी मुई, मुकदमेबाजी में परिवार की संपत्ति समाप्त की. दोनों बड़े भाई तो हिम्मत से गृहस्थी में लगे रहे— किंतु तीस साल की उम्र में ही भिमल मामा बगैर मूंड़ मुड़ाये संन्यासी हो गये. . .असमय में ही सब बाल झड़ गये. कहते हैं, लगातार आठ वर्षों तक उन्होंने अपनी मैट्रिक-फेल विद्या-बुद्धि से बहुत किस्म के उद्योग किये, धंधे फैलाये, मगर हाथ कुछ न आया . . .पिछले बीस साल से उनके संबंध में और उनके दिमाग के बारे में तरह-तरह की फुलझड़ी कहानियां सुनी-सुनाई जाती हैं. गांव के हर टोले के लोग, कुछ न कुछ जानते हैं उनके बारे में.

इंद्रजाल पढ़ते-पढ़ते पगला गये मामू.

". . .न-न, झूठी बात. लग्गो बात. असल बात यह है कि 'मैटरी' में तीन बार लगातार फेल करने के बाद उनकी स्त्री ने. . ."

". . .धत्त! सब बे-बात की बात. आदमी बड़ा काबिल है. जरा 'सनकहा' है. ज्यादा काबिल होने से ऐसा होता ही है. सच्ची बात मुंह पर कहता है, इसलिए किसी से पटती नहीं."

महामूर्ख है, पागल है. कुकाठ है, आदमी नहीं.

साठ की उम्र है. . .हिसाब लगाकर देखा गया है, पिछले बीस साल में गांव से 'पढ़वा' लोगों से सात-आठ दल निकले. हरदल में एक-न-एक काबिल लड़का निकला, किंतु भिमल मामा से किसी काबिल की पटरी नहीं बैठी. . .भिमलकृत 'भानुमति पेटिका' के तीन सौ तिरासी प्रश्नों के उत्तर की बात तो दूर, उनकी एक पेटेंट पंक्ति—'होल्डिंग डॉग ओ सब्जीवाला' का सही अर्थ कोई नहीं बता सका. रामायण की तीन चौपाइयों का शंका-समाधान किसी से नहीं हो सका. . .तो क्या किया? तो 'कोच्छ' नहीं किया.

गांव के पुस्तकालय में एक पठनागार है, जिसे कभी-कभी 'गप्प-घर' बना दिया जाता है. . .छुट्टियों में स्कूल-कॉलेज के विद्यार्थी गांव आते हैं. नाटक-ड्रामा का प्रोग्राम बनाते हैं. मीटिंग करते हैं अथवा सभी अपने-अपने कॉलिज की उन लड़कियों की कहानी बारी-बारी से कहते-सुनते हैं—जो हिम्मत बांधकर, कमर कसकर उनके साथ-साथ एक साथ पढ़ने के लिए कॉलिज में उतर पड़ी हैं. भिमल मामा 'पठनागार' के एक कोने में बैठकर किसी बासी पत्रिका में डूबे रहते हैं. श्रवणशक्ति को हीन करने के लिए जेब से 'देव-कयास' निकालकर कान में डाल लेते हैं. . .बोलते कम हैं, मगर दौरे के दिनों में अनवरत बुदुर-बुदुर करते रहते हैं. राह चलते लोगों से प्रश्न करते हैं, परिभाषा मांगते हैं और पच्चीस भाषाओं में सलाम करते हैं—'अंग्रेजी में गुड मार्निंग, चाइनिज में चुंग चा, फ्रेंच में लाँ तों, पश्तू में अकरम-बकरम'. . .आदि-आदि . . . जाहिर है, दौरे के दिनों में पुस्तकालय और 'पठनागार' में उनका प्रवेश निषिद्ध घोषित कर दिया है . . .इस मामले में भिमल मामा बहुत सभ्य हैं. बक-बक करते, खड़ाऊं खटखटाते आसमान में हवाई जहाज उड़ानेवाले चालक को रामायण की पंक्तियां सुनाते भिमल मामा ज्योंही पुस्तकालय के अहाते में प्रवेश करते हैं. . .पुस्तकालयाध्यक्ष एक कार्ड-बोर्ड तख्ती—जिस पर कुछ लिखा होता है—लेकर खड़ा हो जाता है—पुस्तकालय में आज आपका प्रवेश अनावश्यक है. आपकी कोई प्रिय पत्रिका पठनागार में नहीं.

'नो पत्रिका? देन नो एडमिशन. पत्रिका नहीं तो प्रवेश भी नहीं.' कहकर वे पास के पेड़ के नीचे जा जमते.

किसी बात को बगैर परिभाषा के यदि गांव में चलाना चाहेगा कोई तो उसे भिमल मामा चलने नहीं दे सकते. . .'धूल किसी और की आंखों में झोंकना'. भिमल ने हिंद पंच, मतवाला: बलिदान अंक, चांद का फांसी अंक पढ़ा है. . .लिख तो ले कोई 'लाल चिट्ठी' की तरह किताब? चंद्रकांता के बाद कोई उपन्यास निकला ही नहीं. उपन्यास की गलत परिभाषा भिमल को मत समझाओ!"

फिर परिभाषा देने से ही पिंड नहीं छूटने का. वह परिभाषा यदि उनकी बुद्धि में बैठी तो—ले बलैया!

रिपोर्टाचारज को परिभाषा को भी लेकर भिमल मामा भड़के थे, किंतु मैंने उन्हें समय पर समझा दिया था. कम शब्दों में थोड़े से कठिन वाक्यों में पांच बार 'आप तो समझते ही हैं, आप तो पुराने पाठक हैं'—आदि को बैठा दिया. मामा खुश हो गये. . .'लिखो! लिखो चलेगा! . . .मैं समझ गया, व्हाट इज योर रिपोर्टाचारज!"

पिछले दस साल में पंद्रह बार लोगों ने समझा—भिमल मामा से मेरी अब ठनी. दो-तीन बार स्वयं मेरी स्थिति डावांडोल हो गयी थी. एक बार निश्चय भी कर लिया था—लड़कर मुक्ति ले लूं. बकबक-झकझक से छुट्टी मिले, क्योंकि एक बार झगड़ा कर लेने के बाद भिमल मामा से 'प्रत्यक्ष वार्ता' का सौभाग्य नहीं प्राप्त होता. और 'प्रत्यक्ष' बैठकर 'अप्रत्यक्ष' वार्ता करने की कला लोगों ने उन्हीं से सीखी है.

प्रयाग चंद की आदत है कि अपने मन के समाचार अथवा लेखक के लेखन के 'लेखांश' को वह जोर-जोर से पढ़ता है. पोलिटिकल साइंस में एम. ए. की परीक्षा देकर आया तो भिमल मामा से लड़ाई हो गयी. भिमल मामा ने अधिकारपूर्ण लहजे में पूछा था, "पॉलिटिक्स पढ़कर क्या करोगे प्रयाग? . . .बगैर पॉलिटिक्स पढ़े ही तुम्हारे बाबूजी ने घर-घर में 'पार्टी-पॉलिटिक्स' की लत्ती लगा दी है, जो फूल-फल रही है. . ." प्रयागचंद ने धमकी दी थी, "युवक-सभा की अगली बैठक में सर्वसम्मति से पास करके 'कांके' (रांची के निकट का वह स्थान, जहां पागलों की चिकित्सा होती है) न भेजा तो कहना!"

इसलिए प्रयागचंद जब जोर-जोर से पढ़ता है, तब भिमल मामा अपनी प्रिय बासी पत्रिका से निकलकर एक बार चारों ओर देख लेते हैं. फिर दीवार की ओर देखकर जरा खांसते हैं और जोर से बोल उठते हैं—'शांती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से! सांती से!"

परमा, शिवमंगल, मनोहर अथवा अन्य सदस्य उनकी शांतिवाणी का कभी केयर नहीं करते हैं. प्रयाग, किंतु कठोर जवाब दे देता है—'चिंतन करने वाले कान में रुई ले सकते हैं.'

इस जवाब से भिमल मामा जरा भी विचलित नहीं होते. पुनः अपनी प्रिय बासी पत्रिका में डूब जाते हैं. उनका कथन है. 'अप्रत्यक्ष वार्ता' में बात दुहराई नहीं जाती!

हिसाब करके यह भी देखा गया है कि भिमल मामा हर दो-ढाई महीने के अंतर पर एक पूरा पखवारा 'पगलैट' बने रहते हैं. उनकी बातों का कोई बुरा नहीं मानता, उनके सवालों का कोई जवाब नहीं देता. हिंदी, उर्दू, अंगरेजी, बंगला, राजस्थानी आदि की खिचड़ी करके जो भाषा बोलते हैं—उसका प्रयोग अखिल भारतीय पैमाने पर करके सफलता प्राप्त की जा सकती है, किंतु गांव में तो प्रलापवाणी के सिवा उसका और कोई महत्व नहीं. शब्दों, चीजों और नामों की परिभाषा पूछते हैं अथवा किसी सामयिक राजनीतिक समाचार पर लोगों की राय बटोरते चलते हैं—"कैन यू से व्हाट पाकिस्तान वांट्स? कह सकते हो तुम कि क्या पाकिस्तान चाहता है? नो, नो, यू डोंट नो, आई नो—बट नॉट टेल. मैं जानता है, पर नहीं कहूं!'

बिना अनुवाद के एक पद नहीं बोलेंगे. अनुवाद तो आपने सुन ही लिया. अनुवाद पर भिमल मामा की अपनी पक्की राय है.

...सो, 'स्केच' शब्द की परिभाषा दिये बगैर मैं स्केच लिख रहा था, लिखता जा रहा था. भिमल मामा कैसे बर्दाश्त करें? 'पठनागार' में कड़ककर बोले थे, "आस्क हिम दि परिभाषा आफ स्केच, एंड हि विल प्रोड्यूस चूड़ा एंड अमावट, वन एंड हाफ सियर...' (अब आप अनुवाद कर ही सकते हैं! 'डेढ़ सेर चूड़ा अमावट' तो नहीं...?)

हमेशा की तरह जब उन्हें स्केच की परिभाषा समझाने की चेष्टा की तो गर्दन हिलाते हुए बोले, 'नो-नो! आइ एम नाट किंग अकबर...'

मानो लड़ने की पूरी तैयारी कर चुके थे. मामा बोले, "सुनो जित्तन! शब्द-चित्र, रेखा-चित्र अथवा... जो भी कहो, लेकिन मैं नहीं मानता. चित्र, चित्र है और लेख, लेख. अक्षरों द्वारा, शब्दों द्वारा तुम चित्र प्रस्तुत करोगे?...बड़ा जगदीशचंदरा बासु समझने लगे हो खुद को. क्या समझ लिया है? सभी राजा अकबर हैं कि दिखा दिया परिस्तान!'

तीन महीने तक वे शिवजी के 'बसहा' की तरह गर्दन हिलाकर अस्वीकार करते रहे. प्रश्न मैं क्यों उठाने लगा.? मुझे देखते ही खुद-ब-खुद वे स्केच पर अपनी राय देने लगते थे, "नो जित्तन, नो! परिभाषा साफ नहीं करोगे, स्केच पढ़ाओगे भिमल को? नो, नो!"

एक दिन हठात् मेरे घर आये. बैठे, फिर अपनी चादर के नीचे से एक पुरानी बंगला पत्रिका निकालकर उलटने लगे. एक पृष्ठ खोलकर मेरे सामने रखते हुए बोले, "ह्वाट दिस? है यह क्या?"

"स्केच है, नंदलाल बसु का."

'स्केच' का नाम है 'पड़ोसी'. गांव की गली का एक कोना है, कुछ औरतें एक साथ बैठकर हुक्का पी रही हैं, एक मर्द बंहगी में कुछ लटकाकर जा रहा है, दो मुर्गे लड़ रहे हैं, छोटे-छोटे चूजे. गेंद की तरह 'रॉल' कर रहे हैं...एक कुत्ता घूरे पर लेटा है. स्केच को गौर से देखने लगा. भिमल मामा ने, अचानक उत्तेजित होकर कहा, "इसे तुम शब्दों द्वारा प्रस्तुत करोगे...? खेल समझा है?...देखो जित्तन, बात समझो!...देखने वाले की नजर में चित्र एक ही बार समा जाता है न? लेकिन पढ़ते समय तो पंक्ति-पंक्ति पकड़कर घूमना पड़ेगा पाठकों को. खंड-खंड से तब टोटल, तब ग्रैंड टोटल...किसको है इतना धीरज?...कौन समझेगा?

समझनेवालों की कमी नहीं होगी अथवा इस टाइप के किसी जवाब से लड़ाई मोल ली जा सकती थी, किंतु मैं जरा चौंक गया. भिमल मामा की बात में सच्चाई की मुझे गंध लगी—वन तुलसी की तरह!...वन तुलसी की गंध जरा...कड़वी भी होती है.

दर्शक की सुविधा, पाठक की असुविधा?...कितना सच?

मुझे गुमसुम देख मामा का उत्साह बढ़ता ही गया—और तब वे अनवरत बोलने लगे..."और दिस आर्टिस्ट दि ग्रेट नंदो लाल को पूछो जाकर. इसे 'प्रचूस' (प्रोड्यूस और प्रस्तुत को मिलाकर भिमल मामा का शब्द) करने में हाउ-मच मंड-लेबर करना पड़ा है...स्पष्ट देख लो, विषय छोड़कर विषयांतर में गया है. विषय है—'पड़ोसी', जो दो लड़नेवाले मुर्गे हैं. विषयांतर हैं ये चूजे, यह बहंगीवाला...सूखी झिंगुनी का सांज देखा है न?...वैसी ही रेखाओं से बेकार इधर-उधर काम किया है. मगर विषय को जाननेवाला ही विषयांतर से अपने विषय को स्पष्ट करता है. जित्तन, "आई से...मैं कहता हूं—यू कांट डू...भाषा द्वारा...?"

भिमल मामा बकते-झकते चले गये तो मैंने फिर एक बार उस स्केच को देखा—लड़ते मुर्गे की आवाज स्पष्ट सुनायी पड़ी...गली की गंध नाक में समा गयी. मुर्गों की 'झटपटाहट' से उड़नेवाली धूप के साथ...

...शब्द! नंदलाल बसु के पास शब्द नहीं हैं, मेरे पास शब्द हैं... उनके लड़ते हुए मुर्गों की आवाज मैं सुन सका. शब्द शिल्पी क्या शब्दों द्वारा इसे और स्पष्ट नहीं कर सकेगा?

फिर उसी दिन से मेरे शब्द-चित्रों में, स्केचों में, कहानियों में मुर्गे बोलने लगे, मोटर के हार्न, गाड़ी की सीटी' ढोलक के ताल-शब्द उतरने लगे...कहीं इसकी अधिकता से कान की झिल्ली बंद हो सकती है. यह सब अनुभवों से जान रहा हूं...न-न! पाठकों की असुविधा मैं जानता हूं, समझने की चेष्टा करता हूं. अपनी आदतों की अच्छाई-बुराई से सतर्क हूं, क्योंकि स्वयं एक पाठक हूं...पढ़ने-वाला धैर्य?.

भिमल मामा स्केच तो नहीं पढ़ते, कहानियां मेरी खोजकर अवश्य पढ़ लेते हैं. साल में एकाध यदि कहीं निकलती है...भिमल मामा बासी पत्रिका ही पढ़ते हैं.

नयी प्रयोगवादी कहानी लिखते पांच-सात साल हो रहे, चार साल पहले एक दिन भिमल मामा आये और बोले—'वाह! वाह! गुड गुड-मेरी गुड! गुड-बेटर-बेस्ट!...अच्छा, बहुत अच्छा!. सुंदर—बेहतर—सर्वश्रेष्ठ! खूब लिखा—'मोरंग बनिजरवा.' हू-ब-हू, एक्जैक्ट!'

मुझे स्मरण हुआ. भिमल मामा-साइकिल्स में मोरंग (नेपाल) की लदनीवाली कहानी भी है...वहीं, एक बार उन्होंने सोचा कि स्वावलंबी होने के लिए गाड़ी की बहलमानी क्या, लाट साहब की दीवानी क्या. सब बराबर...घर से पूंजी लेकर, गाड़ी-बैल लेकर निकले. मोरंग से धान और लकड़ी लाकर प्रौफिट करने लगे...लंबी कहानी है.

"समझे जित्तन! ठीक तुम्हारा कहानी का झबू गाड़ीवान की तरह हम भी मोरंग की तराई में, गाव में घूमा है...साखू पेड़ के नीचे धूनी जलाकर 'बसेड़ा' किया है...बाघ को कनस्तर बजाकर भड़काया है... एकदम एक्जैक्ट? मोरंगियां जोंक तुमने कहां देखा, जित्तन? साला ठीक पत्तों के नोक पर आकर लकपकाता रहता है...'

समझ गया—कहानी ठीक उतरी है—सही...भिमल मामा को मन-ही-मन प्रणाम किया. वे पुरुष द्वारा लिखी कहानी को पुलिंग कहते हैं; कहानी तो लेखिका की होती ही है.

एक-एक शब्द के लिए झगड़ने वाले भिमल मामा ने बहुत से शब्दों की रचना की है. उनके साथ उनके शब्दों में बातें करने से वे बहुत खुश होते हैं. फिर, गलती से यदि कभी गलत निकला, बस भिमल मामा उठकर खड़ाऊं खटखटाते—ठीक नाक की सीध...

...दुखांत नहीं, दुःखदायेंड. सुखांत नहीं, सुखदाता. टेलीग्राम को तार कहिए, वे नहीं कहेंगे.—ट्रा. हां टेलीग्राम को ट्रा इसकी वैज्ञानिकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

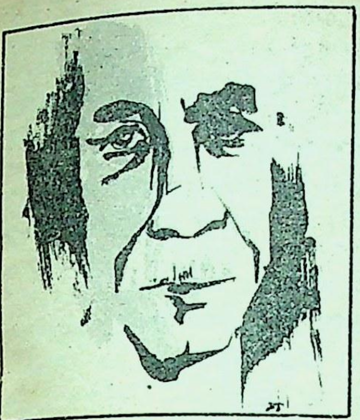

सुनिएगा?

आपको एक दूसरे शब्द की कहानी बताऊं. मेरे जिले में 'कामत' का प्रचलन खूब है. कभी 'काम' शब्द की जाति, धर्म, नस्ल पर ध्यान नहीं दिया. लिखना पड़ा, लिख दिया—मोहनपुर कामत पर कोई कामती स्थिर होकर नहीं रहे. फिर भी एक सौ मन धान हुआ. . .आपने नहीं समझा? घर से दूर, दूसरे गांव में जमीन खरीदकर खेती करने के लिए जो घर बनाया जाता है, उसे 'कामत' कहते हैं. फार्म कह लीजिए. . . कामत की एक विशेषता है कि वहां स्त्री के साथ आप नहीं रह सकते. घर का कोई 'समांग' भी कमतिया हो तो भी नहीं. . .फिर एक-एक किसान के पास दर्जनों 'कामत.'

तो भिमल मामा ने प्रश्न उपस्थित किया एक दिन, 'कामत' की परिभाषा? उत्पत्ति?"

मैंने कहा, "संभवतः, यह उर्दू का शब्द है. हमारे इलाके में मुसलमान जमींदारों के कई कामत थे."

"उहूं, रौंग. गलत. सही अर्थ मैं जानता हूं. एक महीने का समय देता हूं. पटना जाते हो, लिख भेजना पंडितों से बूझकर. देखूं, सही अर्थ बता सकता है या नहीं."

पटने आकर भूल गया. एक कार्ड मिला भिमल मामा का—'ह्वाट्स कामत?"

उर्दू के एक मशहूर कथाकार से पूछा. बोले, "यह तो अरबी का शब्द है अकामत. इसका अर्थ है—रहने की जगह. इसी से कामत हुआ है." भिमल मामा को कार्ड लिख दिया.

दूसरे दिन एक पाली जाने वाले मित्र ने कहा, "कामती का अर्थ पाली में होता है—खेती की रखवाली करने वाला. इसी से कामत हुआ होगा. . ." भिमल मामा को दूसरा कार्ड लिख दिया. . .दो महीने के बाद घर गया तो भिमल मामा हंसते हुए मिले, "बोथ रौंग. दोनों गलत. न अकामत, न कामत. सही शब्द है —कामांत. पुराकाल में, बड़े गृहस्थ के परिवार में किसी व्यक्ति को यदि किसी कारणवश स्त्री-वियोग सहना पड़ा, तो वह अपने काम का अंत कर देता था. परिवारवाले गांव से बाहर उसके लिए 'कामांत' बनवा देते थे. वहीं रहकर वह खेती-बारी देखता था. ऐसे कामांतियों द्वारा लगायी हुई फसल. . ."

स्केच की बात कहूं. एक महीना पहले की घटना है. भिमल मामा आकस्मिक ढंग से एक दिन लापता रहे. मालूम हुआ कि बीमार हैं तो और भी आश्चर्य हुआ. कभी तो उन्हें बीमार होते नहीं देखा गया . . .तीन दिनों तक जब घर से नहीं निकले तो गांव के लड़कों ने समझा कि भिमल मामा क्या चीज हैं. . .प्रयाग, शिवमंगल, मनोहर आदि पूछने गये थे. भिमल मामा की पड़ोस की मौसी ने कहा, "पगलवा तो बीमार है, बबुआ. . ." भिमल मामा अपनी झोंपड़ी के अंदर से ही बोले, "नो एडमिशन पेरिपड मेडिटेशन. . .' शिवमंगल कहता है. बोले, 'मेडिटेशन.' मनोहर कहता है—'नहीं-नहीं'; मामा बोले—'मेडिसन.'

दूसरे पहर मैं गया. बंद दरवाजे पर हल्की थपकी दी. दरवाजा खुल गया. देखा, भिमल मामा शीर्षासन करने की तैयारी में लगे हैं, "क्या है मामा? क्या समाचार?"

"आओ जित्तन, मैं तुम्हें बुलाने वाला था. . .गूड, गूड, ले वेरी गूड! गूड-बेटर-बेस्ट. . . .सर्वश्रेष्ठ . . .तुम्हारा कहानी पढ़ा. पढ़ा ही नहीं बड़ा जुल्म किया तुम्हारा कहानी. आई बिल ईट फीस. मैं खाऊंगा माछ. नाट मीट. नहीं मांस."

"ऐं? क्या बात है?"

भिमल मामा कंठीधारी वैष्णव तो नहीं थे, किंतु मांस-मछली शब्द का उच्चारण भी नहीं करते थे. और अचानक. . .

"पूछता, क्या बात है? तुम्हारा कहानी जादू डाला. उसमें एक मछली मारने वाला की बात है. . .डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के पुल के नीचे, काली कोसी में मैं भी 'बंड़सी' लेकर मछली मारता था. . .एकदम एक्जैक्ट. . ."—भिमल मामा ने अपने 'छिट्टे' (बुकसेल्फ) से पत्रिका निकाली—'चांद-सितारे'. अपने जिले की मासिक पत्रिका है 'चांद-सितारे.' इस अंक में मेरी 'माछ का झोल' प्रकाशित हुई थी. . .बाहर की किसी पत्रिका में इसलिए भी नहीं दिया कि मछली की बात थी. . .

भिमल मामा ने जरा उत्तेजित होकर कहा, "मैं वैष्णव नहीं. आत्मा नहीं मांगता था, नहीं खाता था. तुम्हारा कहानी पढ़ने के बाद—मेरा आत्मा डोला है. मैं सपने में मागुर मछली देखता हूं, पकड़ता हूं. . . खाता हूं. मैं मछली खाऊंगा. मैं कल से 'बंड़सी' की लग्गी लेकर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड पुल के नीचे जाकर बैठूंगा. अहा! क्या बताऊं. . .एक्जैक्ट, उसी तरह! सेवार से भरी काली कोसी, करमी के खिले हुए असंख्य फूल; पानी में गोता मारकर मछली पकड़ने वाली चिड़िया—माछ लोकनी! . . . टिटही की आवाज. . .बगुले का ध्यान! एक्जैक्ट! —पानी में तैरती हुई मछलियां! . . .मछलियां!"

तीस साल का वैष्णव मेरे कारण फिर से पथभ्रष्ट होने जा रहा है. गांव के लड़के पागल हो जायेंगे. जब भिमल मामा बंड़सी की लग्गी लेकर निकलेंगे. . .फिर आदत लगी तो पुस्तकालय, वाचनालय का सपना भी न देखेंगे. . .जब भिमल मामा ही नहीं आये वाचनालय में तो. . .क्या बैठेगा कोई एक क्षण पुस्तकालय के अहाते में. . .सब दोष मुझे मिलेगा.

मैं घबरा गया. भिमल मामा ने मुझे दिखाया. उन्होंने इन तीन दिनों में सब कुछ तैयार कर लिया है. बंड़सी की जेरी कैसी होनी चाहिए, मुझे समझाने लगे! . . .'चांद-सितारे' के संपादक पर गुस्सा हो आया. 'माछ का झोल' एक छोटा स्केच था. संपादक जी ने कुछ लिखा ही नहीं. भिमल मामा पढ़ गये, इसी से. विषय-सूची में देखा, लिखा था—'माछ का झोल' (स्केच). तुरत मेरे मुंह से निकल पड़ा, "मामा वह तो स्केच है. आप कैसे पढ़ गये?"

"धत्. . .झूठी बात. स्केच नहीं, कहानी है."

"देखिए, क्या लिखा है विषय सूची में."

"गेट आउट!. जाओ बाहर. क्रिमिनल, फौजदार! . . .तुमने मुझे मछली खिला दिया धोखे में. यू. . .यू. . .वेट? ठहरो!"

जीवन में पहली बार देखा—भिमल मामा को आक्रमण करने की चेष्टा करते. मैं उठ खड़ा हुआ तो वे चुप हुए. फिर बोले, "जित्तन, डोंट. . . डोंट!"

मैं चुपचाप चला आया. भिमल मामा रो पड़े थे. भिमल मामा से मेरी लड़ाई है. अब अप्रत्यक्ष वार्ता होती है. मैंने उनसे संधि करने की सैकड़ों बार चेष्टा की, पर बेकार!

मैं अपने को दोषी समझता हूं. भिमल मामा की आत्मा को मैंने ही 'चलायमान' कर दिया. . .देवता! मुझे क्षमा करें. . .दोष, थोड़ा 'चांद-सितारे' के संपादक के सिर थोपकर भी मुक्ति नहीं.

और, भिमल मामा के नाम की भी कहानी है. नाम—विजयमल्ल सिंह. 'सिंह' को मामा ने सन उन्नीस सौ बीस में ही उड़ा दिया. लिखने लगे व्ही. मल्ल, म. म. चूंकि, भिमल कृत 'मानुमति पेटिका' के सभी प्रश्नों का उत्तर कोई नहीं दे सकता, इसलिए, उन्होंने महोमहापाध्याय जोड़ना शुरू किया. संक्षेप में—म. म., बाद में नाम हुआ—भिमल मामा. वे किसी के मामा नहीं, और न. . .!

. . .नान्हू चौकीदार का स्केच आज नहीं हो सका. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजनबी

अल्बेयर कामू

वह अपनी मां को उतना ही प्यार करता था जितना कि कोई भी बेटा कर सकता है! वह अपने दोस्तों के दुख-सुख का उतना ही साथी था जितना कि कोई भी दोस्त हो सकता है! उसे अपनी प्रेमिका से उतना ही शिद्दत भरा लगाव था जितना कि किसी भी प्रेमी को हो सकता है!.....मगर फिर भी वह दुनिया के सफर में नितांत अजनबी ही क्यों रह गया?—प्रस्तुत है व्यक्ति के अंदरूनी द्वंद्वों को व्यक्ति और समाज के संदर्भ में जग-जाहिर करते फ्रांसीसी उपन्यास का संक्षिप्त रूपांतर.....

मोशिए म्योरसोल, शहर अल्जीयर्स के एक दफ्तर में काम करता था. उसकी आमदन इतनी नहीं थी कि वह अपनी मां को ठीक-ठीक ढंग से अपने साथ रख सके. इसलिए उसने मां को वहां से पचासेक कि.मी. दूर स्थिति मारंगो के वृद्धाश्रम में भेज दिया और हर मास उसका खर्चा भेजता रहा.

तीन साल बीत गये. एक दिन उसे तार द्वारा खबर मिली कि—मां अब नहीं रही!... अंत्येष्टि कल होगी.

उसने सोचा, अगर वह आज दोपहर को यहां से चल दे तो रात को शव के सिरहाने 'रतजगा' करने के बाद कल शाम तक वापस भी आ सकता है. उसने जाकर अपने बॉस से दो दिन की छुट्टी मांगी तो उसे लगा कि बॉस कुछ झुंझला-सा गया है. वह बिना सोचे ही बोल पड़ा, "देखिए, अब इसमें मेरा क्या कसूर है?" फिर उसे लगा कि उसे गिड़गिड़ाने की क्या जरूरत थी! बल्कि बॉस का तो फर्ज बनता था कि उसे सांत्वना देता. पर उसने कोई औपचारिक बात तक नहीं कही.

फिर रोज की तरह उसने रेस्तरां में जाकर खाना खाया. रेस्तरां के मालिक सेलेस्ते ने कहा, "मोशिए, मां की बराबरी दुनिया में कोई नहीं कर सकता." उस दिन रेस्तरां के सब लोग उसे बाहर द्वार तक छोड़ने आये. वहां से निकलकर वह एक दोस्त के पास गया और उससे काली टाई तथा बाजू पर बांधने के लिए शोकपट्टिका ले आया, क्योंकि दोस्त के चाचा की मृत्यु अभी हाल ही में हुई थी.

आश्रम में पहुंचकर उसने पहले मां के दर्शन करने चाहे, किंतु चौकीदार ने बताया कि इसके लिए उसे वार्डन से इजाजत लेनी होगी. वह वार्डन के पास जा पहुंचा. वार्डन ने उससे हाथ मिलाया और उसका हाथ इतनी देर थामे रखा कि उसे बेचैनी होने लगी. फिर कुछ बातचीत के बाद उसने उसे चौकीदार के साथ शवगृह की तरफ भेजते हुए बताया, "आपकी मां की अंतिम इच्छा थी कि उन्हें चर्च के नियमानुसार दफन किया जाये. मैंने इसकी व्यवस्था कर दी है."

"जी, पर जहां तक मैं जानता हूं, मेरी मां नास्तिक तो नहीं थीं, पर धर्म-कर्म की तरफ भी उनका कोई ध्यान नहीं था."

"हो सकता है आश्रम में आकर उनमें यह परिवर्तन आ गया हो. वह यहां काफी खुश रहती थीं, घर से भी ज्यादा...अपने हमउम्र लोगों के बीच रहने का एक अलग सुख होता है. घर में वह अकेली थीं और फिर आप भी अभी उम्र में बहुत ही छोटे हैं."

बात सही थी. घर में मां उसे बस देखती रहती थीं. बातचीत, वह भी थोड़ी-बहुत, उनमें कभी-कभार ही होती थी... आश्रम में आने से पहले वह काफी परेशान रही थीं. पर तीन माह बाद ही जब उसने उन्हें वापस घर ले जाने की बात कही तो वह पहले से भी ज्यादा परेशान हो उठी थीं. फिर उसे पता चला कि मां ने वहां एक नया 'जीवन साथी' खोज लिया था. यह बात उसे अजीब-सी लगी, फिर भी उसने परवाह नहीं की. यही वजह रही कि उसने आश्रम में आना लगातार कमतर कर दिया था.

शवगृह काफी साफ-सुथरा था. वह मां के ताबूत के पास पहुंचा तो चौकीदार उसका ढक्कन खोलने लगा. पर उसने मना कर दिया कि इसकी कोई जरूरत नहीं. चपरासी हैरान रह गया. उसने जिज्ञासावश पूछा, "क्यों?"

"इसका जवाब दे पाना तो जरा मुश्किल है." उसने कहा तो चौकीदार पहले तो खड़ा-खड़ा अपनी मूंछों पर बल देता रहा, फिर हौले-से बोल उठा, "ओह... मैं समझ गया!"

वह कुर्सी पर बैठा-बैठा मां के ताबूत को मानो आर-पार देखता रहा.

कुछ देर बाद चौकीदार उसके लिए कॉफी ले आया. काफी पीकर उसे सिगरेट की तलब लगी, मगर वह असमंजस में पड़ गया कि 'मां की उपस्थिति' में पिये या न पिये!... फिर उसे लगा कि जब सोच ही लिया है तो कोई हर्ज नहीं. उसने चौकीदार को भी सिगरेट पेश की और दोनों बैठे कश मारने लगे.

थोड़ी देर बाद उसकी मां के संगी-साथी भी आ गये. रतजगा पूरा हुआ. और फिर अगले दिन अंत्येष्टि भी संपन्न हो गयी. वह अपने शहर वापस आ गया. वह प्रायः तटस्थ रहनेवाला आदमी था. इसलिए वह इस हादसे से विचलित तो नहीं हुआ पर अपने-आपको बहुत थका हुआ महसूस कर रहा था. सहसा यह पाकर कि अपनी दो दिन की छुट्टी काटने के बाद अब अगले दिन शनि और इतवार भी दफ्तरी छुट्टी के दिन थे तो वह अगले दिन सुबह-सुबह ही बंदरगाह जानेवाली ट्राम से 'स्वीमिंग पूल' जा पहुंचा. वहां उसे अपने दफ्तर की पुरानी टाइपिस्ट कार्डोना मिल गयी. वे दोनों मौज करते रहे. रात को भी कार्डोना उसके घर पर ही रही. इस प्रकार उसने अपने शोक को भूलकर आनंद के क्षणों का उपयोग किया.

सोमवार को वह दफ्तर से लौटा तो उसका पड़ोसी रेमंड उसे भोजन के लिए अपने घर लिवा ले गया. रेमंड के बारे में लोगों की राय अच्छी नहीं थी. वे उसे 'दल्ला' कहते थे. उस दिन रेमंड ने उसे अपनी प्रेमकथा सुनाकर कहा, "मैं उस लड़की से प्यार करता था, पर उसने मुझे धोखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया. अब मैं उससे बदला लेना चाहता हूं. तुम मेरी मदद करो. . . मेरी तरफ से एक ऐसा पत्र उसे लिख दो कि उसे अपने किये पर पश्चाताप होने लगे. . . वह तड़प उठे. फिर वह मेरे पास आयेगी तो मैं उसे धक्के मारकर बाहर निकाल दूंगा!''

मोशिए ने अब तक हालांकि काफी दारू पी ली थी, फिर भी उसने खत लिख दिया, जो रेमंड को बहुत वजनदार भी लगा और शानदार भी.

अगले शनिवार पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार उसकी मित्र कार्डना आ पहुंची. रात को जब कार्डना ने उसका पाजामा-कमीज पहनकर बाहें ऊपर चढ़ायी तो वे दोनों हंसने लगे. हंसते-हंसते ही कार्डना ने उससे पूछा, ''तुम मुझे प्यार करते हो न?''

वह सहसा गंभीर हो गया, ''दरअसल, इस तरह के सवाल का कोई जवाब नहीं होता, मगर जहां तक मैं समझता हूं. . . मैं तुमसे प्यार-व्यार नहीं करता.''

सुनकर वह कुछ दुखी-सी हुई, पर इससे पहले कि वह कुछ कह पाती ठीक उसी क्षण रेमंड के कमरे में चीख पुकार मच गयी. रेमंड दहाड़ रहा था और किसी लड़की को पीट रहा था, ''कुत्तिया! . . . कमीनी! . . . हरामजादी! . . . आज तू जानेगी कि मुझसे दगा करने का अंजाम क्या होता है!''

वह, कार्डना और अन्य पड़ोसी भी घरों से बाहर निकल आये, फिर पुलिस भी आ गयी. लड़की ने सिसकते हुए कहा, ''इस दल्ले ने मुझे मारा. . . !''

''माफ कीजिए,'' रेमंड ने सिपाही से कहा, ''इतने लोगों के सामने किसी भले आदमी का 'दल्ला' कहना कहां की शराफत है?''

''बकवास बंद करो!'' सिपाही ने घुड़का, ''जब तक थाने से बुलावा न आये घर में ही रहना. . . शराबी! मारे नशे के तुम्हारा शरीर कांप रहा है! . . . शर्म आनी चाहिए!''

''यह नशा नहीं जनाब, मैं तो जब भी पुलिस को देखता हूं, ऐसे ही कांपने लगता हूं.''

सिपाही लड़की को लेकर चला गया तो रेमंड ने आकर उससे अनुरोध किया कि वह उसका गवाह बन जाये और थाने चलकर यह कह दे कि उस लड़की ने वाकई उसके साथ धोखा किया है. वह सहर्ष तैयार हो गया. फिर रेमंड ने उन दोनों को ब्रांडी पिलायी और वे साथ-साथ टहलने भी गये. वापस आये तो मोशिए ने पाया कि उसका बूढ़ा पड़ोसी सलामानो, जिसका कि कुत्ता खो गया था, अपने कमरे में बैठा रो रहा था. उस रात उसे रह-रहकर मां और मां की बातें याद आती रहीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ दिन बाद रेमंड ने उसे टेलीफोन पर निमंत्रण देते हुए कहा, "इस इतवार को सागर-तट पर चलो. . . मेरी तरफ से."

"नहीं यार!" उसने कहा, "मेरा कार्यक्रम तय है इस बार. . . कार्डेना के संग."

"उसे भी साथ ले चलो."

"ठीक है, पूछ लूंगा उससे."

"पूछना नहीं, चलना है बस. . . एक बात तुम्हें और भी बतानी है. कुछ अरब सुबह से मेरा पीछा कर रहे हैं. एक तो उसी लड़की का भाई है. घर लौटते वक्त अगर कहीं कोई नजर आये तो मुझे बता देना."

"जरूर. . ." कहकर उसने फोन रखा ही था कि बॉस ने बुलवा लिया, वह सकपका गया कि अब डांट पड़ेगी. . . कहेगा. . . 'फोन पर गप्पें लगाने के बजाय काम करो!' . . . पर बात कुछ और ही थी. यह बताकर कि कंपनी पेरिस में अपनी एक शाखा खोलना चाहती है, बॉस ने कहा, "तुम नौजवान हो, पेरिस जाकर मौज मारने का मन करता होगा तुम्हारा भी?"

उसने कहा, "मैं वहां रहूं या यहां मेरे लिए कोई फर्क नहीं!"

"तुम्हारा मन नहीं होता कि जीवन में कुछ नयापन आये?"

"बॉस, अपने असल जीवन को क्या कोई बदल पाया है? जैसे एक ढर्रा, वैसे ही दूसरा ढर्रा. जीवन जैसे भी बीत रहा है मुझे उससे कोई गिला नहीं."

बॉस उसे समझाता रहा कि उसे महत्वकांक्षी होना चाहिए. पर यह सोचकर कि कौन बहस करे, वह चुपचाप सुनता रहा, क्योंकि बॉस जिस महत्वाकांक्षा का दर्शन झाड़ रहा था, वह कभी उसमें कूट-कूटकर भरा हुआ था, पर पढ़ाई-लिखाई छोड़ने के बाद उसे समझ आ गया था कि यह सब बातें कोरी बकवास हैं!

उसी शाम कार्डेना ने आकर कहा, "मोशिए, मुझसे शादी करोगे?"

"तुम चाहती हो तो कर लूंगा."

"तुम मुझसे प्रेम करते हो?"

उसने वही जवाब दिया जो पहले दिया था तो कार्डेना बोली, "अगर ऐसा है तो शादी किसलिए करोगे?"

"कोई फर्क नहीं पड़ता. शादी करने से तुम्हें सुख मिलता है तो यही सही."

"यह एक गंभीर मामला है, कोई बच्चों का खेल नहीं."

"तुम्हें लगता होगा."

"अच्छा, मेरी जगह कोई और लड़की होती. . . तुम्हारे लिए मेरे जितनी ही जानकार तो क्या तुम उसे भी यही जवाब देते?"

"बिल्कुल."

"मैं तुम्हारी इन्हीं बातों पर तुम्हें प्यार

करती हूं. . . लेकिन यह भी हो सकता है कि किसी दिन इन्हीं बातों पर तुमसे घृणा करने लगूं."

वह खामोश रहा. कहता भी क्या!

अगले रविवार को वह, कार्डेना और रेमंड समुद्र तट पर रेमंड के मित्र मैसन के बंगले पर पहुंच गये. मैसन की पत्नी भी उसके साथ थी. सुबह समुद्र स्नान से लेकर दोपहर के भोजन तक वे सब साथ रहे, मगर उसके बाद दोनों स्त्रियां तो बंगले पर ही रह गयीं और वे तीनों घूमने निकल गये.

वे समुद्र के किनारे-किनारे चले जा रहे थे कि मोशिए ने पाया कि दो अरब उनका पीछा कर रहे हैं. वे तीनों जहां थे वहीं रुक गये. कुछ ही पल में जब वे अरब उनके पास आ गये तो रेमंड और मैसन ने उन दोनों की जमकर पिटाई कर दी. सहसा एक अरब ने चाकू निकाल लिया और देखते ही देखते रेमंड की बांह और मुंह पर कई वार कर डाले. फिर वे दोनों चाकू तानकर पीछे हटते गये और भाग गये.

वे दोनों रेमंड को सहारा देकर बंगले तक लाये. फिर मैसन, मोशिए को वहीं छोड़कर, रेमंड को डाक्टर के पास ले गया. दो-ढाई घंटे बाद वे वापस आये तो रेमंड सबको बंगले में ही छोड़कर, समुद्र की तरफ निकल गया तो मोशिए बस, यूं ही उसके पीछे-पीछे हो लिया.

जहां समुद्र तट समाप्त हो रहा था वहां पानी की पतली-सी धारा थी, जो एक भारी चट्टान के पीछे से निकलकर, रेत में नाली-सी काटती हुई समुद्र में जा मिली थी. वहां वही दोनों अरब आराम से रेत पर लेटे हुए थे रेमंड ने अपना पिस्तौल निकालकर उस अरब पर तान लिया, जिसने उसे घायल कर दिया था. पर मोशिए ने उसे टोक दिया, "जब तक वह तुम्हें मारने के लिए चाकू न निकाले तब तक तुम्हें उस पर गोली चलाने का कोई अधिकार नहीं."

रेमंड ने तनिक न-नुकर की मगर फिर मान गया. उसने अपना पिस्तौल, मोशिए को दे दिया और उसके साथ वापस बंगले पर आ गया. मोशिए पहले तो काफी देर तक नासमझ-सा धूप में आ ही खड़ा रहा, लेकिन फिर अकेला ही चट्टानों की तरफ निकल गया. धूप के मारे बुरा हाल हो रहा था, मगर तपन ने उसे एक अजीब-से उन्माद से भर दिया था. . . और वह चलता ही जा रहा था. आखिर वह एक छायादार सुखद स्थान पर पहुंच ही गया. वहां वह लेटना ही चाहता था कि उसने देखा, वहां अब सिर्फ एक . . . और वही अरब जिसने रेमंड को घायल किया था, अकेला ही लेटा हुआ था उसे अपने इतना पास पाकर अरब ने चाकू तान लिया. मोशिए, एकदम उत्तेजित हो उठा और उसने रेमंड से लिया हुआ पिस्तौल दाग दिया. एक गोली चलने के बाद वह कुछ पल रुका. . और फिर उसने एक के बाद एक चार गोलियां दाग दीं. अरब वहीं ढेर हो गया.

मोशिए को गिरफ्तार कर लिया गया. कुछ दिन बाद मुकद्दमा शुरू हुआ. उसने कोई वकील नहीं किया, इसलिए अदालत की ओर से उसे एक वकील कर दिया गया. वकील ने उसे बताया कि अदालत उसके चरित्र की जांच-पड़ताल करवायी है और पुलिस ने यह काम पूरा करके अपनी रिपोर्ट भेज दी है. मोरेंगो के आश्रम में हुई तफतीश में बताया गया है कि अपनी मां की अंत्येष्टि में उसने बड़ी बेरुखी दिखायी. . . और अब उस पर बेहयाई और हृदयहीनता का आरोप लगाया गया है.

वह खामोश बैठा रहा.

"अब तुम मेरी बात सुनो." वकील ने कहा, "जैसा मैं कहूं करते चलो. . और मुझे सच-सच बताओ. . . क्या सचमुच तुम्हें मां के निधन पर दुख नहीं हुआ?"

मोशिए बोला, "इधर कई साल से अपने मन की भावनाओं की तरफ ध्यान देने की आदत छूट-सी गयी है. इसलिए इस बात का जवाब दे पाना मुश्किल है. हां, मैं यह जरूर जानता हूं कि मैं मां को बहुत चाहता था. मगर इससे क्या! . . सच तो यह है कि सामान्य लोग जिन्हें प्यार करते हैं, आज या कल उनके मरने की कामना भी कमोबेश जरूर करते हैं."

वकील एकदम घबरा उठा, "कसम खाओ कि अदालत में तुम इस तरह की कोई भी बात मुंह से नहीं निकालोगे."

वकील की तसल्ली के लिए उसने कसम खा ली. मगर उसके समक्ष यह भी खुलासा कर दिया कि कभी-कभी किन्हीं खास मौकों पर उसकी भावनाएं उसकी शारीरिक स्थिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से प्रभावित होने लगती हैं. जिस दिन वह मां की अंत्येष्टि में गया था उस दिन वह आधी नींद में था. . उसे कतई होश नहीं था कि कहां क्या हो रहा है. हां, एक बात का यकीन उसने वकील को दिला दिया कि उसकी तो इच्छा थी कि मां अभी जिंदा रहती.

रेमंड की दोस्ती से लेकर अरब की हत्या तक की कहानी उसे कई जगह बार-बार सुनानी पड़ी. अदालत में अंतिम बार जज ने सारा वाकया सुनकर एक सीधा सवाल किया, "क्या तुम अपनी मां को प्यार करते थे?"

"जी हां, जैसे और लोग अपनी मां को प्यार करते हैं, मैं भी करता था."

"तुमने एक के बाद एक पांच गोलियां क्यों चलायीं?"

"जी नहीं, पहले मैंने एक गोली चलायी और फिर चार . . . "

"लेकिन क्यों? . . . क्यों? . . . किसलिए?" उसे लगा जैसे उसकी आंखों के आगे वह सारा दृश्य तैर रहा है—समुद्र तट की तपन! . . . गालों पर भभकती सांस का स्पर्श! . . इस बार उससे कोई जवाब देते नहीं बना.

इस बीच जज ने अलमारी में से सूली पर चढ़े ईसा की चांदी की मूर्ति निकालकर उसे दिखाते हुए कहा, "जानते हो, यह कौन है".

"जानता हूं."

"मुझे यह समझ नहीं आ रहा कि एक गोली चलाने के बाद तुम रुके क्यों?"

उसने कहना चाहा कि यह कोई ऐसी जरूरी बात नहीं है, पर उससे पहले ही जज सहसा तनकर खड़ा हो गया और बोला, "तुम ईश्वर को मानते हो?"

"जी नहीं." सुनते ही मारे क्रोध के धम्म-से कुर्सी पर बैठ गया .फिर वह बड़े दुखी भाव से बोला, "मैंने तुम जैसा जड़ और दयाहीन प्राणी कभी नहीं देखा. आज तक न जाने कितने मुजरिम यहां आये हैं. . . और प्रभु की इस मूर्ति को देखकर फूट-फूट कर रोये हैं."

'वे मुजरिम थे इसलिए जरूर रोए होंगे.' पर बात उसके होंठों तक आकर रह गयी. पता नहीं क्यों, उसका मन मानता ही नहीं था कि वह मुजरिम है.

"क्या तुम्हें अपने किये पर पश्चाताप है". जज ने आखिरी सवाल पूछा.

उसने कुछ सोचकर जवाब दिया, "मुझे पश्चाताप कम और परेशानी ज्यादा महसूस होती है."

मगर जज उसकी इस संवेदना को समझा ही नहीं.

इसके बाद कई पेशियां हुईं और दसियों गवाहियां. सरकारी वकील की बस एक ही रट थी कि यह हत्या सोच-समझकर योजना-बद्ध तरीके से की गयी है. . . . और इस शख्स

के मुंह से अपने अपराध के लिए पछतावे का एक लफ्ज तक नहीं फूटा है.

यह बात सुनकर मोशिए के मन में आया कि वकील के कंधे पर हाथ रखकर कहे, "बड़े भाई, अपनी सारी जिंदगी में इस नाचीज को कभी किसी बात पर पछतावा नहीं हुआ. अपन तो हमेशा सुबह और शाम को लेकर ही इतने मस्त रहे कि पीछे झांकने की फुर्सत ही नहीं मिली." पर उसे लगा कि दोस्ताना लहजे में बात करने की अब कोई तुक नहीं रही.

फिर एक ढली हुई शाम के वक्त अदालत ने अपना फैसला सुना दिया—"फांसीसी जनता के नाम पर उसे चौराहे पर ले जाकर उसकी गर्दन काट दी जाये."

जेल में उसे सूचना दी गयी कि पादरी उससे मिलना चाहता है ताकि वह अपने पाप का प्रायश्चित कर ले. मगर उसने मिलने से इंकार कर दिया. दूसरी बार भी और फिर तीसरी बार भी. चौथी बार पादरी स्वयं ही उसकी कोठरी में चला आया उसने उससे पूछा, "तुम मुझसे मिलना क्यों नहीं चाहते?"

"मैं ईश्वर को नहीं मानता."

"क्या यकीनन?"

"मैं इस पर सिर-खपाई नहीं करना चाहता."

"तुम शायद हताश और निराश हो."

"नहीं, कतई नहीं. . हां, डर जरूर लगता है. . . जो कि स्वाभाविक है."

"फिर तो अब ईश्वर . . . तुम्हें बल दे सकता है. तुम्हारी स्थिति में पड़ा हर व्यक्ति अंततः ईश्वर की शरण में आया है."

मोशिए दहाड़कर बोला, "मेरी और हर व्यक्ति की बात एक-सी नहीं. जिसको जो करना हो करे. . . मुझे किसी से कोई बल-वल नहीं लेना है. मुझे मरना है और मरने के बाद कुछ भी नहीं रहता."

"अच्छा, मरने के बाद तुम कैसे जीवन की कामना करते हो?"

"कामना करने से कुछ सिद्ध नहीं होता. कामना तो बस, कामना ही है. . . और इस तर्ज में मेरी कामना है कि मरने के बाद धरती के इस जीवन की याद बनी रहे. बस, अब आप जाइए."

पादरी ने बात बदल दी, "मैं पादरी हूं, यह जानकर भी तुमने मुझे 'फादर' क्यों नहीं कहा?"

वह झल्ला उठा, "आप मेरे फादर कहां से हो गये? . . आप तो मुझे फांसी देनेवालों के साथी हैं."

"नहीं बेटा, मैं तो तुम्हारी तरफ हूं. तुम समझ ही नहीं रहे. तुम पथरा गये हो. . . फिर भी मैं तुम्हारे लिए प्रार्थना करूंगा."

पादरी का इतना कहना ही था कि एकाएक मानो उसके हृदय में भयावह विस्फोट-सा हुआ और वह अंधा-धुंध बकने और चिल्लाने लगा, "मेरे लिए प्रार्थना करने की कोई जरूरत नहीं. . दफा हो जाओ.!" यहां तक कि उसने पादरी के वस्त्र तक भी फाड़ डाले. जेल के सिपाही आ पहुंचे. उनमें से एक ने उसे मारने के लिए हाथ उठाया ही था कि पादरी ने उसे शांत कर दिया.

पादरी चला गया तो उसका मन फिर से शांत हो गया. उसे खूब नींद आयी. पौ फटने से पहले उठा तो आज कई महीने बाद उसे मां की याद आ गयी. उसे आज यह बात समझ में आयी कि जीवन की अंतिम वेला में जबकि सांसों की लौ बुझने को होती है, मां ने क्यों अपना एक नया साथी चुन लिया था! मृत्यु के इतना समीप आकर मां ने ठीक उसी तरह सोचा होगा जैसे मुक्ति के द्वार पर खड़ा कोई व्यक्ति जिंदगी को नये सिरे से शुरू करने की बात सोचता है. नहीं, उसके लिए रोने का किसी को कोई अधिकार नहीं! . . . उसे लगा कि क्रोध और आवेश के इस अंधड़ ने उसके मन की सारी मैल धो-पोंछ दी है. अब उसे कोई दुख नहीं रहा और आज, इस वक्त, इस विपदा में भी वह बहुत खुश है. अंततः यह स्थिति भी तो एक तरह की यात्रा ही है! . . . और ताकि इस नयी यात्रा में अकेलापन महसूस न हो, उसने कामना की कि जिस वक्त उसे चौराहे पर ले जाकर खड़ा किया जाये, उसके चारों तरफ अथाह लोग हों और वे हंसी-खुशी जोर-शोर से उसका विदाई समारोह मना रहे हों! . . . □

● संक्षिप्त रूपांतर : र.ब.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सस्ते सिर

कृश्न चंदर

कृश्न चंदर उर्दू के उन प्रख्यात कथाकारों में हैं जिन्हें हिंदी पाठकों का अपार स्नेह मिला. 'एक गधे की आत्मकथा' जैसे उपन्यास और अपने समय की बेहद चर्चित कहानियों के लेखक के रूप में कृश्न चंदर की अपनी अलग पहचान है.

आज की जिंदगी में हर चीज बिकाऊ क्यों होती जा रही है? जिंदगी के नैतिक मूल्यों से इंसान का ईमान आखिर क्यों उठ गया है? यहां प्रस्तुत है ऐसे ही कुछ सवालों से सीधा साक्षात्कार.

CC0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाई रोड पर पहली बिल्डिंग सात मंजिला है. उसके बाहर चार मंजिला बिल्डिंगों की एक लंबी कतार बहुत दूर तक चली गयी है.

मेरे दोस्त ने सात मंजिला बिल्डिंग के करीब रुककर मुझ से कहा, "वह देखो, इस सात मंजिला बिल्डिंग की चहारदीवारी के बाहर सड़क के किनारे जामुन के पेड़ के नीचे जो मोची बैठा है न. . .!"

"हां!"

"यह सात मंजिला बिल्डिंग पांच साल पहले इसी मोची की थी."

"फिर कैसे . . . . ?" मैंने अपने दोस्त से पूछा.

"यह तुम उसी मोची से पूछो." मेरा दोस्त बोला.

मगर उस वक्त पूछने का मौका नहीं था. हम दोनों एक इंटरव्यू के लिए उसी बिल्डिंग की पांचवीं मंजिल पर जा रहे थे. जब इंटरव्यू से नाकाम होकर लौटे, तो मेरा दोस्त तो इस कदर रुष्ट और बेजार हुआ दुनिया से कि उसने मेरा इंतजार भी नहीं किया. अपना इंटरव्यू खत्म करके चलता बना. हालांकि मामला सिर्फ चार सौ रुपये की नौकरी का था.

बिल्डिंग से निकलरकर मैं टहलता-टहलता मोची के पास चला गया. मोची बिल्डिंग की तरफ पीठ किये पेड़ के नीचे अपना सामान रखे आलथी-पालथी मारे महात्मा बुद्ध की तरह गुमसुम बैठा था. उसका जिस्म कमर तक नंगा था. नीचे सिर्फ एक धोती थी. सांवले सीने के बाल खिचड़ी थे. टांट गंजी थी. हाथ खुरदुरे और चेहरा गोल-मटोल था. आंखें छोटी-छोटी, बेहद चमकीली और मुस्कराती हुई थीं. वह अपने आकार और व्यक्तित्व से किसी तरह सात मंजिला बिल्डिंग तो एक तरफ, सात गज जमीन का मालिक भी नहीं लगता था. उसके व्यक्तित्व में कोई खास बात नहीं थी. सिवाय इसके कि उसकी सेहत बहुत अच्छी लगती थी, और उसके जिस्म की खाल कमाये हुए चमड़े की तरह चमकती थी. मगर ऐसे सेहतमंद और कसरती जिस्म तो इस शहर में लाखों के पास होंगे. सात मंजिला बिल्डिंग कितनों के पास होगी?

"पालिश कि मरम्मत?" उसने पूछा.

"दोनों!" मैंने जवाब दिया.

मोची ने मेरे जूते उतार लिये और उन्हें उलट-पलटकर गौर से देखने लगा. मैंने सोचा, यकीनन मेरे दोस्त ने मुझसे मजाक किया है. फिर ख्याल आया, आखिर पूछ लेने में क्या हर्ज है. . ."मैंने सुना है, तुम कभी इस सात मंजिला बिल्डिंग के मालिक थे!"

मोची ने फौरन कोई जवाब नहीं दिया. बड़े इतमीनान से मेरे जूतों को उलट-पलटकर बड़े गौर से देखता रहा. जैसे वह मेरे जूते देखने के बजाय उन्हें पढ़ने की कोशिश कर रहा हो. फिर उसने अपनी निगाह उठाकर मेरे चेहरे की तरफ देखा, मानो जूते के चमड़े को पढ़ने के बाद मेरे चेहरे के चमड़े को पढ़ने की कोशिश कर रहा हो.

मालूम नहीं, उसने क्या देखा, क्या पढ़ा. वह आहिस्ता से मुस्कराया, "लगता है, इस शहर में नये-नये आये हो!"

"हां, नौकरी की तलाश में आया था!"

"और वह मिली नहीं!" मोची ने फिर कहा.

"हां, मगर तुम्हें कैसे मालूम है?" मैंने पूछा.

मोची ने लकड़ी का एक छोटा-सा खुरदरा स्टूल मेरे लिए पेड़ के साये में रख दिया और मेरे जूते को लकड़ी के एक अड्डे में उल्टा फंसाते हुए बोला, "इस स्टूल पर बैठ जाओ और सुनो. मैं आम तौर पर सुनाता नहीं, मगर तुम हकदार हो सुनने के. . . .

मैं बचपन से बयालीस बरस तक की दास्तान नहीं सुनाऊंगा. क्योंकि बीज से पेड़ तक का अरसा बहुत बड़ा अरसा होता है. इस अरसे में दरख्त बहुत से गुनाह करता है और बहुत से गुनाह उस पर लाद दिए जाते हैं. लोग उसकी टहनियों से लटककर खुदकुशी करते हैं और डाकू उसके तने से टेक लगाकर लूट का माल संभालते हैं, और दरख्त चिड़ियों को घोंसला बनाने की इजाजत देता है, ताकि सांप उनके अंडे चरा सके. जमीन से आसमान तक सफर करते हुए हरी कोंपल की खाल किस कदर मोटी हो जाती है, यह एक अलग दुखांत है. इसे सुनाने के लिए न मेरे पास फुरसत है, न तुम्हारे पास वक्त. मोची का स्वर ही बदल गया था. मेरा मुंह हैरत से खुल गया. मैंने स्टूल उसके करीब खिसका लिया ताकि उसका कोई शब्द सुनने से रह न जाये.

मैं तुम्हें अपनी पुरानी जिंदगी की सिर्फ आखिरी घटना सुनाऊंगा. जब मैं बयालीस साल का था और जब मैंने जमाने के सर्द-गर्म से गुजरकर ठेके, परमिट, कोटे, स्मगलिंग, सट्टे, बेईमानी, रिश्वत, धमकी, नरमी, खुशामद, चापलूसी, धोखा-धड़ी, मतलब यह कि हर तरह की तिकड़म इस्तेमाल कर के पांच करोड़ रुपया इकट्ठा कर लिया. कोई मामूली रकम नहीं है और किसी मामूली बेईमानी से नहीं मिलती है. उसके लिए ईमानदारी की भी जरूरत होती है, लेकिन ऐसी ईमानदारी, जो बेईमानी की तरह इस्तेमाल न हो सके और बहुत-सा सच चाहिए, जिसे झूठ की तरह खर्च किया जा सके. तुम इसे नहीं समझोगे. . . चार सौ रुपये की नौकरी तलाश करनेवाले इसे नहीं समझ सकते. इतनी बड़ी रकम हासिल करने के लिए झूठ और सच, धोखाधड़ी और मासूमियत, नेकी और गुनाह को आइंस्टाइन के सिद्धांत की तरह इस्तेमाल करना पड़ता है.

मैं चौंक गया. मोची ने मेरे जूते का तला गीला किया, लेकिन कभी मैं भी हरी कोंपल था. मेरी त्वचा बड़ी नाजुक थी और जरा-सी बेईमानी मुझे गर्म लू की तरह झुलसा देती थी और सुबह की हवा मेरे लिए आसमान की खुशबूएं लाती थी. उस वक्त मैं नहीं जानता था कि आसमान की तरफ देखने की भी एक सजा है.

बयालीस वर्ष की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते मेरी खाल मोटी और खुरदरी हो गयी थी. अब मुझ पर न किसी लू का असर होता था, न किसी खुशबू का. मैंने दस करोड़ रुपये कमा लिये और यह सात मंजिला बिल्डिंग, जो मेरी पीठ पीछे तुम देख सकते हो, यह भी खड़ी कर ली और बहुत-सी जायदाद. मंत्री लोग मुझे लेने के लिए हवाई-अड्डे पर आते थे और मैंने सोचा, अब मैं सब कुछ खरीद सकता हूं और सब को खरीद सकता हूं.

और फिर दस करोड़ रुपये अंटी में रखकर जो मैं खरीदने को निकला, तो मालूम हुआ, हर चीज बिकती है. सियासत, मजहब, नैतिकता, इज्जत, दोस्ती, रवादारी, खूबसूरती, इश्क, साहित्य, विज्ञान, शायरी. . . हर चीज मुनासिब भाव बिकती है. दाम लगाते जाइये और माल उठाते जाइये. यह जानकर दिमाग और खराब हो गया और मैं हर एक को जूते की नोक पर रखने लगा.

मेरे दोस्त रामदयाल त्रिपाठी ने मुझे बहुत समझाया—'तुम जिंदगी को बिलकुल गलत समझ रहे हो. सट्टे, कोटे, परमिट, लाइसेंस, और स्मगलिंग, के धंधों ने तुम्हारी मति भ्रष्ट कर दी है. जिंदगी के नैतिक मूल्यों से तुम्हारा ईमान उठ गया है. तुम सब को चोर और गर्ज का बंदा समझते हो, हालांकि आज भी इस दुनिया क्या, इसी शहर में लाखों लोग ऐसे बसते हैं, जिन्हें तुम्हारे रुपये की बिल्कुल परवाह नहीं है और जो तुम्हें और तुम्हारे रुपये को जूती की नोक पर रखते हैं.' मैं जोर से हंसा. मेरी हंसी सुनकर त्रिपाठी का चेहरा तमतमाने लगा, 'मुझी को देखो. क्या मैंने कभी तुम्हारे दस करोड़ रुपयों में से एक कौड़ी भी मांगी है.'

'तुम बेवकूफ हो.'

'मेरी तरह बेवकूफ और अपनी इज्जत की खातिर अपनी आन पर मिट जानेवाले इस शहर में लाखों लोग मौजूद हैं.'

'मुझे यकीन नहीं है.' मैंने कहा. 'आजमा कर देखो.' वह बोला.

मुझे फौरन ही एक तरकीब सूझ गयी. रुपये की गर्मी थी. दिमाग भी गर्म था. मैंने उसी वक्त एक स्टेनो को बुलाकर एक विज्ञापन का मसौदा उसे बताया, जो दूसरे दिन 'टाइम्स' में छप गया. . .

'जूते खानेवाले को पांच सौ रुपये इनाम.'

जो व्यक्ति विज्ञापन देनेवाले से दस जूते खायेगा, उसे पांच सौ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपये ईनाम दिया जायेगा. जूते खाने का समय वही है, जो दफ्तर जाने का समय है, यानी सुबह दस बजे से शाम पांच बजे तक. जूते खाने वाले मुलाकाती अपनी बी.ए.की डिग्री साथ लायें. बी.ए. की डिग्री और अपना फोटो साथ लाना लाजिमी है, वरना जूते नहीं पड़ेंगे.

गौरी चरण बागड़िया,
7 टर्नर रोड, बंबई.

दूसरे दिन 'टाइम्स' में विज्ञापन देखकर राम दयाल त्रिपाठी दौड़ा-दौड़ा मेरे पास आया, 'यह क्या मूर्खता है?'

मैंने कहा, 'तुम्हें मालूम है, हमारे मुल्क में जूते खाना किस कदर बुरा समझा जाता है? आप एक आदमी की लड़की भगा सकते हैं, लेकिन उसे जूते नहीं मार सकते. पहली बात वह बर्दाश्त कर लेगा, दूसरी नहीं. . हरगिज नहीं. . . किसी तरह नहीं. . . . '

'हां, यह तो सच है.' त्रिपाठी ने स्वीकार किया.

के लिए यह रुपये बहुत कम है. मैं इसे बढ़ाये देता हूं.'

'दूसरे दिन विज्ञापन में मैंने रुपये बढ़ाकर एक हजार कर दिया. फिर भी सिर्फ तीन आदमी आये. तीसरे दिन, मैंने रुपये और बढ़ाकर दो हजार कर दिये. अब के पांच आदमी आये, यानी कुल आठ आदमी. सारे शहर में . . . मैं गुस्से से दांत पीसने लगा. मेरा फलसफा नाकाम हुआ जा रहा था. उधर त्रिपाठी मुझे देखकर कहकहे पर कहकहे लगा रहा था. तुमने शायद त्रिपाठी की तल्ख हंसी नहीं सुनी, वरना तुम वही करते, जो आगे चलकर मैंने किया. मैंने त्रिपाठी से सलाह-मशवरा किये बगैर ईनाम की रकम दस हजार कर दी और जूतों की तादाद बढ़ा दी. जो आदमी मुझसे पचास जूते खायेगा, उसे दस हजार रुपये एक मुश्त मिलेंगे. यह पेशकश सिर्फ दो दिन के लिए थी.

दूसरे दिन सवेरे आठ बजे के करीब त्रिपाठी भागा-भागा मेरे पास आया. उसका रंग उड़ा हुआ था और चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं.

'क्या हुआ?' मैंने पूछा.

मोची ने फौरन कोई जवाब नहीं दिया. बड़े इतमीनान से मेरे जूतों को उलट-पुलट कर उन्हें बड़े गौर से देखता रहा. जैसे वह मेरे जूते देखने के बजाय उन्हें पढ़ने की कोशिश कर रहा हो. फिर उसने अपनी निगाह उठ कर मेरे चेहरे की तरफ देखा, मानों जूते के चमड़े को पढ़ने के बाद मेरे चेहरे के चमड़े को पढ़ने की कोशिश कर रहा हो.

'बिल्डिंग के बाहर दो सौ आदमी लाइन लगाकर खड़े हैं और अभी सिर्फ आठ बजे हैं.'

मैं खुशी से चहकने लगा.

'घबराओ नहीं.' मैंने कहा, 'मैंने बैंक से पचास लाख रुपया मांग लिया है. मैं तुम्हें सबक देना चाहता हूं. अगर एक करोड़ रुपया भी खर्च हो जाये, तो हर्ज नहीं.'

दस बजे के करीब कतार इतनी लंबी हो चुकी थी कि पुलिस को बुलवाना पड़ा और एक मैजिस्ट्रेट को भी. मैजिस्ट्रेट एक डाक्टर को भी साथ लेता आया क्योंकि उसे मेरी मानसिक अवस्था के विकृत होने का संदेह पैदा हो गया था. डाक्टर ने मेरा दिमागी मुआयना करके मुझे स्वस्थ घोषित किया, लेकिन इतना जरूर कहा कि "दिमाग जरूरत से ज्यादा गर्म है. मैं अपना कंपाउंडर यहां छोड़े जा रहा हूं."

'इसीलिए मैंने विज्ञापन दिया है. मैं तुम्हें दिखाना चाहता हूं कि जिंदगी के मूल्य कितने बदल गये हैं.'

'मगर यह बी.ए. की पूछ क्यों?'

'क्योंकि मुझे गरीब पर भरोसा नहीं, गरीब की नैतिकता क्या और उसकी औकात क्या, वह तो दस रुपये के लिए दस जूते खाने को तैयार हो जायेगा. इसीलिए मैंने शरीफों में विज्ञापन दिया है, ताकि तुम पर शराफत की कलई अच्छी तरह खुल जाये.'

त्रिपाठी चुप हो गया. हम दोनों इंतजार करने लगे. ग्यारह बज गये, बारह बज गये, दो बज गये, तीन बज गये. एक आदमी भी जूते खाने के लिए हाजिर नहीं हुआ. जब चार बजे, तो त्रिपाठी जोर-जोर से हंसने लगा. मुझे गुस्सा तो बहुत आया, मगर क्या करता? साढ़े चार बजे के करीब एक दुबला-पतला नौजवान, जो शक्ल-सूरत से बेहद भूखा लगता था, डरते-डरते इंटरव्यू के लिए आया. उसने अपनी डिग्री दिखायी. फोटो दिखाया फिर बोला, 'जूते खाने के लिए किसी प्राइवेट कैबिन का प्रबंध किया है आपने?'

'नहीं जनाब,' मैंने उससे बड़ी सख्ती से कहा, "जूते सरे-आम पड़ेंगे पब्लिक में. इस बिल्डिंग के बाहर के ग्राउंड में."

वह कुछ लम्हे सोचता रहा. अजीब कशमकश में था. फिर उसने एक आह भरी. अपनी बी. ए. की डिग्री को तह किया. फोटो जेब में रखा और कुछ कहे-सुने बगैर चला गया.

त्रिपाठी खुशी से चहकने लगा. मैं सोचने लगा. सोच-साचकर मैंने कहा, 'गलती मेरी है कि मैंने ईनाम इतना कम रखा है! 'टाइम्स' को गरीब लोग तो पढ़ते ही नहीं, वरना अब तक बहुतेरे जूते खाने के लिए आ जाते, और जो लोग टाइम्स पढ़ते हैं, उनके लिए पांच सौ की रकम बहुत कम है, यानी मैं सोचता हूं कि जब इन लोगों ने अपने दिमाग की तराजू में एक तरफ अपनी इज्जत और दूसरी तरफ पांच सौ रुपयों को रखा होगा, तो रुपयोंवाले पलड़े को बहुत हल्का पाया होगा. शायद इज्जत को बेचने

डाक्टर जरा-सा मुसकराया. अपना सामान संभालते हुए बोला, 'उसे भी जरा जूते खाने का शौक है. उम्मीद है, आप उसे निराश नहीं करेंगे.'

डाक्टर चला गया, तो बाकायदा तौर पर जूते मारने का प्रोग्राम शुरू हुआ. मैजिस्ट्रेट और उसके साथ दो जुडिशियल क्लर्क बाकायदा हर जूते खानेवाले का फोटो चैक करते थे और डिग्री देखते थे और उस से एक फार्म पर हस्ताक्षर कराते थे, जिस पर लिखा था, 'मैं खुद अपनी मर्जी से पचास जूते खा रहा हूं. उसकी नैतिक या आर्थिक जिम्मेदारी मेरे सिवा किसी पर लागू नहीं होती.' इसके बाद मैं जूते मारता था.

शरीफ लोगों में हर तरह के व्यक्ति आ रहे थे. हर मजहब के, और हर कौम के, हर रंग के, हर उम्र के और हर पेशे के. मैं हर एक को जूते मारता था और रामदयाल त्रिपाठी की तरफ गर्वीले अंदाज से देखता था. और राम दयाल त्रिपाठी था कि जमीन में गढ़ा जा रहा था. और मारे शरम के मुझ से आंख नहीं मिला सकता था. दोपहर के बाद वह गायब हो गया, मगर दोपहर के करीब कतार इतनी बढ़ गयी थी कि टर्नर से मार्सन रोड के नाके से निकलकर रियालटो सिनेमा के चौक तक पहुंच चुकी थी. लोगों की भीड़ थी कि पुलिस को दो बार लाठी चार्ज करनी पड़ी, क्योंकि देर में आने वाले लोग कतार के आगे वाले हिस्से में घुसने की कोशिश कर रहे थे. जूता खाने के लिए आपस में वह जूता चला कि रहे रब्ब का नाम!

तीन बजे के करीब मेरा जूता टूट गया और मैंने इस तमाशे को बंद कर देना चाहा, मगर मेरे सामने उस वक्त एक सफेद बालों वाला बुड्ढा खड़ा था. वह फफक-फफककर रो रहा था, 'मुझे जूते मारो. मुझे जूते मारो. . .मुझे दस हजार रुपये दे दो.'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मगर मेरा जूता टूट गया है.'

उसने अपने पांव से अपना फटा चप्पल निकाला और मेरे हाथ में दे कर बोला, 'कोई हर्ज नहीं. मेरा जूता ले लो. मुझे मेरे ही जूते से मारो, मगर मुझे दस हजार रुपये दे दो. मैं अपनी बेटी की शादी करूंगा.' उसके पीछे एक बुड्ढी खड़ी थी. मैंने बुड्ढे को भुगताकर उससे पूछा, 'अम्मां, तू यहां क्या करने आयी है?'

'जूते खाने आयी हूं बेटा!' वह कांपती हुई आवाज में बोली.

'तू तो मां है... अपनी उम्र देख! अपने सफेद बाल देख...तू औरत है. मैं तुझे कैसे जूते मार सकता हूं?'

'औरत तो सदा से मर्द के पांव की जूती रही है, चाहे वह ग्रेजुएट क्यों न हो जाये. बेटा! मुझ पर इतना जुल्म न कर. मुझे जूते मार. पचास के बजाय सौ जूते मार ले मगर मुझे दस हजार रुपये दे दे! अब मैं अकेली हूं इस दुनिया में. दस हजार रुपये से मेरा भला हो जायेगा!' वह दोनों हाथ फैलाकर मुझे दुआएं देने लगी.

ठीक शाम के पांच बजे मैंने जूते मारना बंद कर दिया, मगर लोगों की भीड़ किसी तरह कम न हुई. टर्नर रोड पर एक मेला-सा लग गया था. बिलकुल किसी मजहबी या कौमी त्यौहार जैसा समां था. खोमचेवाले, रेहड़ीवाले, छाबड़ीवाले, तरह-तरह की आवाजें लगाने लगे, क्योंकि कतार में खड़े होनेवाले लोगों ने रात भर यहीं रहने का फैसला कर लिया था और कोई आदमी अपनी जगह से हटने को तैयार नहीं था. कतार में खड़े होने वालों की जगह लेने के लिए सौदे होने लगे. लोगों ने अपने घरों से कंबल और बिस्तर मंगा लिये. चायवाले गर्म-गर्म चाय और नान-खटाई बेचते फिरते थे. सिगरेट और पान, कबाब और कुलचे, पूरी और भाजी, सोडा और कोका कोला, बल्कि ठर्रे की बोतलें तक बिकने लगीं. इनाम हासिल करने के लिए सिंडीकेट बन गये और कई अमीर लोगों ने जो खुद आने में अपमान समझते थे, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास गुंडे कतार में घुसा दिये थे. इन गुंडों को सिर्फ एक हजार रुपया मिलेगा. बाकी सब सेठों की जेब में जायेगा. रातोंरात बी. ए. की डिग्री के भाव बढ़ गये. जिस डिग्री पर डेढ़ सौ की रकम नहीं मिल सकती थी, उसी डिग्री के कागज के लिए डेढ़ हजार रुपये तक की पेशकश आने लगी, मानो जूतियों में दाल बंटने लगी.

त्रिपाठी कहीं दिखाई न देता था. रात भर वह मेरे पास नहीं आया. सुबह भी नहीं. दस बजे फिर से जूते मारने का प्रोग्राम शुरू हुआ. अब के पुलिस का प्रबंध ज्यादा था और मैजिस्ट्रेट भी तीन थे. ग्यारह बजे के करीब एक आदमी अपने मुंह पर चादर डाले मेरे सामने जूते खाने के लिए पेश हुआ. मैंने एतराज किया. 'मुंह पर से जब तक चादर न हटायी जायेगी, मैं जूते नहीं मारूंगा.'

बहुत कशमकश के बाद उस आदमी ने अपने मुंह से चादर हटायी. यह रामदयाल त्रिपाठी था.

'तुम.....?' मैंने हैरत से पूछा.

'हां!' वह खिसियाना होकर बोला, 'मुझे सबक मिल गया है. अब तुम यह खेल बंद करो!'

'कैसे बंद कर सकता है यह?' त्रिपाठी के पीछे खड़ा हुआ एक आदमी बड़े करारे स्वर में चिल्लाया.

'मैंने आगे झुककर देखा. यह शहर का सब से बड़ा ठेकेदार सेठ माता प्रसाद था, जिसने मेरी इस सात मंजिला बिल्डिंग का निर्माण किया था.

'तुम यहां कहां सेठ?' मैंने उससे पूछा.

'अरे, म्यूनिसपल कारपोरेशन के दस हजार जूते खाकर एक कांट्रेक्ट मिलता है. मैंने कहा, चलो, अपने यार से पचास जूते खा कर दस हजार ले लेंगे. पांच मिनट में सौदा क्या बुरा है!'

'मैंने कहा, 'मगर बैंक में तो मेरे पांच करोड़ जो जमा थे, वह अब खत्म हो चुके हैं.'

'कोई हर्ज नहीं.... यह बिल्डिंग बेच दो. मैं खरीदता हूं.'

'मैंने कहा, मैं जूते मारते-मारते थक गया हूं.'

'जूते तो तुम्हें मारने ही पड़ेंगे.'

'हम तो जूते खाने के लिए आये हैं और जूते खाकर ही जायेंगे.' कतार में से बहुत से लोग चिल्लाये. पीछे से किसी ने नारा लगाया. 'जूता जिंदाबाद!' और सैकड़ों लोग 'जूता जिंदाबाद' के नारे लगाने लगे. थोड़े ही समय में इलेक्शन और वोटिंग जैसी फिजा पैदा हो गयी थी.

फिर बाहर से गोली चलने की आवाज आयी. हंगामा बढ़ता जा रहा था. शायद लोगों को पता चल गया था कि मैं और ईनाम बांटने से इनकार कर रहा हूं. दो आदमी गोली चलने से मर गये. मैजिस्ट्रेट ने

कहा, 'तुम्हारी पेशकश दो दिन के लिए है. तुम लोगों को जूता खाने से नहीं रोक सकते, वरना सख्त बलवा हो जायेगा.'

'मैंने दो करोड़ कीमत की बिल्डिंग डेढ़ करोड़ में सेठ माता प्रसाद के हाथ उसी वक्त बेच दी और फिर जूता चलना शुरू हो गया.

'तीन बजे तक बाकी बिल्डिंग भी नीलाम हो गयी. अब सिर्फ एक बैंक के हिस्से बच गये थे. इसलिए मैं बहुत धीरे-धीरे जूते लगा रहा था कि किसी तरह पांच बजा दूं और बैंक बचा लूं, मगर चार बजे के करीब बैंक के हिस्से भी बेचने पड़े. और जब पांच बजे, तो मेरी कुल पूंजी खत्म हो चुकी थी. मैं जूते बगल में दबाकर बिल्डिंग से बाहर निकल आया.

'शाम हो रही थी और लोग अपने घरों को वापस जा रहे थे. सड़क की हालत ऐसी लुटी-पुटी हो गयी थी, जिस पर अभी-अभी सांप्रदायिक फसाद हो चुका हो. बिल्डिंग के बाहर इसी जामुन के पेड़ के नीचे घसीटू मोची जूते बना रहा था. मैंने उससे पूछा, 'अरे घसीटू, तू नहीं आया जूते खाने के लिए?'

घसीटू मेरी तरफ देखकर बड़ी सादगी से बोला, 'सरकार, मैं जूते बनाता हूं, जूते खाता नहीं हूं.'

उसकी सादगी मेरे दिल को लग गयी. मैं वहीं उसके पास इस स्टूल पर बैठ गया, जिस पर तुम बैठे हो.

जब से मैं यहां हूं.... मुझे लोगों ने तरह-तरह से मदद देनी चाही. मेरा कारोबार फिर से शुरू करवाना चाहा, मगर मैंने इंकार कर दिया, क्योंकि मुझे भी महात्मा बुद्ध की तरह ज्ञान प्राप्त हो चुका है.

मोची ने मेरे जूते को लेकर माथे से लगाया. फिर उसे बड़ी अदा से चुंबन दिया और बोला, 'तब से मैं इसी जामुन के पेड़ के नीचे बैठकर जूते बनाता हूं और हर रोज जूते को सलाम करता हूं. जूता जो इस युग का स्वामी है और जो रोटी है...' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता और रोटी

उमेश अग्निहोत्री

दर्शक की पीड़ा ज्यादा महत्वपूर्ण है या भोक्ता की संघर्षशीलता? नरदित्ता का ढाबा जलने पर लिखी गयी कविता तो त्रिभुवन के कवि की महानता में चार चांद लगा जाती है पर शाम तक ढाबा फिर से खड़ा कर देने का नरदित्ता का अध्यवसाय सिर्फ उसके लिए रोटी का जुगाड़ ही कर पाता है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि त्रिभुवन की गणना देश के चोटी के कवियों में होती थी. उनके कई एक कविता संग्रह छप चुके थे. उन्होंने देश के प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं के संकलन संपादित किये थे. उनकी अपनी कविताएं स्कूलों-कालेजों में पढ़ायी जाती थीं और वह जिस उदीयमान कवि के सिर पर अपना हाथ रख देते थे, उसकी चर्चा पत्र-पत्रिकाओं में होने लगती थी.

लेकिन अपनी साठ साल की आयु में भावप्रवण और कालजयी रचनाएं लिखते हुए भी, कवि त्रिभुवन कुछ दुनियावी काम करने नहीं भूले थे. मसलन, कोई दस साल पहले, जब सरकार ने शहर से कुछ दूर एक उजाड़ बियावान इलाके में जमीन बेची थी तो उन्होंने भी कोई आठ सौ गज का प्लाट खरीद लिया था. लगभग चार-पांच साल पहले उन्होंने अपनी कवि-प्रकृति के अनुकूल एक दो-मंजिला मकान भी बना लिया था. और उसका नाम रखा 'संवेदना'. मकान के निर्माण में इस बात का पूरा ध्यान रखा गया था कि प्रकृति से संपर्क पूरी तरह बना रहे. हर कमरे में खिड़कियां और शीशे के स्लाइडिंग दरवाजे थे. बड़ी बैठक, खाने का कमरा, चार शयनागार, दो स्नानागार और एक अध्ययन कक्ष के अलावा एक बड़ी छायादार बालकनी भी थी. कमरों की सजावट में, उनके कल्पनाशील व्यक्तित्व की छाप नजर आती. कमरों में दाली, पिकासो, क्ली, हुसैन, शेरगिल और उनसे प्रभावित चित्रकारों की कुछ मूल और कुछ छपी हुई कृतियां लटकी थीं. तरतीब से रखी जिल्दमढ़ी किताबों की आलमारियां, एक कोने में रखा कैक्टस का पौधा, और दूसरे कोने में रखा प्राचीन बेढंगा पत्थर उनके प्रकृति प्रेम का परिचय देते थे. प्रवेश द्वार पर एक प्रस्तर मूर्त्ति और किसी उदास बैठी महिला के आकार में ढली पेड़ की टहनी रखी थी, जो उनकी पैनी कवि-दृष्टि का प्रमाण थी. इन्हीं सभी बातों के कारण कालोनी में कवि त्रिभुवन की संवेदना की ख्याति थी और अक्सर लोग कहते थे कि त्रिभुवन जी के सौंदर्यबोध का जवाब नहीं.

ऐसे कवित्वपूर्ण वातावरण में भी, आज त्रिभुवन परेशान से थे. आज वह रोज की तरह अपने घर के लॉन में सैर करने के लिए नहीं उतरे. सूर्य की परोक्ष और फिर प्रत्यक्ष किरणों से अंधकार को छंटते और फूलों को स्पर्श करते नहीं देखा और न ही पक्षियों का कलरव ही सुना. रात को भी उनकी नींद उचटती सी रही थी. उषा ने उनसे पूछा भी, "क्या बात है?" लेकिन वह टाल गये थे.

देर तक वह अंधकार में बालकनी की रेलिंग पर हथेलियां टिकाये खड़े रहे थे. निर्माणाधीन घरों की अधखड़ी दीवारों, चूने, गारे और ईंटों के ढेरों रंगों याद करने की बेमानी-सी कोशिश करते रहे. फिर वह अपने अध्ययन कक्ष की खिड़की के पास आकर खड़े हो गये और वहां से बाहर उजाड़ पृष्ठभूमि में किसी उपेक्षित मुगलकालीन इमारत की लगभग ढह गयी दीवार और इक्का-दुक्का कब्रों का नजारा देखते रहे थे. उन्हें खयाल आया था कि अंधेरे में जिंदा और मृत चीजों में भेद कर पाना कठिन है.

वह कई बार सोच चुके थे, फिर भी उन्हें खयाल आया था कि जहां यह कालोनी है, वहां पहले एक कब्रिस्तान था जो कब्रें नजर आ रही हैं, वह किन्हीं मुल्ला-मौलवियों की हैं, जिन्हें कालोनी के निर्माण के वक्त राज-मजदूरों ने छेड़ने से इंकार कर दिया था. उन्हें याद आया कि इन कब्रों की सफाई कराने का कैसा भगीरथ प्रयत्न उन्होंने किया था. अपने नाम और प्रतिष्ठा का इस्तेमाल कर उन्होंने नगरपालिका को एक पत्र भी लिखा था, लेकिन कब्रों को हटाने का वास्तविक काम तो राज मजदूरों को ही करना था, जो किन्हीं मुल्ला-मौलवियों की कब्रों को छेड़कर पाप के भागी नहीं बनना चाहते थे.

त्रिभुवन को उपेक्षित मुगलकालीन दीवार और उसके पास की कब्रों का सारा इलाका ही मनहूस लगता था. लेकिन इधर जब से नरदित्ता ने वहां चार बल्लियां गाड़, उस पर टाट बांध और जमीन पर चार-पांच फुट खुदाई कर अपना तंदूर जमा लिया था, तब से वहां कुछ रौनक रहने लगी है. सुबह से लेकर देर रात तक, नरदित्ता के तंदूर पर, उसके सामने बिछे टूटे-फूटे बैंचों पर, राज-मजदूरों को रोटी खाते देखा जा सकता था. त्रिभुवन जब कभी अपने अध्ययन कक्ष में बैठे काम करते थे, उन्हें राज-मजदूरों की अस्फुट आवाजें, और बीच-बीच में नरदित्ता के रोटियां थापने या लोहे की छड़ों को टकराने की आवाजें सुनाई देती रहती थीं.

दरअसल त्रिभुवन कविता लिखना चाह रहे थे. आज उनका जन्म-दिवस था. इस अवसर पर साहित्य-जगत के उनके प्रशंसकों, साथियों और मित्रों ने उनके सम्मान में एक समारोह का आयोजन कर रखा था और साथ ही यह घोषणा कर रखी थी कि वह अपनी नयी कविताओं का पाठ भी करेंगे.

उनकी मुश्किल यह थी कि जब से वह मकान बनाने के चक्कर में पड़े थे, उन्होंने एक भी नयी कविता नहीं लिखी थी. कई बार वह कागज पेंसिल लेकर लिखने बैठते, लेकिन उनकी कल्पनाशक्ति किसी सूखी डाल पर बैठे निष्क्रिय परिंदे की तरह पर फड़फड़ाकर रह जाती. काव्य रचना उनके लिए स्वांतः-सुखाय प्रक्रिया थी वह केवल तभी कविता करते. जब कोई घटना उन्हें छू जाती और मन कुछ कहने के लिए बेचैन हो उठता.

सुबह, इससे पहले कि उनकी पत्नी उन्हें प्यार से जगातीं और कहतीं, 'जन्म दिन मुबारक' वह चुपचाप उठकर बालकनी में आकर बैठ गये. मई का महीना था, वातावरण में उमस थी. वह देर तक आकाश की ओर देखते हुए और फिर कागज पर पेंसिल से रेखाचित्र से बनाते हुए अपने कवितालोक में गुम थे. वह किस विषय पर कविता लिखें? साठ साल के अनुभवी जीवन में, विषयों की कमी नहीं थी. जीवन-मृत्यु, एकांत, एकाकीपन, आत्मनिरीक्षण, व्यक्ति, सुख-दुख—किसी भी विषय पर चिंतन-मनन करते हुए उनके कल्पनाशील हृदय से कविता फूट सकती थी.

पत्नी ने आकर कहा, "जन्म दिन मुबारक. आप यहां बैठे हैं? मैं सोच रही थी कि आप सैर करने नीचे गये हैं."

त्रिभुवन ने कोई प्रक्रिया व्यक्त नहीं की.

"क्या हुआ?" पत्नी ने अपने गाउन को शरीर पर ठीक से लपेटते हुए चिंताकुल स्वर में पूछा.

वह बोले, "कुछ खास नहीं. आज थोड़ा एकांत चाहता हूं."

"आज! आज तो आपका जन्म दिन है. लोग बधाई देने आयेंगे. टेलीफोन पर टेलीफोन आयेंगे, मैं सबका क्या जवाब दूंगी."

"कुछ भी, रात मुझे ठीक से नींद नहीं आयी, तबीयत ठीक नहीं थी. तीन-साढ़े तीन के करीब सोया था, और अभी तक जागा नहीं हूं."

"और शाम का समारोह?"

"उसमें तो जाऊंगा. वहीं सबसे भेंट भी हो जायेगी."

पत्नी निरुत्तर हो गयी. तभी टेलीफोन की घंटी बजी.

"लो, आ गया फोन." उषा ने कहा और भीतर चली गयी.

त्रिभुवन फिर अपनी कल्पनाओं में खो गये. विचारों में से एक विचार कविता की पंक्ति बनकर उनके मस्तिष्क में उभरा, उन्होंने उसे मन ही मन दोहराया और फिर कागज पर उतार डाला. वह उस विचार को आगे बढ़ाने लगे. प्रतीकों, लाक्षणिक प्रयोगों और अमूर्त्त उपमानों से, उन्होंने उस विचार को और परिष्कृत किया और फिर सहसा सारी कविता को ही, मानो अपनी रचना से मानने से इनकार करते हुए उस पर लकीर खींच दी.

बालकनी से उठकर वह अपने अध्ययन कक्ष में चले आये. साठवीं वर्षगांठ के अवसपर पर आये बधाई-कार्डों, पत्र-पत्रिकाओं के मुखपृष्ठों पर प्रकाशित अपनी तस्वीरों और लेखों को देखते हुए, वह खिड़की के पास आकर खड़े हो गये. और बाहर देखने लगे.

सूर्य की किरणें नुकीली और कंटीली बन धरती को बींध रही थीं. नरदित्ता अपने तंदूर पर आकर बैठ गया. था तंदूर में तो धुआं उठ रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था और वह बराबर पसीना पोंछ रहा था. रोटी लगवाने के लिए एक-दो ग्राहक परातों में आटा लिये बैठे थे. कुछ मजदूर भी बैठे खाना खा रहे थे. नरदित्ता की पत्नी, उसके पीछे बैठी सब्जी काट रही थी. बच्चे आस-पास धूप में खेल रहे थे.

त्रिभुवन इस दृश्य में खो गये. कल रात यही दृश्य उन्हें कितना बेजान लग रहा था. मुगल-युग की दीवार और कब्रें कितनी सुनसान लग रही थीं. नरदित्ता का यही ढाबा सुनसान रात का अंग बना हुआ था. और आज . . अचानक उनके मस्तिष्क में एक विचार कौंध गया. नरदित्ता और उसकी पत्नी और बच्चे भी तो रात इन्हीं कब्रों के पास अपने तंदूरी ढाबे को चारों ओर से बंद करके भीतर सोये हुए थे. रात के अंधकार में जिंदा और मृत चीजों के बीच अंतर करना कितना कठिन होता है. फिर क्या कोई व्यक्ति होश-हवाश रहते कब्र के पास सो सकता है! माना आदमी अंततः उसी ओर बढ़ रहा है कि एक दिन उसे श्मशान जाना होगा, लेकिन जीते-जी वहां जाकर लेट जाना, सो जाना, घर बसाना. . . यह नरदित्ता की हिम्मत है या मजबूरी?

कवि त्रिभुवन सोचने लगे कि वह इसी बात को विषय बनाकर कविता लिखेंगे. उनका हृदय नरदित्ता के जीवन की कल्पना कर द्रवित हो उठा. वह खिड़की के सामने से हट अपनी मेज-कुर्सी पर आकर बैठ गये. उन्होंने आंखें मूंद लीं.

सबसे पहले यह तंदूर, कर्नल अमरीक सिंह की कोठी की दीवार के साथ, एक खाली प्लाट में था. शुरू-शुरू में जब नरदित्ता वहां अपना तंदूर लगा रहा था तो श्रीमती सिंह को अच्छा नहीं लगा था. उन्हें समझ नहीं आया था कि नरदित्ता को मना करें तो कैसे, तंदूर लगे अभी हफ्ता बीता होगा कि एक दिन उन्होंने अपनी रौबदार आवाज में कहा, "भई, यह तंदूर कहीं और जाकर लगाओ."

नरदित्ता उनकी आवाज सुने बिना रोटियां लगाता रहा. पत्नी पीछे बैठी सब्जी काटती रही. शायद वो इस प्रकार की स्थितियों से कई बार गुजर चुके थे.

"सुना नहीं." श्रीमती सिंह ने किसी अर्दली को डांटने के से अंदाज में कहा. वह बोलीं. "माना यह प्लाट हमारा नहीं है. कर्नल रेड्डी का है. फिर भी तुम्हारे तंदूर का सारा धुआं हमारे घर के अंदर आता है. घर की सारी दीवारें खराब हो रही हैं."

प्लाट के दूसरी ओर वाली कोठरी से श्रीमती रहमान ने खिड़की से झांककर कहा, "मिसेज सिंह, मैं सोच रही थी, शायद आपने इजाजत दे रखी है. तभी यह तंदूर लगा हुआ है."

"नहीं जी," श्रीमती सिंह बोली, "मैंने कहा, चलो गरीब इंसान है, दो वक्त की रोटी यह भी कमा ले. हमें क्या? लेकिन देखिए न, माना यह प्लाट हमारा नहीं है. कर्नल रेड्डी का है, न जाने वह कब और कहां घर बनाते हैं, यहां बनाते हैं या साउथ चले जाते हैं. हमारे लिए तो यहां लाइफलांग प्राबलम हो गयी."

श्रीमती रहमान बोलीं, "कल जनरल साहब आये थे. इसकी रोटियां थापने और छड़ें टकराने की आवाज सुनकर बोले, "बेटे की शादी कर रही हैं मिसेज रहमान. आपके घर में बैठकर तो ऐसा लगता है कि अंदर बारात के लिए खाना पक रहा है. हमारे अच्छे-खासे बंगले को इसने बावर्चीखाना बना डाला है."

फिर दोनों महिलाओं ने नरदित्ता को चेतावनी दी, "कल तक तंदूर नजर न आये, वरना म्युनिसिपैलिटीवालों से कहकर हटवा देंगे."

कुछ दिन बाद वह तंदूर श्री बाली की कोठी के सर्वेंट रूम के पीछे नजर आया. नरदित्ता ने इस बार तंदूर लगाने से पहले श्रीमती बाली से इजाजत ले ली थी. नरदित्ता को सुविधा थी कि सफाई-धुलाई और ग्राहकों के लिए पानी सर्वेंट रूम के पास लगे नलके से मिल जाता था और श्रीमती बाली को यह आराम हो गया था कि रोटियां सबसे पहले लग जाती थीं. नरदित्ता रोटी लगाने के लिए दूसरों से जो मुट्ठी आटा लेता था, उन्हें वह भी नहीं देना पड़ता था.

एक दिन अचानक श्रीमती सावंत श्रीमती बाली के घर पहुंची, और बोली, "मिसेज बाली, मैं आपसे एक बात बोलना मांगती हूं. आपने अपने घर के पीछे यह जो तंदूरवाला बिठा रखा है, यह तो न्यूसेंस है. देखिए, वह तो आपके घर के बैक साइड में है, लेकिन हमारा पीछे का बाल्कनी इसके बिल्कुल बगल में पड़ता है." वह अंग्रेजी में बोली, "मेरी दो जवान बेटियां हैं. और इधर तंदूर पर कैसा-कैसा लोग बैठा रहता है. हमारा तो प्राइवेसी नहीं रहा."

श्रीमती बाली बोलीं, "यहां नौकर-चाकर भी तो रहते ही हैं."

श्रीमती सावंत को इस तरह के उत्तर की प्रत्याशा नहीं थी. वह बीच में ही बोल पड़ीं, "वह अलग बात है. वह सब हम लोग का घर का अंदर रहते हैं. ऐज अ फैमिली मेंबर. उन सब पर हमारा कंट्रोल है. वो कोई मिसचीफ नहीं कर सकते."

श्रीमती बाली ने प्रतिवाद किया, "प्रेसवाली भी तो बैठती ही है. फेरीवाले भी तो आते ही हैं."

श्रीमती सावंत बात काटते हुए बोली, "वह सब यहां रहते नहीं. वह हमारी कालोनी का खूबसूरती खराब नहीं करते."

श्रीमती बाली ने सख्त-सा चेहरा बनाकर जवाब दिया, "मैं तंदूरवाले से हटने के लिए नहीं कह सकूंगी. उसके बीवी-बच्चे कहां जायेंगे."

पलभर दोनों महिलाएं एक-दूसरे को देखती रहीं जैसे दोनों एक-दूसरे की स्थितियों को तोल रही हों. श्रीमती सावंत ने सोचा कि शायद तंदूरवाले से रोटियां मुफ्त लगवाते-लगवाते श्रीमती बाली का मुंह बंद हो गया है."

श्रीमती सावंत ने दृढ़ किंतु शिष्ट भाषा में जवाब दिया, "मिसेज बाली, घर के अंदर का जमीन आपका है. उसमें आप जो करें, आपका हैडेक है, लेकिन बाहर का एरिया हम सबका है. मैं अपना हसबैंड से बोलेगा कि यह मामला एसोसिएशन में उठाये."

अंततः नरदित्ता ने अपना तंदूर कवि त्रिभुवन की खिड़की के सामने खाली पड़ी लावारिस जमीन में कब्रों के पास लगा लिया.

कवि त्रिभुवन आंख बंद किये, नरदित्ता की कहानी के बारे में सोच रहे थे. अचानक उन्हें आवाज सुनाई दी—"आग लग गयी. आग लग गयी." वह चौंके. पलभर सोचा, क्या हुआ और खिड़की की ओर लपके. जो नजर आया, देखकर हतप्रभ रह गये.

नरदित्ता के ढाबे से धुआं उठ रहा था. कहीं-कहीं आग की लपटें भी नजर आ रही थीं. भगदड़ मची हुई थी. एक व्यक्ति आग बुझाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए पानी डाल रहा था. दूसरा मिट्टी फेंक रहा था. तीसरा बाल्टी लेकर कोठियों की तरफ आ रहा था.

नरदित्ता दिखाई नहीं दे रहा था. उसकी पत्नी बच्चों से कह रही थी "आग से दूर रहो."

वह बोरी के आसन के नीचे से पैसे संभाल रही थी. उसकी धोती को आग छू गयी थी. वह उसको छुड़ाने की कोशिश कर रही थी.

कवि त्रिभुवन गुसलखाने की ओर भागे बाल्टी में पानी भरने लगे. पत्नी ने पूछा "क्या हुआ?" उन्होंने उत्तर नहीं दिया. बाल्टी आधी ही भरी थी कि उसे एक हाथ से थामे और दूसरे हाथ से संतुलन बनाये रखते हुए वह साठ साल की उम्र में जितनी जल्दी सीढ़ियां उतर सकते थे, उतरने लगे. सीढ़ियां उतरकर जब तक वह तंदूर की ओर घूमे, दृश्य बदल चुका था.

नरदित्ता के घर में इतना कुछ नहीं था, जिसे जलने के लिए बहुत समय लगता. एक-दो खेस, रजाइयां, एक-दो कनस्तर, अपने, बीवी और बच्चों के कपड़ों के दो चार जोड़े, एक पुराना जंग खाया संदूक, यही उसकी संपत्ति थी.

बल्लियों के ऊपर बंधा टाट आधा जलकर नीचे आ गिरा था. इर्द-गिर्द का पर्दा तो जैसे गायब ही हो गया था. लगता था, जैसे कोई चीज उघाड़ दी गयी हो.

नरदित्ता की पत्नी बिलख-बिलखकर रो रही थी. बच्चे दायें-बायें बैठे थे. वो जंगखाया संदूक खोलकर देख रहे थे कि धुआं कहां से निकल रहा है. संदूक से संभालकर रखी एक जनाना कमीज काली पड़ गयी थी. नरदित्ता की पत्नी ने उसे दोनों हाथों से खोलकर देखा था और वह और भी बिलखकर रो पड़ी थी.

उसने कनस्तर खोले, उनमें आटा था, जो जगह-जगह से काला हो गया था.

दूर से नरदित्ता आता दिखाई दिया. वह कुछ चीजें लेने बाजार गया था. उसे देखकर बच्चे उसकी ओर भागे. मजदूरों ने दूर से आवाज दी, "नरदित्ता, कहां चले गये थे, तुम्हारा तंदूर जल गया."

नरदित्ता हैरान हुआ, किंतु उसकी चाल में तेजी नहीं आयी. वह सोच रहा था, घर में ऐसा था ही क्या, जिसके जल जाने पर अफसोस किया जा सके.

त्रिभुवन उलटे पांव अध्ययन कक्ष में लौट आये. खिड़की से उन्होंने फिर नरदित्ता के जले ढाबे का निरीक्षण किया. सारी घटना उन्हें भीतर तक छू गयी, एक आदमी एक कब्रिस्तान में पनाह लेता है. वह वहां तब तक ही रह सकता है, जब तक वहां कब्रें हैं. अगर वहां कब्रें न होतीं तो उसे वहां कोई दो दिन न रहने देता. उन लोगों की बजाय, जिनके सीने में दिल धड़कता है, उसे मृतकों की सोहबत पसंद है. मन ही मन वह रोज दुआ करता है कि कब्रों का वजूद बना रहे. वह रात को मृतकों के साथ सोता है, उन्हीं के साथ रहता है. सारी दुनिया में वही उसकी चाह है. . .अंधेरे में जिंदा और मुर्दों में अंतर करना कितना कठिन होता है. उसका तंदूर जल गया है. . .वह अंतर भी मिट गया है.

सारी घटना त्रिभुवन के दिल को झकझोरने लगी. उन्होंने कागज लिया, कलम उठायी और कविता लिखने बैठ गये.

आज मुर्दों की दुनिया
धड़कते दिलों की तुलना में
अधिक संवेदनशील है.

उसके बाद भावनाओं का एक ऐसा सैलाब आया कि कविता, कागज पर खुद ब खुद उतरती चली गयी. अपनी पैनी, नपी-तुली भाषा में प्रतीकों, बिंबों और उपमाओं के सहारे वह अनुभूति की नयी सूक्ष्मताओं में विचरते हुए, नरदित्ता की कहानी को सार्वभौमिकता प्रदान करने लगे.

किसी घटना में किस तरह डूबकर उन्होंने वर्षों बाद ऐसी कविता लिखी थी. कविता रचकर उन्हें अपार संतोष हुआ था, मानो उन्होंने

लेखक-धर्म पूरी तरह निभाया हो, कविता के साथ पूरा न्याय किया हो.

शाम को उनके सम्मान में समारोह हुआ. अन्य लोगों और प्रशंसकों के अलावा नगर के सभी प्रमुख लेखक उपस्थित थे. उन्हें माल्यार्पण किया गया, जिसे देख पत्नी की आंखें खुशी से गीली हो गयीं. बारी-बारी से आलोचकों तथा अन्य प्रमुख लेखकों ने उनकी सराहना में भाषण दिये. किसी ने कहा कि उनकी रचनाओं में संवेदनशील हृदय की धड़कन है, जिन्हें पढ़कर महसूस होता है कि अपने आस-पास की स्थितियों और घटनाओं को इससे अधिक तीव्रता से महसूस किया ही नहीं जा सकता. किसी ने कहा, त्रिभुवन साहित्य जगत के एक मूर्धन्य लेखक हैं, उन्होंने हिंदी कविता को विश्व साहित्य के समकक्ष ला खड़ा किया है. किसी ने कहा कि उन्होंने हिंदी काव्यधारा को एक नयी दिशा, एक नयी संवेदना प्रदान की है.

आखिर में त्रिभुवन खड़े हुए. उन्होंने साहित्य के संबंध में अपने विचार व्यक्त किये. कविता और संवेदना के संबंध पर प्रकाश डाला और अंत में अपनी नयी कविता पढ़ी.

समारोह में उपस्थित हर व्यक्ति ने कविता को ध्यान से सुना और उसकी सराहना की. उन्हें हर पंक्ति बार-बार पढ़नी पड़ी और वह साहित्य जगत में एक बार फिर अपनी प्रधानता स्थापित करते हुए मंच से उतर आये.

समारोह के बाद लोगों की वाहवाही और सराहना से अभिभूत जब कवि त्रिभुवन, अपनी पत्नी के साथ कार में घर लौटे तो नजर नरदित्ता के तंदूर की ओर चली गयी. वह अवाक् रह गये.

चीटियों का घर तोड़े जाने पर जिस तरह चीटियों में हरकत बढ़ जाती हैं, उसी तरह नरदित्ता और उसके बच्चों ने कब्रों के पास की जमीन पर अपना घर फिर से खड़ा कर लिया था.

चार बल्लियों के ऊपर टाट को फिर से बांध दिया गया था. लालटेन की रोशनी में दो-चार ग्राहक बैठे थे और रोटियां थापने की आवाज आ रही थी.

त्रिभुवन का संवेदनशील हृदय हमेशा घटनाओं में किसी कविता कहानी के लिए सामग्री ही तलाश करता रहा था. नरदित्ता की सारी कहानी उनकी कविता के एक प्रेरणादायक विषय से बढ़कर कुछ नहीं थी.

त्रिभुवन को लगा, कविता उन्हें अब लिखनी चाहिए थी. वह खड़े के खड़े रह गये. □

● 7445 जेहाक स्ट्रीट, एनंडेल, वरजीनिया-220003, अमेरिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय लोक-कथाओं में वर्णित

चोर-चोर-चोर

लोक-कथाओं के वैज्ञानिक अध्येताओं ने 'चोर' या 'शरीफ चोर' नामक मूल अभिप्राय की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की है. इस अभिप्राय से संबद्ध अनेक कथाएं भारतीय साहित्य में उपलब्ध हैं. 'पार्श्वनाथ चरित' में एक सद्वंशोत्पन्न महाबल नामक युवक, दत्त नामक व्यापारी के घर में चोरी करने का निश्चय करता है. जब वह घर में झांककर देखता है तो उसे पता चलता है कि व्यापारी अपने लड़के से जरा से हिसाब के मामले को लेकर झगड़ रहा है. महाबल सोचता है कि जो मनुष्य जरा से हिसाब के ठीक-ठीक न मिलने पर अर्ध-रात्रि के समय अपनी तथा अपने परिश्रमी लड़के की नींद हराम कर रहा है, उसके यहां अगर मैंने चोरी की तो उसका हृदय विदीर्ण हो जायेगा. इसलिए वह व्यापारी का घर छोड़कर कामसेना वेश्या के यहां चोरी करने के लिए निकल पड़ता है. वहां वह देखता है कि धन के लिए वेश्या एक कोढ़ी की इस प्रकार मनुहारें कर रही है मानो वह कोई देवता हो. ऐसी धन-लोलुप वेश्या के यहां से भी वह चोरी न करने का निश्चय कर एक ब्राह्मण के घर जाता है. ब्राह्मण चारपाई पर लेटा हुआ है. वह निद्रा में ही हाथ पसारकर बोल उठता है, "देनेवाले का भला हो!" चोर मन ही मन सोचता है कि निद्रा में भी जिसकी भिक्षावृत्ति उसका साथ नहीं छोड़ती, उसके यहां चोरी करना अशोभनीय होगा. इसलिए वह इन सबको छोड़, अंत में राजा के यहां चोरी करने का निश्चय करता है.

इसी प्रकार राजस्थान की एक लोक-कथा है—

किसी नगर में एक चोर रहता था. वह चोरी करता था पर केवल इतनी कि उसके परिवार का भरण-पोषण हो जाये. एक बार चोरी कर लाता तो जब तक चोरी का धन समाप्त न होता, तब तक दुबारा चोरी करने न जाता. एक गुण उसमें और था कि वह कभी झूठ नहीं बोलता था.

एक बार वह चोरी करने निकला. यह वह युग था जबकि राजा की परिभाषा इस प्रकार की जाती थी—'राजाप्रकृतिरंजनात्' अर्थात् जो अपने उत्तम आचरण से प्रजा को प्रसन्न रखता है, वही राजा कहलाता है. उस दिन राजा भी वेश बदलकर नगर में घूमने निकला. मार्ग में चोर से उसकी भेंट हो गयी. राजा ने पूछा, "तू कौन है?"

चोर ने उत्तर दिया, "मैं चोर हूं."

राजा से जब पूछा गया तो उसने भी कहा, "मैं चोर हूं."

चोर ने कहा, "आओ भाई, तब तो साथ-साथ ही चोरी करने चलें." राजा चोर के साथ हो लिया. चलते-चलते एक मकान के पास जाकर दोनों रुके. चोर ने कहा, "इस घर में चोरी करेंगे. बोल, तू, चोरी करने जायेगा या बाहर खड़ा रहकर निगरानी करेगा...?"

राजा ने निगरानी का काम स्वीकार किया और चोर मकान पर चढ़ गया. कुछ समय बाद चोर वापस उतरा. राजा ने पूछा, "कहो भाई, कुछ दांव लगा?"

चोर ने कहा, "मित्र, दांव तो काफी अच्छा था. इस घर का मालिक विदेश से कमाकर लौटा था. वह अपनी पत्नी से कह रहा था कि पांच हजार रुपये कमाकर लाया है. पत्नी ने कहा, 'मैं भी ठाली नहीं बैठी रही, मैंने भी कात-कातकर दो सौ रुपये कमाये हैं.' पुरुष ने कहा, 'उन दो सौ रुपयों का हिसाब बता.' पत्नी ने पैसे-पैसे का हिसाब बता दिया किंतु हिसाब में दो पैसे की कमी पड़ती थी. पत्नी ने बहुतेरा याद किया पर उसे कुछ याद नहीं आया. झूठ वह बोलना नहीं चाहती थी. इस पर उस दुष्ट ने दो पैसे के लिए पत्नी को पीटना शुरू कर दिया. मैंने सोचा कि यदि ऐसे मूंजी का धन चुरा लिया तो वह अवश्य तड़प-तड़पकर प्राण दे देगा. इसलिए भाई मेरे, मैं तो बिना चोरी किये, खाली हाथ ही लौट आया."

राजा ने पूछा, "तो अब?"

चोर ने कहा, "अब क्या, और कहीं चलो."

दोनों एक अन्य मकान पर गये. चोर मकान पर चढ़ गया और राजा निगरानी पर डटा रहा. थोड़ी देर बाद चोर पुनः खाली हाथ लौट आया.

राजा ने पूछा, "इस बार तो बहुत-सा माल लाये होगे?"

चोर ने उत्तर दिया, "क्या बताऊं, मौका तो बड़ा अच्छा था, धन हाथ भी लग गया था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु चलते समय मुझे कुछ बोल सुनायी पड़े. ध्यान दिया तो पता लगा कि घर में एक जवान लड़का बीमार था और सारे घरवाले उसके पास बैठे थे. अभी-अभी उसकी मृत्यु हो गयी. मैंने सोचा कि इस घर पर पहले से ही इतनी विपत्ति है, यहां चोरी करना अच्छा नहीं. अतः धन को छोड़कर चला आया."

राजा को चोर के नैतिक आदर्शों पर बड़ा आश्चर्य हुआ. उसने कहा, "मित्र, रात बीत रही है, अब क्या विचार है?"

चोर ने कहा ,"कोई चिंता नहीं. हर जगह कुछ न कुछ मुसीबत मिलती है. अब तो राजा के यहां चलो, साधारण आदमी के घर में क्या चोरी करेंगे." राजा मन ही मन हंसा और चोर के साथ हो लिया. दोनों राजमहल के नीचे पहुंच गये. राजा को निगरानी पर खड़ा कर चोर जनाने महल में चढ़ गया.

साहित्य के इतिहास के क्रम में माना जाता है कि 'प्रतिनायक' का प्रादुर्भाव पश्चिम से ही हुआ और इसी का प्रभाव भारतीय साहित्य पर भी पड़ा. परंतु इस 'अभिप्राय:' के संदर्भ में भारतीय लोक-कथा साहित्य में इस प्रकार के चरित्रों की अनेक कथाएं हमारी अनमोल विरासत हैं तथा इनका अंदाजेबयां और उद्देश्य हमारे गौरव. प्रस्तुत हैं, समाज में अधम माने जानेवाले एक पात्र से जुड़ी कुछ लोक-कथाएं. . .

सोती हुई रानी का सारा जेवर उतारकर चोर ने एक कपड़े में बांध लिया. वह चलने को उद्यत हुआ कि एक काला सर्प महारानी की ओर बढ़ता हुआ दिखायी दिया. वह जेवर वहीं छोड़, सांप को मारने लगा. आवाज सुनकर पहरेदार जाग उठे और उसे गिरफ्तार कर लिया. . . शोर-गुल सुनकर राजा अपने स्थान से हट गया.

प्रातःकाल राजा ने दरबार में आते ही आज्ञा दी कि रात को जिस चोर को महल में गिरफ्तार किया गया है, उसे हमारे सामने उपस्थित करो.

आज्ञानुसार चोर दरबार में लाया गया. राजा ने पूछा "तूने राजमहल में चोरी करने की हिम्मत किस प्रकार की?"

चोर ने रात का पूरा किस्सा सच-सच कह सुनाया और बोला, "महाराज, जब दो घरों में से निराश लौटा तो मैंने सोचा कि साधारण मनुष्यों के घर में कुछ न कुछ विपत्ति मिलेगी ही. क्यों न राजा के घर चलूं? राजा के क्या कमी है, इतनी-सी चोरी से उसे विशेष तकलीफ नहीं होगी."

राजा ने पूछा, "फिर पकड़ा कैसे गया?"

चोर ने कहा, "महारानी का जेवर उतारकर जा ही रहा था कि एक सर्प उनकी ओर बढ़ता देखकर मैंने सोचा. . . यह उनको डस लेगा तो अनर्थ हो जायेगा. मैं सर्प को मारने लगा, तभी पहरेवाले जाग गये और मैं पकड़ लिया गया."

राजा ने पूछा, " तू अकेला ही था या और भी कोई तेरे साथ था?"

चोर ने कहा, "महाराज, घर से तो अकेला ही चला था. मार्ग में एक और साथी हो गया था. महल तक वह मेरे साथ था. परंतु था वह दगाबाज. शोर-गुल सुनकर न जाने किधर चंपत हो गया."

राजा चोर की सच्चाई से बहुत प्रभावित हुआ. उसने चोर को बहुत ईनाम दिया और उसे राज्य-सेवा में नियुक्त कर दिया. सच्चाई ने उसके चोरी के कलंक को धो डाला और वह सदाचारी मनुष्य बन गया.

इस लोक-कथा का एक रूपांतर भी उपलब्ध है, जो कि इस प्रकार है—

एक चोर चोरी करने के लिए निकला और पश्चिम के द्वार पर जाकर छिप गया. उधर राजा भोज भी चौर्य-कला सीखने की दृष्टि से नगर के पश्चिमी द्वार पर जाकर छिप रहा. चोर ने राजा को देखकर पूछा, "तू कौन है?" राजा ने कहा, "जो तुम हो, वही मैं हूं." इस पर चोर ने कहा, "चलो, एक से दो भले!"

फिर वे दोनों साथ-साथ चोरी करने के लिए निकले. चलते-चलते एक साहूकार की दूकान पर पहुंचे और दूकान का ताला तोड़ डाला. चोर चोरी करने के लिए दूकान के अंदर गया और राजा भोज बाहर बैठा रहा. चोर को प्यास लगी. दूकान में पानी की एक सुराही पड़ी थी. उसमें से चोर ने पानी पी लिया. पानी पी लेने पर उसके मन में विचार आया कि जिस व्यक्ति का पानी पी लिया, उसके यहां चोरी नहीं करनी चाहिए. इसलिए वह खाली हाथों बाहर निकल आया. राजा के पूछने पर चोर ने सच्ची-सच्ची बात उसे बतला दी.

इसके बाद दोनों चलकर कंदोई की दूकान पर पहुंचे. कंदोई की दूकान का ताला तोड़कर चोर अंदर घुसा और राजा भोज निगरानी के लिए बाहर बैठा रहा. चोर अंदर गया तो एक नमक की थाली पर उसका हाथ पड़ा. उसने समझा, चीनी है किंतु जब मुंह में डाली तो नमक का स्वाद आया. चोर ने मन में सोचा कि जिसके घर का नमक चख लिया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके यहां चोरी करना उचित नहीं.

कंदोई की दूकान से भी चोर खाली हाथों लौटा.

अंत में दोनों ने मिलकर निश्चय किया कि राजा के खजाने में से चोरी करनी चाहिए. दोनों चलकर यथास्थान पहुंचे. चोर तो खजाने के अंदर गया और राजा बाहर बैठा रहा. राजा के खजाने में एक चीबरी का घोंसला था. उसने राजा की कुतिया से कहा, "अरी हरामखोर कुतिया, राजा का खजाना लूटा जा रहा है और तू भौंकती नहीं."

कुतिया ने उत्तर दिया, "भौंकू कैसे? इस चोरी में राजा स्वयं शामिल है." जब चोर ने यह सुना तो उसने सोचा—बड़ा धोखा हुआ, अब मैं तो मारा जाऊंगा! वह खाली हाथ बाहर निकल आया और राजा के पूछने पर उसने कहा, "शगुन अच्छे नहीं हुए, इसलिए मैंने चोरी नहीं की."

फिर राजा और चोर दोनों विदा होकर अपने-अपने स्थानों पर गये.

प्रातः राजा के यहां फरियाद पहुंची. साहूकार, कंदोई तथा राजा भंडारी सबने कहा कि रात को चोरों ने ताले तोड़ डाले किंतु चोरी नहीं हुई! कोतवाल ने बड़ी दौड़-धूप के बाद चोर का पता लगाया. चोर राजा के सामने पेश किया गया. राजा द्वारा पूछे जाने पर चोर ने कहा, "मैं चोरी करने के लिए अवश्य गया किंतु चोरी मैंने कहीं की नहीं. साहूकार की दूकान में पानी पिया तो मेरे मन में विचार आया कि जिसके यहां का पानी पी लिया, वहां चोरी कैसी? कंदोई की दूकान का नमक चख लिया तो सोचा. . . जिसका नमक खा लिया, उसी के यहां चोरी कैसे करूं?" राजा के खजाने में चोरी करने गया तो चीबरी-कुतिया की बात से पता चला कि राजा स्वयं चोरी में शामिल है. मैं खजाने से निकल आया, क्योंकि घर का स्वामी जब जग रहा हो तो चौर्य-कर्म निषिद्ध ठहराया गया है."

चोर की सच्ची-सच्ची बातें सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और उसको इतना धन-द्रव्य दिया कि भविष्य में चोर को चोरी करने की आवश्यकता ही नहीं रह गयी.

उक्त राजस्थानी लोक-कथा से मिलती जुलती घटना प्रबंधचिंतामणि में भी मिलती है.

वहां पर वन राज एक व्यापारी के घर में सुरंग खोदता है. वह चोरी करने ही वाला था कि उसका हाथ एक दही के प्याले पर पड़ता है.

इस पर वह अपने मन में सोचने लगता है कि जब इस घर के दही पर मेरा हाथ पड़ गया तो यहां चोरी करना उचित नहीं.

'दशकुमारचरित' के द्वितीय उच्छ्वास में उपहार वर्मा भी शरीफ चोर का उदाहरण उपस्थित करता है. वह एक घर से बहुत ही कीमती करधनी चुराकर बाहर निकलता है. रास्ते में उसे एक भागती हुई युवती मिलती है जिसके शरीर पर अनेक आभूषण थे. वह नगर के वैश्य-श्रेष्ठ कुबेरदत्त की बेटी थी. कुबेरदत्त ने उसका विवाह एक धनी वैश्य-पुत्र धनमित्र से करने का निश्चय कर रखा था किंतु माता-पिता के मर जाने से वैश्य-कुमार ने दान में सब कुछ देकर दरिद्रता मोल ले ली. जब धनमित्र दरिद्र हो गया तो कुबेरदत्त का विचार बदल गया. उसने अपनी बेटी का विवाह अर्थपति नामक धनी वैश्य से करने का निश्चय किया.

किंतु लड़की धनमित्र से ही विवाह करना चाहती थी. वह इस अंधेरी रात में धनमित्र से ही मिलने जा रही थी. लड़की ने अपने सब आभूषण उपहार वर्मा को सौंप दिये और उससे कहा "बस, आप मुझे धनमित्र के पास पहुंचा दें."

उपहार वर्मा ने रक्षकों से बचकर युवती को धनमित्र के पास पहुंचा दिया और कहा, "मैं एक चोर हूं. तुमसे इस युवती का मन लगा था. मुझे यह रास्ते में मिल गयी, मैंने इसे घर पहुंचा दिया है. ये इसके आभूषण संभालो."

धनमित्र ने लज्जा, हर्ष और घबराहट से उत्तर दिया, "यह निश्चय है कि आज तक किसी चोर ने ऐसा नहीं किया. तुम्हारा स्वभाव निश्चय ही अद्भुत है. आज से मैं तुम्हारा क्रीतदास हूं."

उपहारवर्मा आगे भी उसकी सहायता करता है और उसे ऐसी तरकीब बतलाता है जिससे युवती का पिता कुबेरदत्त उसे ही अपनी कन्या देने का निश्चय कर लेता है.

'शार्ङ्ग धर-पद्धति' में भी एक चोर के करुणा से द्रवित होने का प्रसंग उपलब्ध होता है—

एक निर्धन व्यक्ति अपनी स्त्री से कहता है, "कोई जीर्ण-शीर्ण कपड़ा हो तो मुझे दो, अपने बच्चे को अपनी गोद में ले लो." स्त्री उत्तर देती है, "यहां कपड़ा तो कोई है नहीं, हां,आपके पीछे फूस का ढेर अवश्य है."

एक चोर इस घर में चोरी करने के लिए आया था. उसने निर्धन दंपति के उक्त वार्तालाप को सुना. चोर के पास चोरी किया हुआ कपड़ा था, उसने उसे आंगन में फेंक दिया. उसकी आंखें आर्द्र हो आयीं और वह उस घर को छोड़कर आगे बढ़ गया.

'सिंहासन बत्तीसी' की एक कथा में राजा विक्रमादित्य चोर के साथ इस तरह का व्यवहार करता है कि चोर हमेशा के लिए चोरी करना छोड़कर शरीफ बन जाता है.—

दूसरे दिन सवेरे जब राजा भोज सिंहासन के पास आया तब रूपवती नाम की तीसवीं पुतली बोली, "हे राजा भोज, एक दिन की बात है. . . रात में सोते-सोते एकाएक विक्रमादित्य के मन में शहर में घूमने की इच्छा हुई. इसलिए ढाल-तलवार ले वह चुपचाप महल से निकल पड़ा. थोड़ी दूर जाकर उसने देखा कि चार चोर खड़े हैं. और आपस में सलाह कर रहे हैं कि कहां चलकर चोरी की जाये. राजा उन लोगों के पास गया. तब उनमें से एक ने पूछा, 'तुम कौन हो?' राजा ने कहा, 'जो तुम, सो मैं.' उन चोरों ने राजा को भी अपने दल में शामिल कर लिया और अपना गुण बयान करके राजा का गुण पूछा. विक्रमादित्य ने कहा, "मैं एक ऐसी विद्या जानता हूं. जिससे जमीन में गड़ा हुआ धन मुझे मालूम हो जाता है.' तब उन चारों ने राजा को आगे कर लिया.

राजा उनको लेकर राजमहल के पिछवाड़ेवाले बाग में आया. वहां चोरों ने जमीन खोदकर अशर्फी और जवाहरात के कई गट्ठर बांधे और उनका बंटवारा करने के लिए आगे बढ़े.

कुछ दूर जाने के बाद उन्होंने कुछ कपड़े चुराने का इरादा किया और सेंध लगाकर राजा के धोबी के घर में घुसे. राजा ने दूसरे के धन की चोरी कराना बुरा समझा और वहां से चला गया. तब उन चोरों को अपना हिस्सा लिये बिना ही चले जानेवाले उस साथी पर बड़ा अचरज हुआ.

दूसरे दिन शहर भर में हल्ला हो गया कि राजा के खजाने में चोरी हो गयी है. कोतवाल ने चोरों को पकड़ने का पक्का इंतजाम किया और तीसरे दिन वे चारों महाराज के सामने दरबार में हाजिर किये गये. वहां राजा को देखते ही वे सब के सब उसकी तरफ गौर से देखने लगे. तब राजा ने हंसकर उनसे पूछा, 'तुम लोग हमारी तरफ इस तरह क्यों देख रहे हो?'

राजा की यह बात सुनकर चोरों में से एक ने कहा, 'महाराज, आप चाहे हमें जान से मरवा डालें, चाहे जीवन-दान दें, एक बात जो मेरे मन में है, उसे मैं कह देता हूं. महाराज, इस वक्त तो आप राजा हैं. . . पर उस दिन रात में चोरी करते समय आप हमारे साथ थे.'

चोर की यह बात सुनकर राजा हंसकर बोला, 'तुम अपने मन में डर मत करो. हमने तुम लोगों की जान बख्श दी. पर अब से तुम लोग चोरी मत करना. वह धन जो हमारे खजाने से ले गये हो, अपने पास रखो.'

राजा की यह आज्ञा पाकर वे चोर खुशी-खुशी अपने घर गये. और उन्होंने कभी चोरी नहीं की. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेटर, एक बियर और

मोपासाँ

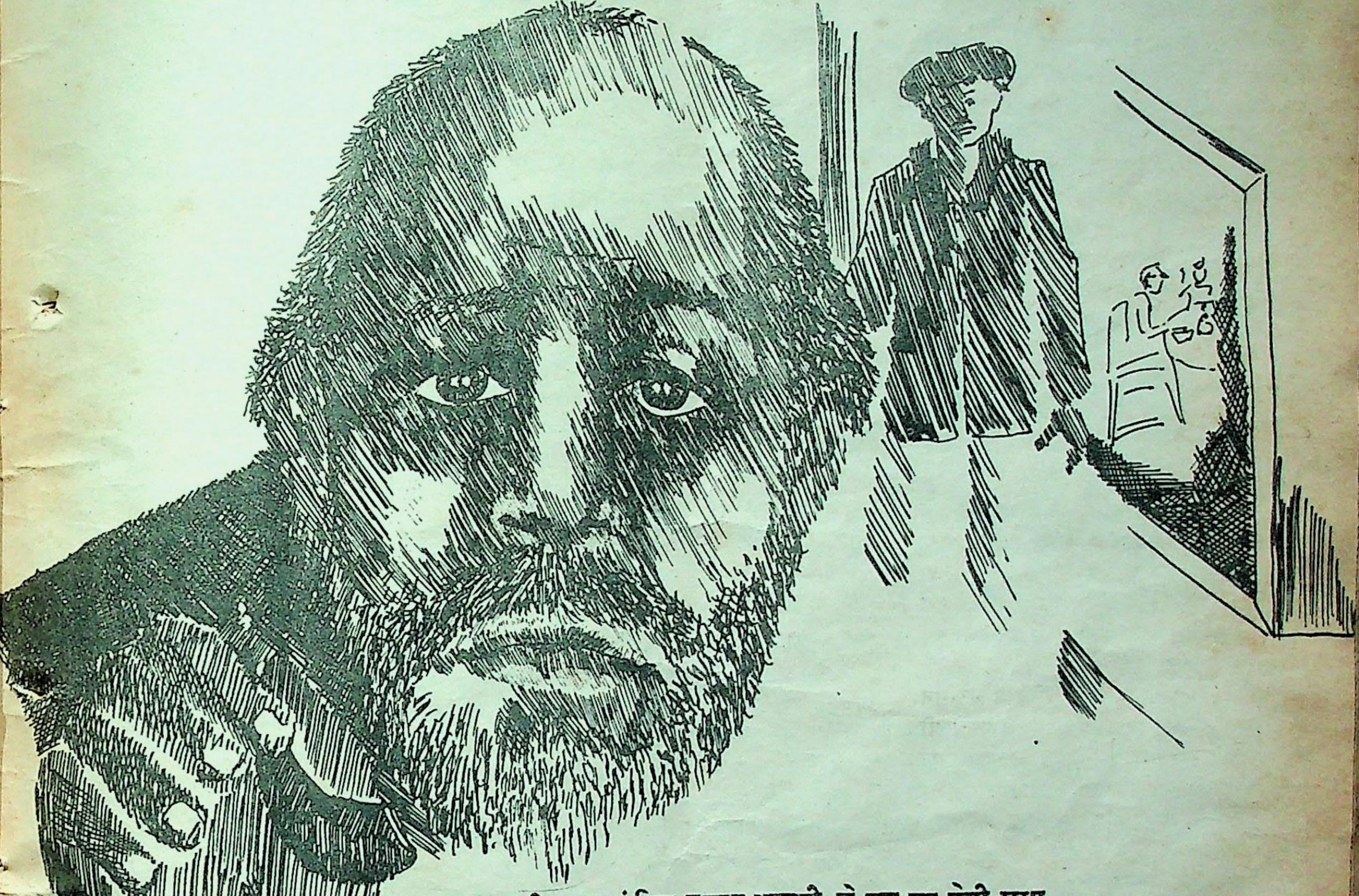

बचपन की घटनाएं किस प्रकार आदमी के मन पर ऐसी छाप छोड़ जाती हैं कि पूरे जीवन के लिए उसे नाकारा और ऋणात्मक सोच वाला व्यक्ति बना देती हैं? आदमी उन प्रभावों से अपने आप को मुक्त क्यों नहीं कर पाता?

मोपासां फ्रांसीसी साहित्य ही नहीं, विश्व साहित्य के महान कथाकारों में अग्रणी रहे हैं

उसी शाम, उसी बियर की दूकान में मैं क्यों चला गया, यह मेरी समझ में आज तक नहीं आया. वह बहुत ठंडा दिन था. बारीक बूंदा-बांदी और कोहरे की हल्की परत में दूकानों से झरती झिलमिल रोशनी फुटपाथों को एक अजीब रंगीनी दे रही थी.

मैं किसी खास जगह जाने के लिए नहीं निकला था, बल्कि खाना खाने के बाद यूं ही टहल रहा था. काफी देर टहलते रहने के बाद अचानक मेरी नजर एक बड़े से कैफे पर पड़ी, जो आधा ही भरा था. मैं बिना किसी उद्देश्य के भीतर घुस गया, हालांकि मुझे प्यास जरा भी नहीं थी.

कैफे के भीतर नजर घुमाने पर मुझे एक जगह दिखाई दी, जहां ज्यादा भीड़ नहीं थी. इसलिए मैं उसी तरफ जाकर एक आदमी की बगल में बैठ गया. वह आदमी काफी बूढ़ा लग रहा था. वह एक सस्ता-सा मिट्टी का बना पाइप पी रहा था. वह पाइप इतना काला हो गया था कि कोयले के टुकड़े जैसा लगता था. उसकी मेज पर एक ओर बियर के मग के नीचे रखी जाने वाली छह-सात तश्तरियों का एक ढेर लगा था. इसका मतलब था कि वह उतनी बियर अब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul K

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पी चुका है. मैं समझ गया कि यह उसी तरह के लोगों में से एक है जो कैफे के खुलने के समय आ जाते हैं और तभी उठते हैं जब कैफे के बंद होने का समय हो जाता है. वह आदमी काफी गंदा था. उसका आगे का आधा सिर गंजा था और पीछे के सफेद बाल गर्दन पर से होते हुए उसके फ्रॉक कोट के ऊपर छितरे हुए थे. उसके कपड़े काफी ढीले-ढाले थे और लगता था कि उस जमाने के बने हुए हैं, जब वह हट्टा-कट्टा रहा होगा. उसकी कमीज के कफ उतने ही काले थे जितने उसके नाखूनों के सिरे.

जैसे ही मैं उस विचित्र जंतु के पास जाकर बैठा, उसने बड़ी ठंडी आवाज में मुझसे पूछा, "कहो, क्या हाल हैं?"

मैं उसकी ओर घूमा और एक गहरी नजर उस पर डाली. वह बोलता रहा, "लगता है, तुमने मुझे पहचाना नहीं."

"नहीं."

"दे बेरेत्स."

मैं अवाक् रह गया. तो यह काउंट ज्यां दे बेरेत्स था. मेरा कॉलेज के जमाने का यार.

मैंने बड़ी आत्मीयता से उसका हाथ थाम लिया. मेरे मुंह से शब्द

नहीं निकल पा रहे थे. किसी तरह मैं इतना भर कह सका, "तुम सुनाओ, तुम्हारे क्या हाल हैं?"

"मैं? बस ऐसे ही हूं."

वह चुप हो गया. मैं इतनी जल्दी यह संवाद खत्म नहीं करना चाहता था. इसलिए पूछ बैठा, "आजकल क्या कर रहे हो?"

"तुम देख तो रहे हो कि मैं क्या कर रहा हूं." उसने कहा.

मुझे लगा, मेरा चेहरा लाल हो गया था. मैंने फिर जोर देकर पूछा, "मेरा मतलब है, तुम्हारी दिनचर्या क्या है?"

"मेरे लिए सारे दिन एक जैसे हैं." इतना भर कहकर उसने एक गहरा कश लिया और ढेर सारा धुआं उगल दिया.

फिर उसने मग से संगमरमर की मेज को ठकठकाया ताकि उसकी आवाज सुनकर वेटर का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो. और फिर बोला, "वेटर, दो बियर और!"

तत्काल ही एक व्यक्ति आया और उसने बियर के दो मग मेज पर रख दिये. मगों के सिरे से बियर के झाग बहते हुए मेज पर आने लगे.

दे बेरेत्स ने एक घूंट में ही अपना मग खाली कर दिया और मेज पर वापस रख दिया. फिर मूछों की कोरों पर लगे बियर के झाग को जीभ से चाटते हुए उसने पूछा, "कोई नयी बात?"

"खास तो कुछ नहीं है." मैं अटकते हुए बोला, "पर मेरे लिए पुराना कुछ नहीं होता, मैं एक व्यावसायिक आदमी हूं."

उसी तरह के स्वर में उसने कहा, "अच्छा! क्या इस सबमें तुम्हें मजा आता है?"

"मजा तो नहीं, पर कुछ न कुछ तो करना ही पड़ता है. तुम भी तो कुछ करते ही होगे."

"तुम क्या कहना चाहते हो?"

"मेरा मतलब है कि तुम अपना समय कैसे बिताते हो?"

"अपने आपको किसी भी काम में उलझाये रखना भला क्यों जरूरी है. जहां तक मेरा सवाल है, मैं तो कुछ नहीं करता. तुम देख ही रहे हो, अगर अपने सामने बियर के मग न रखे हों, तब तो कारण समझ में आता है कि कोई कुछ करे वर्ना काम करने का क्या फायदा? तुम जो भी काम करते हो, अपने लिए करते हो या दूसरों के लिए? अगर तुम अपने लिए काम कर रहे हो, अपने आनंद के लिए कर रहे हो तब तो ठीक है पर अगर तुम दूसरों के लिए काम कर रहे हो तो तुम्हारे हाथ केवल कृतघ्नता ही लगेगी."

फिर पाइप को मुंह में ठूंसकर नये सिरे से बात शुरू की, "वेटर, एक बियर और, बस यही पुकारने की प्यास मेरे भीतर रह गयी है. मैं किसी भी तरह का काम करने का आदी नहीं हूं. हां, मैं कुछ नहीं करता. मैं अपने सामने घटनाओं को घटते भर देखना रहता हूं और इसी में बूढ़ा हो रहा हूं. मरते समय मुझे किसी चीज का पछतावा नहीं होगा. उस समय मुझे इस जगह के अलावा और कुछ याद नहीं आयेगा. मेरे पास न बीवी है, न बच्चा, न चिंता, न दुख, कुछ नहीं. इससे ज्यादा सुखी भला कोई हो सकता है?"

फिर उसने अपने सामने अभी-अभी लाकर रखे गये बियर के मग को खाली किया, होंठों पर जीभ फेरी और फिर से पाइप मुंह में अटका दिया.

मैंने किसी बेवकूफ की तरह उसकी ओर देखा और पूछा, "पर तुम हमेशा से तो ऐसे नहीं थे?"

"माफ करना दोस्त. कॉलेज छोड़ने के बाद से तो ऐसे ही हूं."

"लेकिन मेरे प्यारे दोस्त, यह तो जीवन जीने का कोई तरीका नहीं है. खैर छोड़ो, तुमने कुछ तो किया होगा, किसी से प्यार किया होगा, कुछ दोस्त बनाये होंगे."

"नहीं. मैं दोपहर में जागता हूं और यहां आ जाता हूं. नाश्ता करता हूं. अपनी बियर पीता हूं. मैं शाम तक यहां रहता हूं. रात का खाना खाता हूं और बियर पीता हूं. रात के एक बजे मैं अपने घर लौट जाता हूं क्योंकि उस समय यह जगह बंद हो जाती है. और यह बाद का हिस्सा ही मेरे लिए सबसे अधिक कष्टदायक है. पिछले दस सालों का छह बटा दस भाग मैंने इसी कोने की इसी बेंच पर बैठकर बिताया है और बाकी चार बटा दस भाग अपने बिस्तर पर. बिना किसी परिवर्तन के. यही मेरी दिनचर्या है."

मुझे लगने लगा था कि वह मुझे बेवकूफ बना रहा है. मैंने कहा, "छोड़ो यार, साफ-साफ बताओ. जरूर तुम्हें कोई बहुत बड़ा दुख है. जरूर तुमने प्यार में धोखा खाया है. यह तो आसानी से समझा जा सकता है कि दुर्भाग्य ने तुम्हें गहरी चोट पहुंचायी है. तुम्हारी उम्र कितनी होगी?"

"तीस का हूं पर पैंतालीस से कम का नहीं लगता."

मैंने सीधी नजर उसके चेहरे पर डाली. उसके चेहरे पर चिंता की असंख्य झुर्रियां पड़ी थीं और उन्हें देखकर कोई भी यह मान सकता था कि वह बूढ़ा हो गया है. उसकी भवें काफी मोटी थीं, मूछें बड़ी-बड़ी थीं और दाढ़ी घनी. मैंने उससे कहा, "जाहिर है कि तुम अपनी उम्र से काफी बड़े लगते हो. जरूर तुम किसी बहुत बड़ी निराशा के दौर से गुजरे हो."

उसने जबाव दिया, "मैं बताद़ूं कि ऐसा कुछ नहीं है. मैं बूढ़ा इसलिए हो गया हूं कि मैं खुली हवा में कभी निकलता ही नहीं. इस कैफे के वातावरण में तो किसी आदमी को जीवंतता देने के लिए कुछ है नहीं."

मुझे उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ.

"तुम्हारी शादी भी हुई ही होगी. बिना प्यार किये कोई इस तरह गंजा तो होता नहीं."

उसने इनकार में अपना सिर हिलाया, "नहीं, मैं कभी इतना भाग्यशाली नहीं रहा." फिर अपनी नजरें ऊपर उठाते हुए बोला, "मेरे गंजे होने का कारण गैस है. पेट में बनने वाली गैस आदमी की दुश्मन होती है. वेटर एक बियर और! तुम और लोगे?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं, धन्यवाद. पर तुमने मेरी दिलचस्पी को जगा दिया है. अच्छा यह बताओ कि पहली बार तुम्हारा उत्साह भंग कब हुआ? तुम्हारा जीवन सामान्य नहीं है, और यह स्वाभाविक भी है. इस सबके पीछे कुछ न कुछ होना ही चाहिए."

"हां, और इसकी शुरुआत तब हो गयी थी जब मैं अबोध बच्चा था. जब मैं बहुत छोटा था तभी मुझे एक भारी आघात का सामना करना पड़ा. इसी ने मेरे जीवन में अंधेरा भर दिया और यह अंधेरा मेरी मौत तक मेरे साथ रहेगा."

"यह सब हुआ कैसे?"

"तुम यह सब जानना ही चाहते हो? ठीक है, सुनो, तुम्हें याद होगा वह महल जहां मेरा बचपन गुजरा. तुम भी तो छुट्टियों में वहां आये थे. तुम्हें याद होगा उस विराट उद्यान के बीच में बना धूसर रंग का वह महल और ओक के पेड़ों के बीच से गुजरती चार सड़कें जो उस महल के लिए बने चार प्रमुख द्वारों तक पहुंचती थीं. तुम्हें यह भी याद होगा कि मेरे माता और पिता दोनों बहुत ही आडंबरी, औपचारिक तथा अलग-थलग रहने वाले लोग थे.

"मैं अपनी मां की पूजा करता था. पिता को लेकर मेरे मन में शंकाएं थीं. पर मैं दोनों का आदर करता था. मैं देखता था कि हर कोई उनके आगे झुककर उन्हें सलाम करता था. गांव के लोगों के लिए वे मोश्यों ले कोंते तथा मादाम दे कोंतेसे थे और पड़ोस की जागीरों में उनका विशेष सम्मान था.

"तब मैं तेरह साल का था. सब कुछ से संतुष्ट और खुश. जिंदादिल और मस्त. जैसे कि उस उम्र में लोग होते ही हैं.

"सितंबर के आखिरी दिनों की बात है, स्कूल के हॉस्टल में आने से कुछ ही दिन पहले की. मैं पार्क में मस्ती से पेड़ों के ऊपर चढ़ रहा था. एक टहनी से दूसरी टहनी पर कूद रहा था. तभी मैंने देखा कि रास्ते पर से मेरी मां और पिता साथ-साथ चलते हुए आ रहे थे.

"ये सब बातें मुझे इतनी अच्छी तरह याद हैं जैसे कल ही घटी हों. उस दिन काफी हवा चल रही थी. हवा के दबाव से पेड़ झुके जा रहे थे और लगता था जैसे चिल्ला और कराह रहे हों. धीमी और गहरी कराह.

"शाम हो गयी थी और पेड़ों के झुरमुटों में पूरा अंधेरा घिर आया था. तेज हवा के प्रति पेड़ों की टहनियों का विरोध मुझे अच्छा लग रहा था और मैं भी उनकी 'सांय-सांय' के साथ एक बेवकूफ की तरह सियार की आवाज में—'हू-हू' करने लगा था.

"जैसे ही मेरी नजर अपने माता-पिता पर पड़ी, मैं टहनियों के बीच में से रेंगता हुआ उनकी तरफ बढ़ा ताकि एकदम उनके सामने आकर उन्हें अचंभे में डाल दूंगा. पर अचानक भय ने मुझे जकड़ लिया. मैं उनसे कुछ ही कदम की दूरी पर आकर रुक गया. मेरे पिता भयानक क्रोध में चिल्ला रहे थे. 'तुम्हारी मां बेवकूफ है और फिर सवाल तुम्हारी मां का ही नहीं है. तुम्हारा भी है. मैं कहे देता हूं मुझे पैसे की जरूरत है और तुम्हें यहां दस्तखत करने ही होंगे.'

"मेरी मां ने दृढ़ स्वर में जबाव दिया, 'मैं कभी इस पर दस्तखत नहीं करूंगी. यह ज्यां के भविष्य का मामला है. मैं नहीं चाहती कि तुम यह सब भी उस औरत को दे डालो, जैसे तुमने अपनी पैत्रिक जायदाद उसे दे दी है.'

"तब मेरे पिता गुस्से में भरकर चकरी की तरह घूमे और अपनी पत्नी को गले से पकड़कर दूसरे हाथ से पूरी ताकत से उसके गालों पर थप्पड़ मारने लगे.

"मेरी मां का हैट दूर जा गिरा. उसके बाल खुल गये और पीठ पर बिखर गये. उसने थप्पड़ों से बचने का भरसक प्रयास किया पर सफल नहीं हुई. फिर वह जमीन पर जा गिरी और दोनों हाथों से अपना चेहरा छिपा लिया. उसकी और पिटाई करने की गरज से पिता ने उसे फिर से पकड़ लिया, घुमाकर पीठ के बल लिटा दिया और चेहरे को ढकनेवाले हाथों को हटाने की कोशिश करने लगे.

"जहां तक मेरा सवाल है, मेरे दोस्त, मुझे लगा जैसे मेरे लिए दुनिया ही समाप्त होने वाली है. सारे शाश्वत नियम-कायदे बदल गये हैं. मुझे लग रहा था जैसे मेरे सामने प्रकृति के किसी ऐसे विध्वंस का प्रकोप हो रहा है जिससे होने वाली क्षति कभी पूरी नहीं की जा सकती. मेरे बाल सुलभ मष्तिष्क में जैसे आंधियां उठने लगीं. दुख और आतंक से ग्रसित मैं न जाने क्यों अपनी पूरी ताकत के साथ चीख उठा. पिता ने मेरी आवाज सुनी. मुझे लगा कि वे मुझे मार डालेंगे और मैं किसी आतंकित जानवर की तरह भागने लगा और सीधा जंगल की तरफ भागता चला गया.

"मैं एक घंटे तक दौड़ता रहा, या शायद दो घंटे तक, कह नहीं सकता. कई झाड़ियों से मैंने ठोकर खायी. फिर मैं गिर पड़ा. भय तथा आतंक से मेरी हालत खराब हो रही थी. फिर मुझे ठंड लगने लगी, भूख लगने लगी. एक लंबे समय के बाद दिन निकला. मेरी न तो उठने की हिम्मत हो रही थी और न घर वापस लौटने की. डर यह था कि वहां जाकर पिता का सामना करना पड़ेगा. मैं उन्हें फिर से देखना नहीं चाहता था.

"मैं भूख और बेचारगी में उसी पेड़ के नीचे दम तोड़ देता अगर हमारे घर का एक कारिंदा मुझे वहां ढूंढ़ न लेता और जबरन पकड़कर घर न ले जाता.

"हां, मैं कुछ नहीं करता. मैं अपने सामने घटनाओं को घटते भर देखता रहता हूं और इसी में बूढ़ा हो रहा हूं. मरते समय मुझे किसी चीज का पछतावा नहीं होगा. उस समय मुझे इस जगह के अलावा और कुछ याद नहीं आयेगा."

"घर आकर मैंने देखा कि मेरे माता-पिता आम दिनों की ही तरह सामान्य हैं. मां ने ही मुझसे कहा, 'नटखट लड़के, तुमने तो मुझे डरा ही दिया था. मैं पूरी रात सो नहीं सकी थी.'

"मैंने कोई जबाव नहीं दिया बल्कि रोने लगा. पिता ने एक शब्द भी मुंह से नहीं निकाला.

"आठ दिन बाद मैं हॉस्टल में दाखिल हो गया.

"तो दोस्त, यह सब घटा मेरे साथ. मैंने तस्वीर का दूसरा ही पहलू देखा है. बुरा पहलू. उस दिन के बाद से मैंने अच्छा पहलू तो देखा ही नहीं है. मैं नहीं जानता कि मेरे दिमाग में क्या कुछ बैठ गया है कि मेरे विचारों को किसी विचित्र आभास ने घेर लिया है. पर अब मेरे मन में किसी भी चीज के प्रति रुचि नहीं रह गयी है. किसी के प्रति प्यार नहीं है. आशाएं, इच्छाएं सभी खत्म हो गयी हैं. मुझे हमेशा रास्ते पर गिरी अपनी मां और पिता के द्वारा उससे होता दुर्व्यवहार ही नजर आता है. मेरी मां की मौत कुछ ही समय बाद हो गयी थी. पिता अभी जीवित हैं. पर तब से मैंने उन्हें देखा नहीं है. वेटर, एक बियर और!"

वेटर उसके लिए बियर ले आया जिसे उसने एक ही घूंट में गटक लिया. पर पाइप को फिर से अपने मुंह तक लाते हुए उसके हाथ लड़खड़ा गये और पाइप टूट गया. इस पर उसकी मुद्रा अचानक भयानक हो गयी.

"धत्तेरे की! यही मेरे लिए सबसे बड़ा दुख है. अभी इसे खरीदे एक महीना ही हुआ था और इतने अच्छे ढंग से इस पर रंग चढ़ रहा था!"

फिर धुएं और शराब पीते लोगों से भरे उस बड़े से हॉल को उसने अपनी आवाज से गुंजा दिया, "वेटर एक बियर और. . और एक नया पाइप. □

रूपांतर : सु. उ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul K

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंधा उल्लू

सादेह हिदायत

ऐसे घाव भी होते हैं, जो नासूर की भांति, अकेले में मन को धीरे-धीरे नष्ट करते रहते हैं. इस किस्म का क्षय रोग कितना यंत्रणादायक हो सकता है, उसका बयान कोई भुक्तभोगी ही कर सकता है; निरानुभवी लोग तो उस यंत्रणा को अकल्पनीय कहकर ही टाल देते हैं. इस रोग से पीड़ित व्यक्ति उससे छुटकारा पाने के लिए प्रायः मदिरा, अफीम तथा अन्य नशीले पदार्थों का सेवन आरंभ कर देता है. ये पदार्थ आरंभ में तो कुछ राहत देते प्रतीत होते हैं, लेकिन बाद में यंत्रणा में वृद्धि करनेवाले ही सिद्ध होते हैं.

यह रोग जब चिरकाली बन जाता है तो रोगी को उस स्थिति में ले आता है, जिसे मौत और पुनर्जीवन के बीच की एक सूक्ष्म सीमा-रेखा कहा जा सकता है; जहां उसे यह भी पता नहीं होता कि उसे कुछ पता भी है या नहीं.

आज मैं अपनी आत्मा की गहन गहराइयों में दुबककर बैठ गया हूं, जैसे कोई पशु किसी गहरी खोह में जाकर विश्राम कर रहा हो. मैं अपने को घटाटोप अंधकार में नितांत अकेला अनुभव कर रहा हूं. मुझे यह अनुभूति भी हो रही है, जैसे कोई मुझे मौत की अथाह खाई की ओर धीरे-धीरे धकेल रहा है. उस मौत की ओर, जो एकमात्र सत्य है, जो कभी झूठ नहीं बोलती.

हम सब मौत की ही संतान हैं और यह मौत ही है, जो जीवन की प्रवंचनाओं से हमारी रक्षा करती है. जब हम पूरी तन्मयता से जी रहे होते हैं, तब भी वह हमें अपने पास ऐसे बुलाती है, जैसे मां प्यार से बच्चे को बुलाती है. कभी-कभी, जब हम जिंदगी का खेल खेलते-खेलते थक जाते हैं; तब हमें मौत अचानक विशेष भाषा में कुछ कहती सुनायी पड़ती है. कभी-कभी, ऐसे ही क्षणों में हमें लोगों के मुंह से भी मौत की आवाज की प्रतिध्वनियां सुनायी देती हैं.

अपने ही पसीने से भीगे अपने बिस्तर में पड़ा-पड़ा सोच रहा था कि मैं मौत के आगोश में चला जाऊं तो मुझे इस यंत्रणा से मुक्ति मिले, लेकिन मुक्ति नहीं मिली, और मेरी यंत्रणा और अधिक बढ़ गयी. तकिये के अंदर पड़े पंख मुझे खंजरों की भांति चुभने लगे और अपनी कमीज पर लगे बटन मुझे चक्की के पाट जैसे भारी लगने लगे. मुझे यह डर लगने लगा कि मेरे सो जाने के बाद कहीं सामने जल रहा दीया अपनी आग भड़काकर मुझे और सारे कमरे को जला न दे. मुझे यह भी डर लगने लगा कि कहीं दीवार पर रेंगते कीड़े, सोने के बाद, सांपों की शक्ल अख्तियार न कर लें और जो चादर मैं ओढ़ रहा हूं, वह मेरे सोने के बाद, कब्र न बन जाये. और अंत में मुझे यह डर भी लगने लगा कि कहीं सोते-सोते मेरी जबान बंद न हो जाये और मैं बोलने या चिल्लाने लायक भी न रह जाऊं. . .

मैं वर्तमान से अपना ध्यान हटाकर, अपने बचपन के दिनों के बारे में सोचने लगा, लेकिन जितना ही सोचता था, उतना ही पाता था कि वे दिन भी खुशी के दिन नहीं थे; वे आज जैसे ही यंत्रणा भरे दिन थे.

. . . जो प्रयास से नहीं हुआ, वह अप्रयास से होने लगा. मैं धीरे-धीरे शांत होने लगा और इस अनायास प्राप्त हुई शांति में मुझे चेहरों के पीछे छिपे लोगों के असली चेहरे दिखायी देने लगे. अपने बारे में सोचते हुए भी मुझे लगा कि मेरे असली चेहरे पर भी अनगिनत चेहरे लगे हुए हैं, लेकिन मेरा असली चेहरा क्या है? शायद वह मुझे तब दिखायी देगा, जब मौत अचानक आकर, मेरे आखिरी नकली चेहरे को हटा देगी. . . मेरे खयाल इतने रुग्ण और त्रासदायक क्यों हैं? शायद कमरे की दीवारों पर कुछ रोगाणु चिपके हैं. शायद मेरे इस कमरे में आने से पहले कोई पागल या कोई हत्यारा इस कमरे में रहता था और ये रोगाणु शायद उसी के हैं. वह पागल या हत्यारा तो चला गया, लेकिन उनके ये रोगाणु मुझे पागल या हत्यारा बनाने पर तुले हैं.

रोगाणु ही क्यों, यहां का सारा माहौल ही मुझे पागल या हत्यारा बनाने पर तुला है. मुझे जो कुछ भी दिखायी देता है; सीधा बींधता हुआ नजर आता है. टुकड़े-टुकड़े करता हुआ प्रतीत होता है. खिड़की के पार किसी अच्छी-खासी औरत को, जो नर्स की पोशाक पहने हैं, देखता हूं और देखते ही देखते, उसका चेहरा मुझे एक डाकिन का चेहरा दिखायी देने लगता है. सामने रखी हुई रकाबी अचानक विकराल रूप धारण कर मुझे काटने को दौड़ती दिखायी देने लगती है.

. . . याद आया, कुछ दिन पहले, एक शाम को मैं एक हमाम में नहाने गया था. जैसे ही मैंने अपने सब कपड़े उतारे, मेरे विचार एक नयी दिशा में प्रवाहित होने आरंभ हो गये. इन विचारों के पंखों पर सवार होकर, मैंने पाया कि सार्वजनिक रूप से वस्त्रविहीन होकर मैं जैसे अपने अंदर और ज्यादा सिमट आया हूं. और जब स्नान करने वाले छोकरे ने मेरे ऊपर पानी डालना आरंभ किया तो मुझे लग रहा था, जैसे मेरे सारे दुःस्वप्न, सारे काले, निराशावादी विचार मेरे मन से घुलने आरंभ हो गये हैं.

मैंने हमाम की दीवार पर पड़ रही अपनी छाया को देखा. अरे, दस साल पहले इसी हमाम की दीवार पर पड़ रही मेरी छाया हूबहू मेरी आज की छाया जैसी ही थी. मैं आज भी उतना ही दुबला-पतला हूं, जितना दस साल पहले था. अपनी जिन जांघों को देखकर, पहले मेरे मन में कामुक विचार उत्पन्न होने लगते थे, आज उन्हीं को देखकर मेरा मन निराशा से भर आता है.

तीर की तरह बींधता हुआ एक विचार सीधा मन में उतर गया कि जिंदगी के पिछले दस साल बेकार गये, निरर्थक सिद्ध हुए.

जब तक मैं हमाम में रहा और स्नान करता रहा, तब तक जैसे मैं अपनी पुरानी दुनिया से बिल्कुल कट गया था, लेकिन जैसे ही चिर-परिचित. . . यंत्रणादायी. . . पुरानी दुनिया में वापस आ गया, मुझे इस बात का बेहद अफसोस था कि पुनरुज्जीवित होकर भी मैं अपने पुराने जीवन में ही लौटा और मुझे किसी नये जीवन की अनुभूति नहीं हुई. फिर भी, मैं मन में यह राहत अनुभव कर रहा था कि नये से पुराने जीवन की ओर लौटते समय, मेरी हस्ती नमक के ढेले की भांति हमाम के पानी में घुलकर अस्तित्वविहीन नहीं हो गयी. यह एक चमत्कार से कम नहीं था.

ये पंक्तियां लिखते समय, मेरे सामने उस कलम का कलमदान रखा है, जिससे मैं ये पंक्तियां लिख रहा हूं. इस कलमदान पर एक चित्र बना है, जो लगता है, कलाकार ने किसी अजीबोगरीब मूड में बनाया होगा. चित्र में एक पुराना वृक्ष है, जिसके नीचे एक बूढ़ा फकीर एक लबादा ओढ़े बैठा है. वह अपने बायें हाथ की तर्जनी होंठों पर रखे आश्चर्य से अपने सामने नृत्य करती हुई एक युवती को देख रहा है. लंबी, काली पोशाक धारण किये हुए यह युवती एक साधारण युवती है और उसकी नृत्य की भावभंगिमाएं भी अत्यंत साधारण हैं. वह हाथ में एक फूल लिये हुए है और उसके और बूढ़े फकीर के बीच एक बारीक-सी जलधारा बह रही है.

कुल मिलाकर चित्र बहुत साधारण है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसे किसी भी प्रकार से कलाकृति का दर्जा नहीं दिया जा सकता, लेकिन मेरे लिए वह चित्र बड़ा असाधारण बन गया है. कारण, जब-जब मैं उसे देखता हूं, मेरे मन में असाधारण कल्पनाएं जन्म लेने लगती हैं, जिन्हें मैं लेखनी के द्वारा साकार करने को बेताब हो उठता हूं.

मैं अपनी अफीम की अंगीठी के सामने बैठा था. उसमें जो धुआं निकल रहा था. मेरे सब काले, कलुषित विचार जैसे उस धुएं में विलीन होते जा रहे थे. मेरा मन तो उनमें विलीन हो रहा था और तन जैसे वायु के समान हल्का होकर अंतरिक्ष में ऊपर ही ऊपर उड़ता जा रहा था. मैं अपने को बिल्कुल भारहीन और शून्यवत् अनुभव कर रहा था और विचित्र-विचित्र आकारों और रंगों वाली दुनियाओं में से गुजरता जा रहा था. एक ओर मैं अपने को बहुत हल्का अनुभव कर रहा था और दूसरी ओर, उसके साथ ही साथ अफीम की जड़ आत्मा मेरे शरीर में प्रवेश कर, मेरे शरीर को भी जड़ और संज्ञा शून्य करती जा रही थी. मुझे लग रहा था, मैं धीरे-धीरे कलमदान पर अंकित वृक्ष की भांति हो जाऊंगा. . . शांत, निःस्पंद और निर्जीव.

एक झटके के साथ, मैंने अपने अंदर एक बवंडर-सा अनुभव किया और मैंने पाया कि मेरे शरीर ने गुडमुड होकर एक विचित्र और अनजाना आसन ग्रहण कर लिया है. मुझे उस बेढंगे से दूकानदार की याद आ गयी, जिसे मैं बचपन में देखा करता था. वह भी उसी विचित्र और अनजाने आसन में बैठा करता था, जिसमें आज मैं बैठा हुआ था. मुझे याद आया कि वह बेचारा तो उस विचित्र आसन में बैठने के लिए मजबूर था, क्योंकि वह अपंग था, लेकिन मैं तो अपंग नहीं हूं. हां, यदि एक लंबे अर्से तक इस आसन में बैठा रहा तो शायद मैं भी उसकी भांति अपंग हो जाऊंगा.

यह विचार मन में आते ही मैं भयाक्रांत हो उठा. मैं अपने शरीर को जोरदार झटका देते हुए उठा और अपना लबादा फेंककर दर्पण के सामने आकर खड़ा हो गया. मैंने देखा कि मेरे गाल ताजे गोश्त की भांति लाल हो गये हैं और हमेशा करीने से रहनेवाली मेरी दाढ़ी छितर और बिखर गयी है.

मैं अपना जो रूप दर्पण में देख रहा था, वह एकदम बेतुका, बेढंगा और अनाकर्षक था, लेकिन उसकी विलक्षणता मुझे न जाने क्यों अत्यंत प्रीतिकर और सुखदायी लग रही थी. मुझे लगा, जैसे मैं लौकिक नेत्रों से अपने अलौकिक रूप को देख रहा था.

और, इससे भी विलक्षण बात यह थी कि मैं स्वयं को दो स्तरों पर सक्रिय देख रहा था.

प्रौढ़ावस्था की यंत्रणाओं और त्रास से भागकर मनुष्य प्रायः कैशोर्य और बचपन की सुखद स्मृतियों में त्राण प्राप्त करता है, लेकिन जिसका कैशोर्य और बचपन भी त्रासदी भरा रहा हो, उसे कहां जाकर मिलेगा त्राण ? कहां मिलेगी मुक्ति ? जवाब दे रहा है यह ईरानी उपन्यास अंश—

एक स्तर पर मैं बुझा और थका हुआ-सा बेजान हालत में बैठा था और दूसरे स्तर पर मैं बहुआयामी होकर अपने को अलग-अलग कोणों से देख रहा था.

अपनी बुझी हुई और निस्तेज आंखों को गौर से देखते-देखते सहसा मुझे लगा कि मैं मानवीय साकार रूप खोकर, अमानवीय और निराकार होता जा रहा हूं तथा मेरे तन-मन का भारीपन मुझसे पृथक होकर मुझे स्पष्ट दिखायी देने लगा है.

दर्पण में अपनी आंखों को देखते-देखते मैंने अपने को अपने से ही कहते सुना, "तुम्हारी वेदना घनीभूत होकर तुम्हारे नेत्रों के तल में समा गयी है और अब यदि तुम रोओगे तो आंसू या तो तुम्हारे नेत्रों की जड़ों से आयेंगे या बिल्कुल आयेंगे ही नहीं."

ऐसा कहकर मैंने रोना चाहा, ताकि जो भी वेदना शेष रह गयी हो, वह इन आंसुओं में बह जाये, लेकिन आसूं नहीं निकले. तब मैंने अपने को अपने से कहते सुना, "बेवकूफ, तू जीकर क्या करेगा? अपना अंत क्यों नहीं कर लेता? तेरे लिए जिंदगी में क्या उम्मीद बाकी रह गयी है? बेवकूफ, तू सुनता क्यों नहीं? क्या तू हवा से बातें कर रहा है?"

इसके बाद मेरे मन में असंबद्ध विचार आने शुरू हो गये. हालत यहां तक पहुंच गयी कि मेरे विचार स्वयं मेरी ही समझ में आने बंद हो गये. मुझे अपनी उंगलियां बहुत बड़ी दिखायी देने लगीं और आंखें सहसा इतनी भारी हो गयीं कि उन्हें खोलना भी कठिन लगने लगा.

बड़ी मुश्किल में मैंने अपनी आंखें खोलीं और अपने सामने अपनी नर्स को खड़ा पाया. उसका भावहीन और निश्चेष्ट चेहरा देखकर मुझे एकबारगी हंसी आ गयी. मैं अपने सामने जिस मूर्तिमान मूर्खता को देख रहा था, वह समूची मानवता की निपट मूर्खता की प्रतीक थी.

नर्स ने अंगीठी उठायी और उसे लेकर बाहर चली गयी. अपने माथे से पसीना पोंछा और दीवार से सिर सटाकर आराम करने लगा. आराम करते-करते मुझे एक कविता की कुछ लाइनें याद आ गयीं:

"आओ, चलकर मदिरापान करें, यदि हम आज मदिरापान नहीं करेंगे, तो कब करेंगे?"

मगर ये लाइनें भी मेरे आंतरिक विवाद को कम नहीं कर सकीं और मुझे यकीन होने लगा कि किसी नये संकट का तूफान आने ही वाला है. जब कोई ऐसा तूफान मेरे जीवन में आने को होता है तो मेरा सारा शरीर तनकर, उसका सामना करने के लिए तैयार हो जाता है. ऐसे अवसरों पर वास्तविक जगत लोप हो जाता है और मैं स्वयं को एक ऐसी चमकीली दुनिया में पाता हूं, जिसका वास्तविक जगत से कोई संबंध नहीं होता.

तूफान के आने का पहला एहसास मुझे तब हुआ, जब मैंने पाया कि मेरे परिवेश की सब वस्तुएं मुझे डरा रही हैं और एक अनजाना भय मेरे अंग-अंग में समाकर मुझे कुंद करता जा रहा है.

खिड़की से बाहर, सड़क पर आते-जाते लोग मुझे भयंकर राक्षस और दैत्य जैसे लग रहे थे और मुझे लग रहा था कि वे मुझे बड़ी बेरहमी के साथ मारने के लिए मेरी ओर भागे चले आ रहे हैं. □

अनुवाद : हरिमोहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul K

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ-चरित्र और कहानी

चंचल

चरित्र किस तरह से अ-चरित्र हो जाता है या नायक अपने-आप में प्रतिनायक? या फिर यह कि होता दरअसल, कुछ भी नहीं और चरित्र अपने-आप में चरित्र ही रहता है? वह हमेशा 'नायक' ही होता है, 'प्रतिनायक' नहीं?— कहानी और चरित्र के रिश्ते को जीवन एवं घटनाक्रम के तहत स्पष्ट करता एक विचारशील आलेख. . .

अफलातून पुराने बी.ए. यह उनका पूरा नाम है. लेकिन गोहराते समय लोग इसे खंडित करके ही देखते हैं. कुछ लोग 'अफलातून' कहते हैं. कुछ लोग मात्र 'पुराने' और बाकी लोग 'बीए' बोलने के साथ-साथ 'बाबू' भी जोड़ देते हैं. गरज यह कि बाबू के पीछे कोई आदर भाव न होकर मात्र संगीत की लयता ही रहती है. गांव-गिराव की समस्याओं का निदान, उसके कारण, कारक, तत्व व उपसंहार के पीछे अफलातून की अलग ही व्याख्या है. इस व्याख्या में देकार्त, सार्त्र, गांधी, लोहिया, न्यूटन, ओबा और अंगार डिबिया का नाम किसी न कसी बहाने आ ही जाता है. यह बात दीगर है कि इन नामों में आखिर के दो नाम 'ओबा' और 'अंगार' डिबिया को छोड़कर अफलातून किसी से प्रत्यक्ष वार्ता नहीं कर पाये हैं. लेकिन उनकी भाषा और दर्शन, अफलातून की अपनी व्याख्या के साथ मौजूद रहते हैं.

कहानी और चरित्र पर अफलातून का 'छिद्रानुवेष' आपको कहां संतुष्ट कर पायेंगे, मैं नहीं जानता. लेकिन उन्होंने इस विषय पर जो और जिस भी तरह से बयान किया है उसे जस का तस रखने की कोशिश कर रहा हूं. कोशिश इसलए कि इस पूरी व्याख्यामें जो अपचनीय गालियां आयी हैं उन्हें लिखकर बताना अमर्यादित हो जायेगा. क्योंकि बोलते समय वे जिस लय, मुद्रा और भाव के साथ जिन शब्दों की खुली घोषणा करते हैं उन्हें लिखकर व्यक्त करना मुश्किल काम है. फिर भी कुछ शब्द जो अपने अर्थ से ज्यादा भाव रखते हैं और बात को वजनी बनाते हैं उन्हें रखने के लिए मुआफी चाहता हूं.

'मासा' पर मौसम का असर होता है. (अफलातून के लिए 'स' और 'श' की मर्यादा बेमानी है, क्योंकि इसका ताल्लुक लाइबनित्स की उस सार्वभौम परिभाषा से है जिसके चलते जहां वह कहता है–'जो, जो कुछ है उसे उसी तरह रहने देना या बने रहना चरित्र की पहचान है,' और इस बिनाह पर मैं यानी अफलातून यह नहीं चाहता कि मात्र एक अक्षर के चलते उसके क्षेत्र पूर्वी उत्तरप्रदेश का चरित्र भ्रष्ट हो जाये.) हां, तो मैं कह रहा था, मौसम का मासा पर गहरा असर होता है, जो बात हम आज यहां यानी सावन की फुहार, छान की मड़ई, जोन्हरी की महकती सोंधी बाल के झुरझुरे स्वाद के साथ बोल रहे हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे कड़कती सरदी में नहीं बोल सकते. कमो-बेश यही हाल 'चरित्र' के साथ होता है.

लाइबनित्स एक दारसनिक है. कहता है, 'चरित्र एक तरीका है.' तरीका यानी जीवन जीने का वह माकूल तरीका जिसे नैतिक मूल्यों के साथ वह धारण करता है. कैसे धारण करता है? सो मैं बताता हूं.—मान लो यह अपना ओबा है. ओबा का मतलब समझते हैं? आंधी-पानी से भरा एक अंधड़, जो बिना पूर्व सूचना के अचानक शुरू हो जाता है. यह भी स्साला ठीक उसी तरह है. तो इसे यूं समझिए कि जब यह पैदा हुआ था, इसका नाम नहीं था. एक लोथड़ा था. यकीन मानिए, पैदा होने के बाद यह स्साला निश्चित रूप से रोया होगा. और आज तक रोता आ रहा है. हां, इसके चरित्र निर्माण की क्रिया शुरू हुई और नाम रख दिया गया बलिभद्र नारायण दूबे. बड़ा होता गया और अपने बाप को झूठा साबित करने के लिए वह अपने ही चरित्र को बदलने लगा. लोग धीरे-धीरे इसके बाप का दिया हुआ नाम भूलने लगे और कर्म के आधार पर इसे 'ओबा' कहने लगे. यथा नामे तथा गुणे के आधार पर ही यह ओबा है. ओबा यानी प्रतीक, यानी चरित्र . . . और आपको मालूम है अब यह परंपरा है. ओबा होना अब नाम भर नहीं है, चरित्र है. देकार्त कहता है 'वह स्वयं का कारण है.' आप इसे नहीं समझोगे. मैं बताता हूं, इसी को स्वयं-भू कहते हैं यानी जो अपने कारक तत्त्वों के चलते स्वयं का निर्माण करता है उसे पैदा करनेवाला कोई नहीं रहता. . . यानी भगवान-नुमा कोई शब्द. इसे और खोलिए तो वहां पहुंचेंगे जहां स्वयं मसक्कत करके पैदा हो जाने का तर्क होता है, ओबा यही है—सेकंड गाड.

तो यह चरित्र निर्माण हुआ. इसे आप, नायक, प्रतिनायक या अ-चरित्र नहीं कह सकते. और कहानी के संदर्भ में तो और भी नहीं. क्योंकि यह शब्द 'चरित्र' अपने-आप में पूर्ण है. इसके विश्लेषण के लिए जो नाम लगेंगे वे घूम-टहलकर नायक ही रहेंगे. कहानी का स्वरूप भले ही बदल जाये. उदारहरण के लिए इस ओबा को ही लीजिए. यह नायक है, प्रतिनायक है. . और इसी तरह बगैर किसी कुकर्म के मर जाये तो अ-चरित्र है. अब मैं आपको उदाहरण के साथ समझाता हूं. 1942 की घटना है. तब इसकी उम्र गदह-पचीसी रही होगी. मुंह और. . . में काली रेख आने लगी थी. हुआ जे कि एक कलट्टर आया. सुराजियों की धर-पकड़ की बात थी. कलई कहार फरार था. पुलिस उसे खोज रही थी. वह जो बरगद का पेड़ है उसी के नीचे ऊंची खटिया पर बैठा कलट्टर सबकी मां-बहन की ऐसी-तैसी कर रहा था. इसी बीच कहीं से यह 'ओबा' आ गया. उन दिनों तक इसका नाम बलिभद्र ही था. आते ही आते बरस पड़ा. अब आप पूछेंगे क्यों? सो सुनिए, हुआ यूं कि इसका बाप एक नम्बर का पैदाइसी लल्लू था. कलट्टर की किसी बात का जवाब उल्टा-सीधा दे दिया था और एवज में उसने इसके बाप को मुरगा बनाकर छोड़ दिया था. सो साहब, अपने बाप को मुरगा बना देख, उसकी गरमी उभर गयी और लगा कलट्टर को अनाप-सनाप बकने. . . इतना ही नहीं पलटकर कलट्टर को जो गरदनिया दिया तो सारे पुलिसवालों की हालत हाथ में आ गयी. यह बात दीगर है कि बाद में ओबा की जो हालत हुई सो हुई. लेकिन उस समय तो हीरो ही बना. यह है ओबा का एक चरित्र जिसे आप नायक कह सकते हैं. गांधी लोहिया, सार्त्र, कामू इसी नायक के लिए पूरी आबादी को उंगली करते-करते मर गये. अब ओबा के इसी हिस्से को कहानी बनाइए. थोड़ा भूमिका, थोड़ा शब्द जाल, थोड़ा घपला वगैरह-वगैरह करते जाइए और आखिर में कहिए कि एक दिन जब लाल किले पर आजादी का झंडा फहर रहा था उसी समय फतेहपुर की जेल में एक आदमी फांसी के तख्ते पर लटक रहा था. तो ओबा नायक हो जायेगा. लेकिन प्यारे, यह कहां होता है!

चरित्र, चरित्र होता है, कहानी, कहानी. तो कहानी और चरित्र का पूरा खाका खुल गया.

अब अगर मैं ओबा के इसी हिस्से को सुनाऊं तो आप उसे नायक मान लेंगे कि नहीं मानेंगे? अब आइए, दूसरे हिस्से पर. वहां भी यह नायक ही है, लेकिन चरित्र बदला हुआ है. अब पूछेंगे कैसे. . . सो आंखों देखा हाल बता रहा हूं.

अंगार डिबिया को जानते हैं न! वही तिउराइन. शिरोमणिबो. उससे इसका इश्क चलता था. होत अधियार स्साला भागता था पूरब पट्टीवाले पोखरे तक. जम के इश्क चला. . . और साहब ऐसा चला कि बस पूछिए मत. यह आदमी जो कभी कलट्टर को मारकर मुंहभर माटी खिला दिया था, एक इश्क के चलते चोरी करते पकड़ा गया.

सुमिरन अहिर का कटहर तोड़ने गया था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul K

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कटहर तोड़ा तो ठीक-ठाक. लेकिन स्साला कटहर जो गिरा तो धम्म की आवाज भी आयी. यह भी ठीक रहा, तार्किक रहा. लेकिन इसी बीच सुमिरन की नींद खुल गयी. यह भी ठीक ही रहा. लेकिन गलती दूसरी हो गयी. हुआ क्या कि कटहर तो न्यूटन के हिसाब से टूटकर नीचे गिर गया, लेकिन ओबा ऊपर के ऊपर ही रह गये. अब साहब, यहां देखिए दार्शनिक पक्ष कि कहानी के मूल में इसे केंद्र बिंदु माना जाये तो मजनू के बाद ओबा का नाम आयेगा और वे नायक मान लिये जायेंगे कि अपनी 'मासूक' के लिए चोरी करते हुए पकड़े गये. और नजीर बन जायेंगे यानी नायक. लेकिन जीते-जी ऐसा कहां होता है. यह समाज तो बड़ा क्रूर है! . . .लोग इस्क के चस्के को छोड़कर चोरी पर और वह भी कटहर पर केंद्रित हो गये. नतीजा यह हुआ कि अब कोई ओबा के सामने 'कटहर' कहकर तो देख ले. कटहर का नाम सुनते ही ओबा गरम हो जाते हैं और कहनेवाले की मां-बहन के साथ खुले व्यभिचार की घोषणा करते हुए धोती उठाकर नाचने लगते हैं और कहने को कटहर खिलाने लगते हैं. इस चरित्र को आप क्या कहेंगे? मैं बताता हूं, इसे कहते हैं 'काणासुई'. यह अंग्रेजी का शब्द है. इसे देकार्त की भाषा में कहते हैं—चेतना के बिंदु पर आदमी का स्वाभाविक विद्रोह.

यहां अंगार डिबिया कारक हुई, उसका इस्क कारक तत्त्व, चोरी कारण और ओबा का चरित्र बदल गया. लेकिन अब इसे दूसरे सिरे से देखिए. इसे तुलसीदासजी कहते हैं—'समरथ को नहीं दोष गोसाई.' गांधी चोरी करते थे. बाप के जेब से पैसा निकालकर, बीड़ी पीते थे, लेकिन कालांतर में यह बात गौण हो गयी और बड़ा हो गया उनका दरसन. इस बात को उन्होंने स्वीकार भी कर लिया. आत्मकथा में लिखकर उसे आत्मस्वीकृति दे दी. वह बात साफ हो गयी. लेकिन ओबा ऐसा नहीं कर पाये, सो चोर होकर रह गये.

मानव दरसन में आत्म-स्वीकृति बहुत बड़ी चीज है. इसे आत्मबोध कहते हैं. आत्मशोध चरित्र निर्माण की एक विधा है. 'परादो' का नाटक पढ़िए—'एक नाटककार की खोज में छह चरित्र'. इसमें एक बाप अपनी बेटी के साथ संभोग की तैयारी करता है लेकिन उसे यह नहीं मालूम रहता कि यह बेटी उसकी अपनी बेटी है. ठीक एन वक्त पर मां चीख पड़ती है और बाप के सामने खड़ी हो जाती है. यहां बाप का चरित्र किस खाने में रखेंगे? प्रतिनायक, अ-चरित्र या नायक? जाहिर है कि वह नायक ही रहेगा. कहानी यहीं खत्म हो जाती तो बाप अ-चरित्र होकर रह जाता और घटना कहानी बनने के पूर्व ही अ-कहानी होकर रह जाती. लेकिन चूंकि इस घटना को कहानी होना होता है और बाप को नायक, सो वह इस पूरी घटना को नाटक का रूप देने के लिए नाटक कंपनी की खोज करता है. सो ठीक इसी तरह ओबा की कहानी को समझिए. चोरी करते समय पकड़े जाने पर खुल्लम-खुल्ला अंगार डिबिया से चल रही मुहब्बत का हवाला देते तो यहां चोरी उपसंहार न होकर कारक तत्व में आ जाती और पूरी घटना एक मोहब्बती अंदाज की लबरेज कहानी बनती, जिसका अंत पूरब पट्टी के उस पोखरे पर होता, जहां ओबा और अंगार डिबिया सिरोमणि यानी अंगार डिबिया के पतिदेव के हाथों मारे जाते. इस्क की यह कहानी वहां कहां चली जाती? लेकिन ओबा को ओबा होना था. क्योंकि वे न तो बाप की भूमिका तक पहुंच पाये न ही कोई 'परादो' पैदा हुआ जो इसे कहानी की सकल दे देता. मेरा खयाल आप कहानी और अ-चरित्र को समझ गये होंगे.

. . .लाइए, बीड़ी है आपके पास?

बीड़ी में अब वो पुराने जमाने की मस्ती नहीं है. उन दिनों एक बीड़ी पी लीजिए, अख्खा दिन मन घूमता रहे. अब तो स्साले बीड़ी के बहाने घोड़े की लीद पीनी पड़ती है. एक बीड़ी के लिए एक समूची माचिस जलाते रहिए. एक फूंक पीजिए, दीया गुल. फिर जलाइए और माचिस. बड़े मियां तो बड़े मियां छोटे मियां सुभान अल्ला. बीस बार घिसिए तब कहीं जाकर एक बार जलेगी. वह भी फुस्स. . . . छोड़िए, हम लोग भी क्या घटिया विषय लेकर बैठ गये. आदमी से पदार्थ पर आ गये. . .वैसे, कभी-कभी आदमी भी पदार्थ हो जाता है. इसे लइबनित्स की परिभाषा में खोज सकते हैं. अब उदाहण देता हूं. रजिंदरा को पूरा गांव 'नेऊर' कहता है. क्यों? क्योंकि उसकी गरदन और चाल नेऊर से मिलती जुलती है. सो पूरे गांव में वह नेऊर है. ठीक उसी तरह जैसे तिउराइन 'अंगार डिबिया' बोली जाती है. अंगार डिबिया का मतलब जानते हैं. माचिस. बस, थोड़ा सा घिसा और चिंगारी बाहर. बस, उसे छेड़ने भर की देर होती है. पचासा पूरी करने जा रही है लेकिन 'ओबा बुला रहे हैं' कहकर जब बच्चे छेड़ते हैं तो पूरे गांव को ऊपर उठा लेती है और पिछली तीन पीढ़ी समेत अगली सात पीढ़ी की ऐसी-तैसी करके रख देती है.

आज तक उसने माचिस का नाम नहीं लिया. जानते हैं क्यों? क्योंकि उसके पति का जन्म उस दिन हुआ था जिस दिन गांव में पहली बार माचिस दिखायी पड़ी थी. और इसी वजह से जब तक उसके ससुर जिंदा रहे अपने बेटे को 'माचिस' ही कहते रहे. तो जब तिउराइन बियाह के आयी तो पहली मुलाकात में उसने पति का घरेलू नाम 'माचिस' ही सुना. सो हिंदू औरत 'माचिस' का विकल्प 'अंगार डिबिया' ही बुलाती रही. यह है अपना वह पुराना संस्कार जहां एक औरत पराये मरद ओबा के साथ पूरब पट्टी के पोखरे पर तो जा सकती है लेकिन पति का नाम नहीं ले सकती. बहरहाल, मैं बात कर रहा था कि चरित्र का चरित्र बदलते ही कहानी कहीं से कहीं तक पहुंच जाती है. अंगार डिबिया की कहानी मुक्तसर से सुनिए और कहिए कि यह नायिका है कि प्रतिनायिका या अनायिका.

यहां सार्त्र की 'निराशा' पर आइए.

तिउराइन जिस दिन बिआह कर आयी उसी दिन उसे मालूम हो गया था, उसका मरद 'माचिस' उर्फ रामशिरोमणि नामर्दी का मरीज है. लेकिन वह चुपचाप इस गम को पीती रही. और ससुर की इस आखिरी इच्छा का उपाय भी खोजती रही कि उसके कुल का नाम चलता रहे, पुरखों का पिंडा पारनेवाला तो हो. . . इस बात को उसने छाती पर बराबर बनाये रखा. जबान नहीं खोली. ससुर को मरते दम तक यह नहीं मालूम होने दिया कि उसका 'माचिस' नामर्द है. सारे ताने वह खुद सहती रही कि वह बांझ है, कुल बोरन है! आखिर एक दिन ससुर के मरने के पहले कोख आबाद हो गयी. माचिस को बेटवा हुआ. महीनों पूरब पट्टी का पोखरा अकेले ओबा की तड़प से गूंजता रहा, लेकिन अब वह न तो बांझ है न कुल बौरन. ससुर मरे तो उनकी इच्छा पूरी हो चुकी थी. लेकिन माचिस अंदर ही अंदर घुलता रहा और उसका फासफोरस अंदर ही भीगता रहा और एक दिन चारपाई पर जो लेटा तो ता-उम्र लेटा ही रह गया. रीढ़ के किसी जोड़ की खराबी निकल आयी, लेकिन उसकी जबान चलती रही. नतीजतन जब तिउराइन को बरदास्त नहीं हुआ तो वह पहली दफा अपने मर्द को सार्वजनिक रूप से नामर्द घोषित करते हुए बेशर्म हो गयी. इस बेशर्मी के चरित्र को लोगों ने 'अंगार डिबिया' कहना शुरू कर दिया. इसे आप क्या कहेंगे?

यह है निराशा के दौर में उठाया गया कदम. अब यह जो सहानुभूति है आपकी अंगार डिबिया के बारे में, यही चरित्र को नायक, प्रतिनायक वगैरह-वगैरह बनाती है. यह निर्भर करता है देश, काल और परिस्थिति पर. कहानी और चरित्र के इस रिश्ते में एक बात साफ है कि कहानी या तो चरित्र की होती है यानी नायक की या अ-चरित्र की. बीच में कोई डगर नहीं है प्यारे! . . . घपला मत करो. . . . क्योंकि यह कोई जरूरी नहीं कि आप हमसे सहमत ही हों. □

● 314 बी, पाकेट-II, मयूर विहार, दिल्ली-91

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेतछाया

हरीश पाठक

महानगर की त्रासद जिंदगी में स्वार्थ, प्रतिस्पर्द्धा, ईर्ष्या और महत्वाकांक्षाओं के पास में फंसे 'नागरिक' को गुमान भी नहीं होता कि अंधेरे से अंधेरे कोने में किया उसका कृत्य किसी ने देखा भी है... कैसे होता है उस परछाईं का जन्म जो सहसा व्यक्ति का लगातार पीछा करने लगती है? ... उन जानी-पहचानी स्थितियों को उजागर करती कहानी, जिनसे प्रायः व्यक्ति अनभिज्ञ रह जाता है...

अस्थानाजी, आप कल नहीं आये थे और मैं कई बार आपकी टेबल के नजदीक आया था, पर आप थे ही नहीं. दरअसल मैं कल हैरान था कि आप दफ्तर में है नहीं और दफ्तर की हर सीट पर आपकी चर्चा है. यहां तक कि अंधेरे के उतरते-उतरते जब सारा दफ्तर खामोश था और मैं सीढ़ियां उतर रहा था तब मैंने पाया कि नीचे लिफ्ट के पासवाली लंबी बेंच पर भी आपकी चर्चा है. सिर्फ आवाजें वहां मैं सुन रहा था, मैंने चेहरे नहीं देखे थे.

ये चेहरे मैंने कई वर्षों से देखे भी हैं और नहीं भी. पर ये आवाजें जब-जब उठती हैं न जाने क्यों सीधे मुझ पर हमला करती हैं. आपने कभी अनुभव किया होगा कि रास्ते चलते यदि अचानक हवा में विस्फोट हो जाये तो बढ़ते कदम सहसा थम जाते हैं या फिर आप अपनी मस्ती में सड़क के बायीं ओर चले जा रहे हों और कोई ऐन कानों के पास आकर जोर से चीख दे, यह चीख कान से होती हुई तलबों तक जाती है. आपने महसूसा है कभी?

बिलकुल ऐसा ही मेरे साथ होता है. जब-जब मैं आसपास होता हूं आपके बारे में सुनता हूं, धक्क से रह जाता हूं. अवाक, भौंचक्का. पर एक हैं आप जो इस नकली चेहरे को कसते हुए हर रोज, हर पल, हर क्षण, हर साल आ जाते हैं. मैं हैरत में हूं कि आप आखिर किस रेशे से बुने हैं जो इतने घोर अपमानों, सार्वजनिक तिरस्कारों और हर स्तर की बदनामी सहने के बाद इस खूबसूरत भ्रम में जी रहे हैं कि सब कुछ कोई नहीं जानता. पर यह नकली खाल तुम्हें बहुत भीतर तक लहूलुहान किए है. तुम जख्मी हो और मैं यहां तक जानता हूं कि तुम्हारे शरीर की नस-नस दोगली है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं, मैं हूं. यदि तुम यह जानना चाहते हो कि मैं इस तरह क्यों तुम पर हमला बोल रहा हूं तो यह तुम्हारा वह वाहियात और घटिया विचार है और आरोप है जिसे तुम पिछले बत्तीस सालों से सोच रहे हो. मेरा तुम्हारा पीछा ठीक इतने ही सालों से है और मैं तुम्हारी हर उस खाल से वाकिफ हूं जो तुम अपनी सुविधा से ओढ़ लेते हो. फिर भी तुम मान लो कि मैं तिवारी हूं सिर्फ तिवारी. आगे-पीछे मत सोचो.

अस्थाना ने माना था कि एक परछाईं हर रात उसका पीछा कर रही है और यह रहस्य वह उस रात जान पाया था जब रिंग रोड से उतरकर वह घर जानेवाली लाल मिट्टी से भरी गली में उतरा था. गली में उतरते ही उसने पाया कि एक बारीक तार उसके पैरों में फंस गया है जिसने अचानक उसकी चाल को हलका कर दिया है. वह बार-बार मुड़कर देखता था और वह गली उस रात उसे पूरा पर्वत लगी थी जिसे उसने हांफते हुए पार किया था.

यह डर जो गली में उतरते ही उस पर हावी हो गया था कमरे में आकर भी उससे नहीं छूट पाया था. वह दनदनाता दरवाजे पर आया था और धड़ाम से उसने दरवाजे को बंद कर दिया था. लोहे की बारीक जालियों से बुना वह चौकोर दरवाजा इतनी जोर से गरजा था कि गली में देर तक उसकी आवाज गश्त लगाती रही थी. यह एक जनवरी, 1981 के रात 11 बजकर 10 मिनट पर हुआ हादसा था.

कमरे का लाल बल्ब जल रहा था पर उसके भीतर हजार-हजार वाट के बल्बों का डर था और यह बनैला डर इतना भारी था कि उसके शरीर के रोएं-रोएं थर्रा रहे थे.

अस्थाना ने कपड़े नहीं उतारे थे और वह चप्पलों सहित पलंग पर ढेर था. उसका चश्मा तकिए के नीचे आ गया था और दोनों हाथ एक दूसरे से गुथे हुए उसके पेट पर थे.

जिस रात अस्थाना की समझ में यह आया था कि कोई लगातार उसका पीछा कर रहा है उसी रात दो घटनाएं एक साथ हुई थीं. उस रात उसे अचानक न जाने क्यों कमरे में अन्नी खड़ा हुआ दिखा था जो वगैर कुछ बोले अपने जबड़े को कसे हुए उसकी तरफ हिकारत से देख रहा था. अन्नी के हाथों में न जाने क्या था जो अस्थाना साफ नहीं देख पाया पर इतना पैना और नुकीला हथियार शायद उसने पहली बार ही देखा था. नुकीलापन उसकी खाल को भेदकर मांस में उतर रहा था. अन्नी के कमरे से जाने के बाद एक आतंक देर रात तक कमरे में टहलता रहा था और फिर जब चटाक की आवाज हुई तो वह जागा था.

शीशा कमरे के बीचोंबीच टूटा पड़ा था.

वह फिर सोना चाहता था कि उसने पाया कि अब उसके सिरहाने कोई बैठा बहुत धीरे-धीरे उसके बालों को सहला रहा है. उसके हाथ अस्थाना के हाथों से लिपटे हैं. लंबे काले बाल अस्थाना के होंठों पर हैं और चेहरे पर सिर्फ एक जोड़ा चमकदार आंखें. बाकी चेहरा गायब था.

अस्थाना उठकर बैठ गया था. यह गंध तो नीलू की गंध थी जिसे वह बहुत, बहुत पीछे छोड़ आया था. इतने सालों बाद दिल्ली कैसे आ पहुंची? गंध का तेज झोंका कमरे में देर तक क्यों रुका रहा? गंध बेड़ियों को कैसे झटक आयी. यह जवान होती रात फिर पूरी की पूरी अस्थाना ने आंखों में ही काटी थी.

सुबह उग आयी थी पर अस्थाना की आंखों का भारीपन नहीं गया था. जैसे पिछली यादों का लंबा बोझ किन्हीं अनदेखे हाथों ने उसके सर पर जड़ दिया हो. यह नामालूम-सा दर्द अरसे तक अस्थाना झेलता रहा. जो हर रोज उसके साथ उठता था, हंसता था, बाजार जाता था, दफ्तर जाता था यानी उसकी परछाईं बन गया था और इस परछाईं से अस्थाना डर रहा था.

पीछे दौड़ते-दौड़ते अपमानों और दोहरी जिंदगी के तमाम खाके थे जिनमें अस्थाना टुकड़ों-टुकड़ों में कैद था. झूठ के रंग-बिरंगे कपड़े और प्रपंचों के बदरंग चेहरे जो उसने खुद को बचाने में हर बार लगाये थे एक निर्लज्ज सच्चाई बनकर उसकी आत्मा से युद्ध कर रहे थे और इस युद्ध में गले-गले डूबा था अस्थाना.

मेरा विचार है तुम मेरा पीछा करना छोड़ दो. छोड़ दो, मेरे भाई, मेरे बहुत अच्छे दोस्त, मेरे सखा, मेरे भावुक मनवाले साथी.

क्यों?

क्यों तुम्हारा पीछा छोड़ूं? फिर कौन तुम्हें सरेआम बेइज्जत करेगा? कौन तुम्हारे कपड़े उतारेगा? तुम इस तरह अब मुझसे मुक्ति नहीं पा सकते. तुम्हारे पाखंडों का परदा मुझे उठाने दो ताकि सब देख सकें तुम्हारे टूटते बिखरते तिलिस्म को.

अस्थाना धीरे-धीरे कमजोर पड़ गया. बुझती हुई आग की तरह उसकी खुरदरी हथेलियां उसकी आंखों पर आ गयी थीं. परछाईं जीत रही थी, अस्थाना बाजी हार रहा था.

यह घर अन्नी का ही नहीं है मेरी मां, इस घर में मेरा भी कहीं बिस्तर है. मेरी मां, तुम हर रात मेरी जगह क्यों बदल देती हो? मुझे एक बिस्तर चाहिए. मुझे घर में एक ठिकाना चाहिए.

मां का चेहरा सख्त हो उठा था. वे बूढ़ी, थकी आंखें जिनमें ढेर-सा लाड़ लरजता था; आज उनमें नफरत और घृणा की लौ थी. उनके रूखे बालों के बीच की सफेद लट और गहरे कत्थई रंग की छापेदार धोती देर तक उसकी आंखों में कौंधती रही.

"तुमने अपने हक खुद खो दिये हैं, मैं भी जानती हूं, मुझे भी मालूम है कि इस घर में तुम्हारा एक स्थायी बिस्तर होना चाहिए. पर वह...."

मां ने आवाज खुद-ब-खुद बीच में तोड़ दी थी. वह नहीं समझ पाया कि मां को किसने आवाज तोड़ने पर विवश किया था.

फिर हर दिन मां का चेहरा उस रात की तरह सख्त होता गया जैसे हर पल अस्थाना के चेहरे को तमाम नकाबों ने ढक लिया. इन नकाबों ने अस्थाना के खास चेहरे को भुला दिया था. सच तो यह था कि वह खुद अपने आपको भूल गया था.

अन्नी एक कमरे से दूसरे कमरे में अपना असर रखने लगा था. सात साल का फासला था उसमें और अन्नी में पर घर की हर ईंट का हिसाब अन्नी की आंखों में दर्ज था और अस्थाना के हर झूठ का हिसाब नीलू के पास.

ये चढ़ती उमर के वे दिन थे जिन्हें अस्थाना फुटकर तौर पर खर्च कर रहा था. उसने अपने चारों ओर एक ऐसा मायावी संसार रच लिया था जिसमें वह खुद भटक रहा था रास्ते को जानने के बाद. यह संसार उसे एक बदरंग दुनिया में फेंक रहा था. वह हर मुहल्ले में, गलियों में झूठे और बेवजह के भरम पाल रहा था. कच्ची शराब के ठेकों से लेकर कालिज की सड़कों और शहर के चौराहों तक वह फजूल की बहसों और झूठे पाखंडों में डूबा था. जब-जब घर और जिंदगी की सचाई अपने पर फैलाती, वह चटाख से दूर हो लेता था. अपने ऊपर झूठी मुस्कानें चस्पां कर लेता.

घर से उसके रिश्ते टूटते जा रहे थे और उसने पाया था कि एक रात उसका बिस्तर दरवाजे के ठीक बाहर है. नशा उसकी आंखों में था और इतना तेज कि वह नहीं देख पाया था कि घर की चौखट पर जलती आंखें लिए अन्नी खड़ा है.

कहां थे तीन दिनों से? केवल रात सोने भर के रिश्ते रह गये हैं? घर घर होता है दादा, तुम्हें मैंने पागलों की तरह शहर की हर गली में छान मारा. दादा तुम कौन हो? कहां बसी है तुम्हारी आत्मा? कौन-सी है तुम्हारी दुनिया? किस आग से नष्ट होगा तुम्हारे झूठे सपनों का जाल? इन तीन दिनों में मेरी पूरी दुनिया दरकी है. और तुम, तुम— अन्नी लंबी चीख मारकर जार-जार रोने लगा और नशे में आकंठ डूबा अस्थाना तिरछी नजरों से उसे पी रहा था.

अम्मा की लाश पूरे एक दिन तुम्हारा इंतजार करती रही और तुम उस सबसे बेखबर दारू के अड्डों पर भटकते रहे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाश! लाश !

वह अनजाने इतनी जोर से चीखा था कि गली जाग गयी थी. जागती गली की खिड़कियां एक साथ खुल गयी थीं और कई जोड़ा आंखें उनमें से उभर आयी थीं.

हां, हां, अम्मां की लाश, तुम्हारी और मेरी मां की लाश, वे हाथ राख हो गये जिन्होंने तुम्हें और मुझे पाला था, वे सपने डूब मरे जो तुम पर टिके थे, वे—अन्नी की डूबती उतराती हिचकियां भर अस्थाना सुन सका था.

एक काला वजनी पत्थर जैसे अचानक उसके सर से टकराया था. वह कुछ बोल पाता कि अन्नी फिर सिसकियों के बीच बोल रहा था—

"रात सांकल के खटकने की आवाज आयी थी और अम्मा रोज की तरह 'आये' बोलती दरवाजे तक आयी थीं. इस सपने को लिये कि दरवाजे के बाहर तुम होगे. और जैसे ही उनके हाथ सांकल तक बढ़े कि वे चीख उठी थीं. लंबी और दर्दनाक चीख उनके गले से निकली थी और उनका पूरा बदन धीरे-धीरे ऐंठने लगा था. काला नाग अम्मा पर झपटा था और उसका जहर अम्मा के हाथ में उतर आया था. फिर घुटी-घुटी-सी आवाजें उनके गले से निकली थीं और अस्पताल जाते जाते अम्मा जा चुकी थीं."

अन्नी की बात कहां खत्म हुई और कब कैसे वह वहां से उठा उसे कुछ नहीं मालूम. उसके बाद अन्नी का क्या हुआ वह नहीं जानता. घर की दीवारें अगली बरसात में ढह गयी या वैसी ही हैं उसने सोचा तक नहीं. अम्मा का रंगीन धोतियों का जंग खाया बक्सा कहां गया, कहां गयी अम्मा की इकलौती तस्वीर? उसे दीमक चाट गयी या फिर बरसात के थपेड़ों ने उसे गली के बाहर फेंक दिया. अन्नी दर-ब-दर कहां-कहां भटका होगा. कितने दिनों तक उसने भूख सही होगी और जब उसकी आंतें बुरी तरह ऐंठी होंगी तो कैसे उसने बंद कमरे में खुद को जलाया होगा कि मरते वक्त उसने किसको याद किया होगा कि भीतर से उठती हुई चीख को अन्नी ने कैसे होंठों पर आकर रोका होगा कि धुआं गली में फैला होगा. कैसे टूटी होगी बंद कमरे की सांकल कि धुएं के उठते गुब्बार को देखकर महल्ला इकट्ठा हुआ होगा नीलू छत को फलांगते उस भुतहा घर में उतरी होगी कि अन्नी की जली हुई लाश को देखकर वह कब तक चीखी होगी, देर रात पुलिस आयी होगी. कई दिनों तक तहकीकात चली होगी कि फिर उसे लोगों ने धिक्कारा होगा और हर जुबान पर कैसे उसके काले कारनामे उजागर हुए होंगे.

अस्थाना को कुछ भी नहीं मालूम. वह कुछ नहीं जानना चाहता था. उसने अपने चेहरे के चारों ओर झूठी मुस्कानों का नकाब कस लिया था जिसके भीतर उसका धब्बों से भरा चेहरा ढंक रहा था. वह उन सब से अलग-थलग भाग रहा था. वह उन अपराधों की याद भर नहीं करना चाहता था जो उसके भीतर जहरीले नाग की तरह उग रहे थे और उसका पीछा भी नहीं छोड़ रहे थे.

सुना अस्थाना तुमने! अस्थाना जी, आपने सुना. मेरी बात गौर से सुनी. मुझे बताएं कि यह सब क्या है. ये दफ्तर, ये टेबलें, ये दरबान और ये खाली-खाली कुर्सियां क्यों आपके पीछे हैं. दरअसल अस्थाना जी, एक इंच भर जगह ऐसी नहीं है जहां आप बैठ सकें.

यह शहर दिल्ली है. झूठी मुसकानों और दोगले होते लोगों का शहर. बिलकुल तुम्हारी तरह भागे और पटरी से उतरे लोगों का शहर.

और तुम पिछला सब कुछ जलता हुआ छोड़ भागे थे. आज तुम एक चमकदार चादर पर सोते हो, तुमने जगह-जगह लोगों को भरमाकर अपने हित साधे हैं. तुम हर साल जगह बदलते रहे. तुमने कई नौकरियां बदलीं. तुमने कई-कई घर बदले.

कल रात जब तुम पटवर्धन को उसकी मां की मौत पर समझा रहे थे, उस वक्त याद है मैंने ही तुम्हारी गरदन पर नाखून मारे थे. मैं ही था जो तुम्हें दिसंबर '68 की वह रात याद दिलाना चाहता था जिस रात तुम्हारी बूढ़ी मां अपनी पत्थर होती आंखों से तुम्हारे बदबूदार शरीर के घर लौटने की बाट जोह रही थी. वह हर आवाज पर चौंकती थी. उस रात भी वह चौकन्नी थी, पर तुम नहीं आये थे और उसे काले नाग ने डसा था. उम्र भर तुम उसे डसते रहे.

भीतर तक झूठ में डूबे हो तुम. तुम्हारे नशीले संसार ने उस छोटे भाई को भी डुबो दिया जिसने अपने भविष्य के सपने तुम्हारी आंखों से देखे थे. तुमने ही उसे उस झुलसती आग में धकेला जिससे वह बचपन से ही दूर भागता रहा. तुमने कभी चाहा कि पीछे मुड़कर देखो. टूट रहे उस घर की याद ने तुम्हें क्यों नहीं सताया. क्यों तुम नागदा की उन गलियों से कतराते रहे.

तुम्हारे पैर दलदल में फंसे हैं अस्थाना. नीलू कांबले को तुमने ही मायावी दुनिया के सपने दिखाये थे. तुमने ही उसे दिल्ली की सड़कों और अपनी नौकरी का भ्रम दिया था. उसे रचे रचाये घर की तसवीर थमायी थी. हर रोज तुम उसे सपनों का खाली गुलदस्ता दे आते थे.

और नीलांबर कांबले की वह सांवले रंगवाली लड़की अपनी भक्क सफेद आंखों से पत्थरोंवाली गली के उस आखिरी मकान की जंग खायी खिड़की के पास बैठी कई-कई दिनों तक तुम्हारा इंतजार करती रही. उसकी सपनों से लदी-फदी आंखें पथरा गयीं. तुम्हें न आना था न तुम आये. अन्नी की मौत के बाद उसने तुम्हारी छाया तक से नफरत की. वह उस गली की ईंट-ईंट से जुदा हो गयी. न जाने कितने हाथों में उसे खेलना पड़ा, कहां-कहां वह टूटती रही. और तुम आज भी कई मुखौटों में हो अस्थाना.

अस्थाना हड़बड़ाकर जाग उठा था. उसके आसपास रेत ही रेत थी, जलती हुई रेत. उसकी आंखों में जलन और उसकी साफ-सुथरी चादर पर जगह-जगह दाग थे.

उस शाम तुम देर तक दफ्तर में बैठे रहे थे. तुम पिछले कई दिनों से अपनी नौकरी को लेकर परेशान हो और तुम्हें हर वक्त सरवटे से न जाने क्यों नफरत होती है.

शाम जब तुम्हारी ऊंट-सी गरदन जिसमें तीन जले के निशान हैं कांच के चेंबर में घुसी थी तब आशंकित नजरों से तुमने हाल में देखा था. तुम्हारे हाथ में मुड़ेतुड़े कागज और तुम्हारे चेहरे पर धूर्तता थी.

कांचघर से लौटते वक्त तुम गुनगुना रहे थे. वे मुड़े-तुड़े कागज तुम कांचघर में बैठे उस शख्स को दे आये थे जो सरवटे पर गिर सकता था.

मैं आज सरवटे के घर से लौटा हूं. सीमापुरी के एक कच्चे घर में एक जंग खाये स्टोव के आसपास सरवटे का पूरा परिवार बैठा था. पूरे 90 दिन हो गये हैं सरवटे को कंपनी से निकाले. हड्डियों से जकड़े शरीर पर बार-बार जनेऊ को रगड़ते सरवटे की आंखें भड़भड़ करते दरवाजे पर टिकी रहती हैं. वह पगला-सा गया है. उसकी जवान लड़कियां बसों की तलाश में दिल्ली की सड़कों पर हैं, उन्हें रोशनी लील रही है और तुम झूठ के संसार में उजली चादर पर लेटे हो.

अस्थाना जी, उठो. चादर से उठो और खुद अपने जाल को कुतर डालो. देखो कांटों का जंगल अब आपके बिस्तर के नीचे पनप आया है और यह जंगल तुम्हें धीरे-धीरे डस लेगा. तुम्हारे लिए यह जंगल अन्नी, नीलू और सरवटे की उन जवान लड़कियों ने बुना है जो तुम्हारे मुखौटों को नोंचने के लिए धीरे-धीरे बढ़ रहे हैं.

अस्थाना जी, आज मैं जा रहा हूं क्योंकि तुमने चाहा है कि मैं खत्म हो जाऊं. वह सच डूब जाये जो तुम्हारी आंखों में अपनी उंगलियां गड़ा रहा है, लेकिन तुम अब अपनी खाल से निकल लो. . . . □

● एफ/180, नौरोजी नगर, नयी दिल्ली-29

CC-0. In Public Domain. Gurukul K

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालचक्र

प्रफुल्ल राय

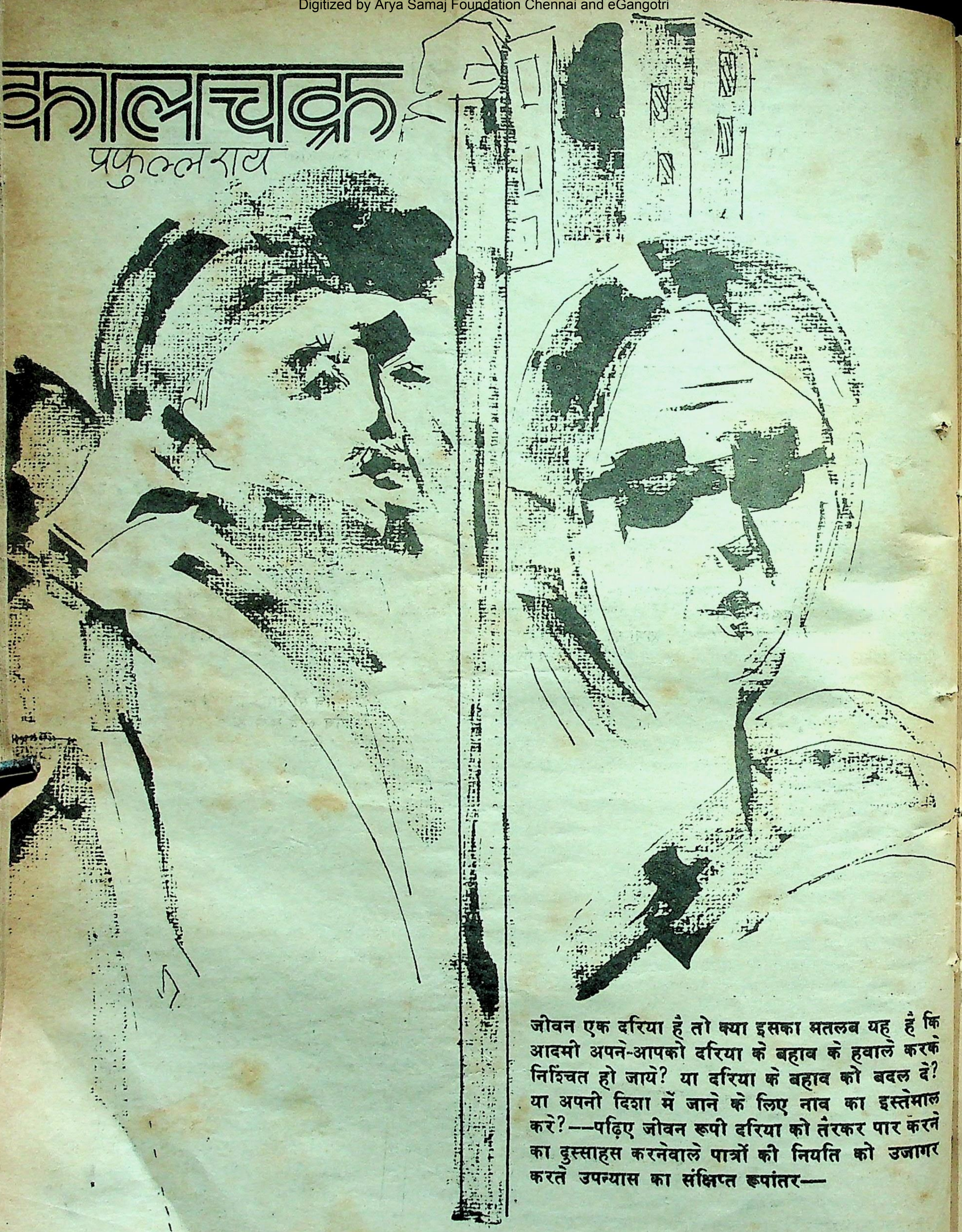

जीवन एक दरिया है तो क्या इसका मतलब यह है कि आदमी अपने-आपको दरिया के बहाव के हवाले करके निश्चित हो जाये? या दरिया के बहाव को बदल दे? या अपनी दिशा में जाने के लिए नाव का इस्तेमाल करे?——पढ़िए जीवन रूपी दरिया को तैरकर पार करने का दुस्साहस करनेवाले पात्रों की नियति को उजागर करते उपन्यास का संक्षिप्त रूपांतर——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पच्चीस-छब्बीस साल का नौजवान. दुबला-पतला, तीखे नाक-नक्श, पिचके गाल. रंग कभी साफ था, पर अब तांबे-सा गहरा हो गया है. सिगरेट के धुएं से जल-जलकर दोनों होंठ काले पड़ गये हैं. पहरावे में मैली पैंट, ऊनी जैकेट, कमर में बैल्ट और पैरों में पुरानी चप्पल. राजा अब भूल चुका है कि कभी उसका भारी भरकम नाम था—राजकुमार सान्याल.

ऊबड़-खाबड़ गली पार कर राजा सड़क पर आ गया. वह तो रमलादि के यहां समय पर ही पहुंच जाता पर ऐन वक्त पर भाभी बेहोश हो गयी. खीज भरा राजा कुछ और तेजी से चलने लगा.

थोड़ी ही देर में वह श्याम नगर आ पहुंचा था. शोभा कैफे के पास ही ननी, रतन और तुलसी ने उसे आवाज दी. किसी तरह उनसे पीछा छुड़ाना ही चाहता था राजा कि रतन ने उसे फंसा लिया, "जरा जल्दी लौटना. स्टेशन के उस तरफ माल आया है."

"बस, मैं गया और आया." राजा की आंखें चमक उठी थीं.

काफी दूर चलने के बाद राजा स्टेशन पहुंचा. स्टेशन के उस पर जाने के लिए लंबा ओवर-ब्रिज है. ब्रिज पर पहुंचकर राजा ने रतन के निर्देशानुसार बायीं ओर देखा. यार्ड में अल्यूमीनियम के तार, केबल और बहुत-सा सामान रखा था. शेड तले रेलवे पुलिस के दो जवान बंदूक सामने रखे बैठे थे. 'यानी माल कल ही आया है!' उसने सोचा और परली तरफ की सीढ़ियां उतर गया.

अब राजा रमलादि के घर के दरवाजे पर था. दरवाजा खुला, "यहां आने का अब होश आया? तुमसे अब काम नहीं चलेगा. किसी और को देखना होगा. .. "रमलादि गुस्से में बैठी थीं.

"अब ऐसा कभी नहीं होगा रमलादि. माफ कर दो."

रमलादि चाय बनाने गयी हैं और कमरे में राजा अकेला है. बचपन से ही वह रमलादि को देखता आया था. 'शोभा कैफे' में रमलादि को सीटी बजाकर जब उन लोगों ने छेड़ा था. . .तमी से. पकड़कर अपने साथ रिक्शा में घर लिवा ले गयी थीं रमलादि उसे, "मेरी उम्र बता सकते हो? पूरे तैंतीस साल की हूं मैं!"

खा-पीकर जब राजा चलने लगा तो रमलादि बरामदे तक आयी थीं, "छोकरियों को सीटी बजाने, बैठकबाजी करने और सिगरेट पीने से फुरसत मिले तो आना." लौटकर राजा ने अपने साथियों को बताया तो किसी को यकीन ही नहीं हुआ था कि रमलादि ने उसकी ऐसी आवभगत की **होगी.**

देखते-देखते दो वर्ष बीत गये. इस बीच राजा पर दुखों के पहाड़ टूटते रहे. पिता की मृत्यु. . . फिर भाई की आत्महत्या और फिर उनके परिवार की जिम्मेदारी और बकाया कर्ज. तब राजा को क्या पता था कि एक दिन ऐसा भी आ सकता है जब उसे रमलादि की उंगलियों के इशारों पर नाचना शुरू कर देना होगा.

किसी राहगीर को धमकाते हुए एक दिन जब राजा पकड़ा गया तो उसे हाजत में बंद कर दिया गया. बैठे-बैठे राजा भविष्य की चिंताओं में खोया था कि जमादार उसे बुलाने आ पहुंचा.

ऑफीसर-इन-चार्ज के कमरे में राजा पहुंचा तो वहां रमलादि बैठी नजर आयीं.

उसे छुड़ाकर रमलादि साथ ही ले गयी थीं. घर पहुंचकर दोनों रात-भर बातें करते रह गये. सुबह उठकर जब राजा घर जाने लगा तो रमलादि ने कहा, "तुम परसों आना. मैं तुम्हारे लिए कोई काम देखूंगी. नहीं तो इतने बड़े घर का खर्च कैसे चलाओगे."

दो दिन बाद राजा रमलादि के यहां पहुंचा तो वे उसे एक लिफाफा थमाते हुए बोलीं, "यह कलकत्ता पहुंचाना है. . . . "और राजा वह लिफाफा कलकत्ता पहुंचा आया. यही थी उसके नये जीवन की शुरुआत. इस छोटे से काम के लिए उसे पूरे पंद्रह रुपये मिले थे. धीरे-धीरे वह रमलादि का विश्वास पात्र बन गया. कभी वह रमलादि के कहने पर किसी युवती को कलकत्ता के किसी ठिकाने पर छोड़ आता. इस काम के उसे तीस रुपये मिलते थे.

राजा स्मृतियों में खोया हुआ था. तभी रमलादि चाय लेकर आ गयीं. आज उन्होंने उसे एक नया काम सौंपा—जया को लेकर अग्रवाल साहब के पास पहुंचाना था. जया घबरा रही थी, पर रमलादि ने उसे धीरज बंधाया और राजा का विश्वास भी दिलाया.

ट्रेन में सफर के दौरान जया और राजा में खासी बातचीत हुई. जया ने बताया कि किस तरह रमलादि ने उसके घर पहुंचकर उसे नौकरी दिलाने को कहा. जया बार-बार नौकरी को लेकर चिंतित हो रही थी. . . और राजा जानते हुए भी उसे बता नहीं पा रहा था कि रमलादि किस तरह मजबूर घरों की बेबस लड़कियों को फंसाकर कलकत्ता भेज देती हैं.

दरअसल, जया जैसी दुबली-पतली लड़की ने राजा को भीतर तक परेशान कर दिया था. कई बार उसने सोचा, 'साली जहन्नुम में जाये, मुझे क्या' पर वह ऐसा न कर सका.

उसी दिन दोनों कलकत्ता से वापस आ गये. राजा ने जया से कह दिया कि इंटरव्यू का समय तो निकल चुका था.

जया नबीपुर उतर गयी तो राजा सोच में पड़ गया. रमलादि को पता चलेगा तो वह खुश नहीं होंगी. राजा के काम में चौबीसों घंटे पुलिस का डर है. रमलादि की कृपा से वह आज तक बचता चला आया है. पता नहीं जया को अग्रवाल के पास न पहुंचाने का परिणाम क्या होगा.

घर पहुंचकर सोने से पहले उसे फादर डोनाल्ड की याद आयी. कल सुबह वह एक बार फादर डोनाल्ड से मिलेगा उसने सोचा और सो गया.

दूसरे दिन सुबह उठते ही वह फादर के पास गया. उनसे पांच रुपये उधार लिये ताकि घर में खाने का इंतजाम हो सके. और जया के लिए नौकरी का इंतजाम करने को कहा. फादर पूछते रह गये पर राजा ने जया के विषय में कुछ नहीं बताया. फादर ने उसे चार-पांच रोज बाद आने को कहा.

डेढ़ किलो चावल, पांच सौ ग्राम मसूर की दाल, आलू और प्याज खरीदने में ही पांच रुपये खत्म हो गये. सिर्फ तेरह पैसे बचे थे.

इससे तो एक पैकेट सिगरेट भी नहीं मिल सकती. दुनिया भर की चिंता लिए राजा घर पहुंचा तो काफी ना-नुकर के बाद टुनी ने उसे बताया, "बिल्टू काका आपसे मिलने आया था."

ननी का भाई आया था. चलो ठीक है. राजा पहले तो घबरा ही गया था कि कहीं रमलादि का आदमी न आ गया हो.

राजा सीधा ननी के घर पहुंचा.

बिल्टू की बगल से निकलकर वह अंदर चला गया. सामने ही ननी के पिता रासमोहन बैठे थे.

रासमोहन जब रोलिंग मिल में काम करते थे तो इस घर की हालत अच्छी थी. उनका हर काम नपा होता था. जिस दिन रासमोहन दुर्घटनाग्रस्त हुए, उस दिन से उनके परिवार पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा. दोनों हाथों के बदले क्षतिपूर्ति में केवल दो हजार रुपये मिले थे. ननी जरूर किताबें बंद करके राजा के दल में शामिल हो गया.

"प्लास्टर कब खुलेगा?" राजा ने पूछा.

"महीना भर तो लगेगा ही! देखना किसी दिन हम पुलिस की गोली से ही मरेंगे. अच्छा, तुम मेरा एक काम करोगे?" ननी संजीदा हो आया था.

"क्या?"

"कल रात जो माल चुराया था, जगदीश कलवार की दूकान में झाड़ आओ! शेयर मिलेगा!" रुपये-पैसे के मामले में राजा पर ही यकीन करता है ननी, "मैं जब तक अच्छा नहीं हो जाता, तुम्हें मदद करनी होगी. अच्छा होते ही सारा कर्जा उतार दूंगा. और सब साले तो मतलब के यार हैं."

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा 'न' नहीं कर सका. बोला, "अच्छा!"

ननी को छोड़कर राजा जाने लगा तो मीना ने उसका रास्ता रोक लिया. वह उसके साथ बतियाने के मूड में थी. लेकिन राजा किसी तरह पीछा छुड़ाकर भागा.

घर पहुंचते ही भाभी ने बताया, "अनाथ आया था. तुम्हें रमला ने बुलाया है!"

भाभी के चले जाने पर राजा देर तक सोचता रहा. नहीं, आज रमलादि के घर नहीं जायेगा. किसी हालत में नहीं जायेगा. उसने सोचा कि नबीपुर हो आये. . . . फादर डोनाल्ड क्या जया की नौकरी लगा सकेंगे. . . . रमलादि का नाम वह मुंह से नहीं निकालेगा.

चलते-चलते राजा बाजार के करीब पहुंच गया था. यहीं जगदीश कलवार की दूकान है.

माल देकर पचास रुपये जेब के हवाले किये और राजा नबीपुर जाने का निश्चय कर बढ़ लिया. 'शोभा कैफे' सामने आते ही तुलसी ने उसे पुकारा, "रज्जा, हाय मेरे राज्जा."

तत्क्षण राजा ने निर्णय किया कि इन लोगों से जया के विषय में कुछ नहीं कहेगा. तुलसी ने भी बताया कि रमलादि का बुलावा आया है, "तेरी रमलादि तेरी खोज में तीन बार आदमी भेज चुकी है."

राजा उठ खड़ा हुआ. वह न कुछ सुन रहा था न देख रहा था, और न कुछ समझ ही पा रहा था. भीड़ में मानो वह बहता चला जा रहा था.

राजा ओवर ब्रिज तक जा पहुंचा था. उस पार थोड़ी ही दूर पर रमलादि का घर है.

बगीचा पार कर बरामदे में कदम रखते ही उसे लगा कि आज यहां नहीं आना चाहिए था. "राजा!" तभी रमलादि की आवाज सुनाई पड़ी.

"क्या बात है?" रमलादि एकटक देख रही थीं, दबी आवाज में बोली, "अंदर आओ!"

कमरे में दोनों आमने-सामने बैठे.

"जानते हो अग्रवाल ने क्या खबर भेजी है?"

"क्या?" राजा घबरा गया.

"कल तुम जया को उसके पास लेकर नहीं गये."

"नहीं!" सिर झुकाकर दबी जबान में राजा ने रमलादि से कहा, "कलकत्ता पहुंचते ही देखा कि सियालदह के पास बहुत बड़ा जुलूस निकला है, ट्राम-बसें बंद पड़ी हैं. धरमतल्ला पहुंचते-पहुंचते शाम हो गयी. मेरी तबीयत भी ठीक नहीं थी. रात होते देख जया परेशान हो रही थी. . ."

"यह कारोबार है समझे! कोई मजाक नहीं. कल रात ही आकर मुझे बताना चाहिए था." रमलादि का चेहरा तना हुआ था.

राजा चुप ही रहा. क्षण भर चुप रहकर रमलादि बोली, "रुपया रखा है, ले जाओ!"

"पर, काम तो हुआ नहीं!" राजा बोला.

"जवाब नहीं, काम नहीं हुआ तो रुपये भी नहीं लोगे." आंखें गोल करती रमलादि बोली. भीतर से तीस रुपये लाकर उसकी जेब में डाल दिए, "रख ले, काम आयेंगे! दो-चार दिन के अंदर ही कलकत्ता जाना होगा."

अपनी उलझनों में खोया राजा स्टेशन पहुंचा. जाना कहां था, कहां चला गया! अब, कल सुबह उठते ही नबीपुर जायेगा.

टुनी की बीमारी की वजह से चार दिन निकल गये पर राजा घर से बाहर कदम ही न रख सका. टुनी का बुखार कुछ कम हुआ तो राजा शोभा कैफे पहुंचा. अनाथ को भी तभी वहां पहुंचना था. अनाथ ने बताया, "इसी वक्त रमलादि बुला रही हैं."

राजा अनिच्छा से रमलादि के पास चल दिया. पहुंचते ही रमलादि ने राजा को बताया कि जया को लेकर कलकत्ता जाना है, "चाहे जैसे भी हो, साढ़े तीन बजे तक जया को पहुंचा ही देना."

जया और राजा कलकत्ता के लिये चल दिये. . ट्रेन में परिचित सिपाही से बड़ी मुश्किल से जान छुड़ाई राजा ने. सियालदह पहुंचे तो सचमुच इतना बड़ा जुलूस था कि अग्रवाल तक पहुंचना असंभव ही था. क्या करते! वापस हो लिये.

शोभा कैफे पहुंचकर राजा ने हलक तर किया और रमलादि के घर जा पहुंचा.

"काम हुआ?" रमलादि ने पूछा.

"कौन-सा काम?" राजा ने अनजान बनने की कोशिश की.

"जया को पहुंचा आये?"

"नहीं."

. . . और जब राजा ने बताया कि कलकत्ता में जुलूस था, तो रमलादि ने उसे धमकाते हुए चेतावनी दी, "मैं पता करूंगी जुलूस था या नहीं. . . काम नहीं हुआ, रुपये नहीं मिलेंगे!"

दूसरे दिन शोभा कैफे में चांडाल-चौकड़ी की महफिल जमी. म्यूनिसपैलिटी के इलेक्ट्रिक पोस्ट से तांबे के तार चुराकर जगदीश के हाथों बेचकर राजा के हाथ पैंतीस रुपये लगे. जया की याद न आयी हो ऐसी बात नहीं, लेकिन पेट में दो-चार घूंट 'बंगला' पड़ते ही उसे कुछ ध्यान न रहा.

दूसरे दिन सुबह-सुबह फादर डोनाल्ड ने उसे जगाकर जया की याद दिलायी और बताया, "सूरजमल को अपने बच्चों के लिए ट्यूटर चाहिए. . . इंगलिश मीडियम में, . . . अच्छा पैसा देगा."

फादर के जाने के बाद राजा तैयार होकर घर से निकल पड़ा. नबीपुर पहुंचने में दस मिनट भी नहीं लगे.

राजा को अपने घर आया देख जया अवाक रह गयी, "आप?"

"हां, इधर एक काम से आया था. सोचा आपसे मिलता चलूं."

बातचीत के दौरान राजा ने जया को ट्यूशन के बारे में बताया. दूसरे दिन पहली ट्रेन से श्याम नगर पहुंचने को भी कहा, "आप एक नंबर प्लेटफार्म पर इंतजार करेंगी. मैं ढूंढ़ लूंगा."

चलते-चलते राजा जया के भाई-बहनों से भी मिला और बोला, "आप रमलादि से नहीं बतायेंगी कि मैं यहां आया था."

लौटते हुए राजा कुछ देर 'शोभा कैफे' रुका. तुलसी और गौर जमे थे. थोड़ी देर बाद रतन ने आकर बताया, "नबीपुर में तांबे का तार आया है. वायरिंग से पहले ही गायब कर देना होगा."

जया की चिंता ने राजा को पौ फटने से पहले ही जगा दिया. अंधेरे में ही वह तैयार हुआ और घर से निकल पड़ा. लपकता हुआ वह ओवर ब्रिज पार कर प्लेटफार्म पर पहुंचा.

जया एक बैंच पर सिमटी बैठी थी. "अरे वाह, आप तो सचमुच आ पहुंचीं?" राजा हंसा.

"देख लीजिए, आपके सामने हूं."

बातें करते हुए दोनों पैदल ही गिरजाघर तक आ पहुंचे. फादर बड़े स्नेह से जया से मिले. वे उसे सूरजमल से भी मिलवा लाये. बाद में, जाते समय उन्होंने जया और राजा से तीन दिन बाद क्रिसमस के दिन आने को कहा. जाते-जाते फिर एक बार फादर ने राजा को आवाज लगायी और कहा, "जया मुझे एक सरल और फूल जैसी पवित्र लड़की लगी. तुम्हारे प्रति उसके हृदय में अगाध विश्वास है. . . सूरजमल के घर जाते समय वह रास्ते भर तुम्हारे ही विषय में बातें कर रही थी. . . उसके विश्वास को चोट मत पहुंचाना राजा!"

राजा चुप ही रहा. उसका चेहरा करुण हो उठा, "ठीक है, आपको मुझ पर भरोसा नहीं. और मुझ पर भरोसा क्यों करेगा कोई भला! मैं ठहरा लंपट-बदमाश. . . आपकी बात रखने की कोशिश करूंगा!"

स्टेशन तक जया और राजा चुप रहे. अपने-अपने में खोये से. जया ट्रेन पर बैठ चुकी थी. बोली, "श्यामनगर आयी. . सुबह से अब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● व्यंग्यचित्र : प्रतिमा

रही... आपने अपना घर नहीं दिखाया."

राजा ठिठककर रह गया. उसके संभलने से पहले ही ट्रेन बढ़ चली.

तीसरे दिन राजा जया को मामी से मिलाने ले गया. एक साथ इतने दिन रहकर भी वह मामी को नहीं समझ सका था.. और जया थी कि एक ही मुलाकात में मामी को बस में कर गयी. सब कुछ समझ गयी. मामी ने भी जया के साथ जो बर्ताव किया, उसे देख राजा आश्चर्य-चकित था.

चौथे दिन क्रिसमस था. फादर के साथ जया और राजा ने पूरे उत्साह से क्रिसमस मनाया. जया चली गयी तो राजा 'शोमा कैफे' पहुंचा. और पल्टू, तुलसी और राजा... बैठे बतियाते रहे. बात-बात में पल्टू बोला, "आज पहरा भी कोई खास नहीं है. मौके का फायदा उठाना चाहिए."

राजा तो यह धंधा ही छोड़ देना चाहता था अब, "सोचता हूं, यह लाइन छोड़ दूं. कोई बिजनेस करूं..." कहकर वह घर चल दिया.

दो-तीन दिन यूंही गुजर गये. सूरजमल ने किसी और को रख लिया था. कोई धंधा भी राजा के हाथ नहीं लगा. कर्ज बढ़ता गया.

राजा को जया की याद हो आयी. वह स्टेशन की ओर चल दिया. रास्ते में अनाथ ने आवाज लगाकर कहा, "रमलादि ने बुलाया है."

अनाथ को किसी तरह टरकाकर राजा 'शोमा कैफे' जा पहुंचा. तुलसी जमा हुआ था. उसी ने बताया, "उस्ताद, रमलादि का आदमी तुझे बुलाने आया था...."

राजा अभी चाय ही पी रहा था कि रमलादि 'शोमा कैफे' के दरवाजे पर दिखाई दीं.

"अरे आप?" राजा के मुंह से निकला.

"आखिरकार मुझे ही आना पड़ा! चलो!" रमलादि का स्वर आदेश भरा था.

घर पहुंचते ही रमलादि शेरनी बन गयी. बातों-बातों में उन्होंने राजा को एक तमाचा भी जड़ दिया. .. और सहसा स्वर बदलते हुए कहा, "मेरी आंखों में धूल झोंकना आसान नहीं. पागलपन छोड़ और दो पैसे कमाने की सोच!"

राजा अवाक खड़ा था. रमलादि ने जब फिर जया को अग्रवाल के पास छोड़कर आने को कहा तो राजा करीब-करीब चीख ही पड़ा, "नहीं."

..... और जब रमलादि ने कहा कि वे जया को किसी और के साथ भिजवा देंगी तो राजा बिफर पड़ा. उसने खुलेआम रमलादि की असलियत का पर्दाफाश करने की धमकी तक दे डाली.

राजा जया के घर पहुंचा तो उसकी स्थिति और खराब हो गयी. रमलादि यहां पहले ही होकर जा चुकी थी.

दरवाजा खोलते ही जया की मां ने दुत्कार दिया, "यहां आने की कोई जरूरत नहीं... चोर-लफंगे.. दूर हो जा मेरी नजरों से!"

हताशा से भरा राजा लौट आया. गिरजाघर में फादर भी नहीं मिले.

राजा का मन कह रहा था कि सर्वनाश होने ही वाला है.

जया से मिलना संभव नहीं. कर्ज बढ़ता ही जा रहा है. अब तो कर्ज भी नहीं देता कोई. मन झटककर रात को राजा शोमा कैफे पहुंचा. दोस्तों के साथ उधार की दो बोतल पीकर तुलसी से बोला, "चलो!"

"कहां?" तुलसी चौंक उठा.

"रेल यार्ड हल्का करने! मातृभाषा भी नहीं समझता."

जब कोई साथ जाने को तैयार न हुआ तो राजा अकेला ही रेल-यार्ड जा पहुंचा.

पहले ही झटके में पुलिस के हाथों धर लिया गया. इस बार रमलादि भी छुड़ाने नहीं आयीं.

चोरी और अग्रवाल के पास लड़की पहुंचाना ही उसकी जिंदगी रह गयी है.

जया के लिए इस सबसे बाहर निकलना चाहता था पर सब कुछ उलट-पलट गया.

हाजत में, मिलने के लिए टुनी को लेकर एक दिन मामी और फादर आये थे.

राजा अपने में खोया बैठा था कि सिपाही की आवाज आयी, "तुझसे मिलने कोई औरत आयी है..."

पलटकर देखा तो हैरान रह गया, "आप?" सामने जया खड़ी थी.

"हां, आपसे मिलने आयी हूं!"

"यहां का पता कैसे चला?"

"फादर से! यहां आने से पहले गिरजाघर गयी थी. आपके बारे में मुझे पूरी जानकारी मिल चुकी है."

फिर जया ने संक्षेप में सारी घटना कह सुनायी कि किस तरह रमलादि ने उसे किसी अनजान आदमी के साथ अग्रवाल के पास भिजवा दिया था.. वह तो अपनी ही होशियारी से वह बचकर निकल आयी उस नर्क से... फादर से सुना, मेरे कारण ही आपकी यह दुर्दशा हुई.

"अग्रवाल के चंगुल से निकल भागी हो, यह खबर रमलादि को लग गयी होगी. उन लोगों की ढेर सारी बातें हम जान चुके हैं.. जब तक मैं बाहर नहीं आ जाता, होशियार रहना! वह नागिन है, नागिन!" राजा ने अपनी तरफ से जया को चौकन्ना कर देना ठीक समझा.

"मैं कल आऊंगी. जैसे भी होगा आपको छुड़ा ले जाऊंगी. अब जाऊं?" भावविह्वल हो जया बोली.

"जाओ!" राजा सलाखें पकड़े शून्य में खो गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःख

एंतोन चेखव

कहते हैं कि कह देने से दुख का बोझ हल्का हो जाता है, मगर किसी दुखी व्यक्ति को भरे संसार में एक भी ऐसा आदमी न मिले, जो उसका दुख सुनने तक को तैयार हो तो क्या करेगा वह गमजदा इंसान?—विश्व प्रसिद्ध रूसी कथाकार की बहुचर्चित कहानी—

शाम का धुंधलका था. सड़क पर अभी-अभी बत्तियां जली थीं और गीली बर्फ के फाहे उन पर छितरा रहे थे. छतों पर, घोड़ों की पीठ पर, लोगों के कंधों और टोपियों पर बर्फ की पतली परतें जम गयी थीं. कोचवान लोना पोतापोव प्रेत की भांति सफेद हो गया था. वह तांगे पर इस तरह दोहरा होकर बैठा था कि चाहकर भी शरीर को और न मोड़ पाता. वह इतना निश्चेष्ट था कि बरफ में पूरा दब जाता तो भी न हिलता. उसकी छोटी-सी घोड़ी भी बरफ से ढंक गयी थी और वह उसी की तरह बेजान थी.

काफी देर से लोना न हिला-डुला था, न उसकी घोड़ी. लोना अपने तांगे को लेकर शाम से ही निकल पड़ा था. उसका और घोड़ी का पेट खाली था. और अभी तक एक भी सवारी नसीब नहीं हुई थी. शहर पर शाम का धुंधलका छाता जा रहा था. सड़क पर शोर बढ़ रहा था और लैंप-पोस्टों में पीली चमक आ गयी थी.

तभी लोना ने सुना. कोई पुकार रहा था, "ए तांगेवाले, वाइबर्ग जाना है ?"

उसने अपनी बर्फ से ढंकी पलकें उठाकर यात्री को देखा. वह कोई अफसर था. उसने मिलिटरी का ओवर-कोट पहन रखा था और उसके सिर पर टोप था.

अफसर ने दोहराया, "वाईबर्ग. . .सोया है क्या?" लोना ने घोड़ी की लगाम खींची तो घोड़ी की पीठ और कंधे पर जमी बर्फ झड़ गयी. अफसर बैठ गया. लोना ने घोड़ी को हांका. उसने अपनी गर्दन बतख की तरह उचकायी. फिर वह अपनी जगह पर से उठा और आदतन कोड़े को हवा में घुमाया. घोड़ी ने भी अपनी गर्दन उचकायी, अपनी बेंत-सी पतली टांगों को मोड़ा और बेजान-सी चल पड़ी.

"पाजी, किधर जा रहा है ? तुझे कुछ आता-जाता है या नहीं ?. . . सड़क के दायीं तरफ चल, दायीं तरफ ! तांगा चलाना आता है कि नहीं आता. दायें चल." अफसर ने कुढ़ते हुए कहा.

जवान ने मुड़कर अफसर को देखा. उसके होंठ हिल रहे थे. वह कुछ कहना चाहता था, मगर उसके मुंह से खांसी की खंगलाहट के सिवा कुछ न निकला.

अफसर ने पूछा, "क्यों, क्या बात है?"

लोना के होंठ मुस्कराने को हुए. उसने अपना गला साफ करते हुए कहा, "हुजूर, मेरा एक बच्चा था, वह इस हफ्ते मर गया."

"कैसे मरा ?"

लोना ने उसका चेहरा ठीक से देखने के लिए अपना पूरा शरीर मोड़ा.

"मालूम नहीं कैसे. . .बताते हैं, उसे बुखार था. वह अस्पताल में तीन ही दिन रहा साहब और उसकी मौत आ गयी. खुदा की ऐसी ही मर्जी थी."

"भूल जा पाजी यह बात !" अकस्मात अंधेरे से आवाज आयी, "बूढ़े, तेरी अकल तो नहीं मारी गयी ?. . . चलता क्यों नहीं. इस तरह चलेगा तो कल तक भी नहीं पहुंचेंगे. घोड़ी को मार. . .कोड़े मार."

लोना ने अपनी गर्दन उचकायी, अपनी सीट से उठा और कोड़ा चमकाया. कई बार वह अपनी सवारी की ओर देखने के लिए मुड़ा, मगर अफसर की आंखें बंद थीं. वह कुछ सुनने के मूड में नहीं था.

सवारी को उसने वाईबर्ग छोड़ा. फिर पास की दुकान पर जाकर दारू चढ़ायी और पहले की तरह निश्चल दोहरा होकर बैठ गया. गीली बर्फ की फाहे उसे और उसकी घोड़ी को सफेदी से ढांपते रहे. एक घंटा और इसी तरह बीत गया.

फिर तीन युवक आपस में जोर-जोर से झगड़ते हुए आये. उनमें से दो लंबे और छरहरे थे तथा एक नाटा था. नाटे ने कड़कती आवाज में कहा, "पुलिस ब्रिज चलोगे. . .बीस कोपेक देंगे."

लोना ने लगाम थाम ली. किराया कम था, मगर लोना को उसकी परवाह नहीं थी. सवारी मिले तो क्या एक रूबल और क्या पांच कोपेक. युवक एक-दूसरे को धकियाते हुए तांगे पर चढ़े और सीट पर बैठने के लिए झगड़ा करने लगे. सीट दो ही थीं, सवारियां तीन. कौन बैठे और कौन खड़ा रहे. काफी सिर खपायी के बाद तय हुआ कि नाटा खड़ा रहे. उसे खड़े रहने में आसानी होगी.

नाटा अपनी जगह पर खड़ा हुआ. उसने लोना की गर्दन पर गर्म सांसें छोड़ते हुए कड़कती आवाज में कहा, "चल . . . . बे! . . . . बुड्ऊ तेरी टोपी बड़ी गज़ब है. क्या तुझे इससे बेकार टोपी कहीं नहीं मिली."

"ही-ही-ही, बड़ी अजीब टोपी है साब !"

चलो-चलो, आगे बढ़ो, इसी तरह घिसटते-घिसटते चलोगे या जरा तेज भी चलोगे."

एक लंबू बोला, "मेरा सिर फटा जा रहा है. कल मैंने वोदका के साथ कोग्नेक की चार बोतलें चढ़ा लीं."

दूसरे लंबू ने गुस्से में कहा, "मुझे समझ में नहीं आता, तू हरदम झूठ क्यों बोलता रहता है. साला सूअर !"

"खुदा कसम, अगर मैं झूठ बोल रहा हूं तो खुदा करे प्राण यहीं निकल जायें."

"पिस्सू भी सच बोल दिया करते हैं."

"ही-ही-ही. . . . कैसे खुशमिजाज लोग हैं आप." लोना ने दयनीयता से कहा.

नाटा तुनककर बोला, "ए खूसट, तू तांगा तेज चलायेगा या नहीं. घोड़ी को कोड़े मार, तब उसमें जान आयेगी."

लोना अपनी पीठ पर नाटे के कुलबुलाते शरीर और उसकी थर्राती आवाज को महसूस कर रहा था. वह अपनी बेकद्री को चुपचाप सहे जा रहा था. उसने सड़क पर फुर्ती से आते-जाते लोगों को देखा और धीरे-धीरे उसका अकेलापन दूर होने लगा. वह नाटा तब तक भुनभुनाता रहा, जब तक खांसी के एक लंबे दौर ने उसका बोलना बंद नहीं कर दिया. एक लंबू किसी युवती के बारे में बातें कर रहा था. लोना ने तीनों के चेहरों को देखा. वह इंतजार कर रहा था कि कब इनमें से कोई चुप हो और वह अपनी बात शुरू करे. जब वे थोड़ी देर के लिए चुप हुए तो लोना ने उनकी ओर देखते हुए मिमियाकर कहा, "मेरा बच्चा. . . वह इस हफ्ते मर गया. . ."

खांसी के दौर के बाद नाटे ने अपने होठों को पोंछते हुए कहा, "हम सब एक न एक दिन मरेंगे. तुम तांगा चलाते रहो, बस. . . यारों इस चाल से तो हम कभी किनारे नहीं पहुंच पायेंगे."

"मार, जरा उसे मार. दे उसकी गर्दन में एक चाबुक."

"सुनता है कि नहीं, लगा उसकी गर्दन में एक चाबुक. तेरे तांगे में जाने से तो पैदल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाना. अच्छा था. तूने सुना या नहीं. . . तू हमारी बात पर कान क्यों नहीं देता."

"ही-ही-ही." वह दयनीय हंसी हंसा, "कितने खुशमिजाज लोग हैं आप. . . खुदा आपका भला करे."

एक लंबू बोला, "क्यों बे, शादीशुदा है या नहीं ?"

"मैं. . . मैं शादीशुदा हूं ? ही-ही-ही. . . आप साब बड़े मजाकिया लोग हैं. मेरी एक ही औरत बाकी है—यह गीली धरती. ही-ही. . . यह कब्र बची है मेरे लिए. मेरा बच्चा मर गया और मैं जिंदा हूं. किस्मत का खेल है सब. मरना किसको था, मरा कौन. मुझे मरना था और मर गया मेरा बच्चा."

लोना ने अपना सिर उनकी ओर घुमाया. वह बताना चाहता था कि उसका बच्चा कैसे मरा. मगर उसी क्षण नाटे ने राहत की सांस छोड़ते हुए कहा, "चलो भई, किस्मत वाले हैं हम, जो अपने ठिकाने पहुंच गये."

बीस कोपेक लेने के बाद वह अपनी सवारियों को तब तक देखता रहा, जब तक वे भीड़ में गायब नहीं हो गयीं. एक बार फिर वह अकेला हो गया, एक बार फिर चुप्पी उस पर छा गयी. अंदर छिपा दर्द थोड़ी देर के लिए बाहर आने पर हो गया कि अब उसके दिल को दुगने वेग से छेद रहा था. उसने सड़क पर आते-जाते हजारों लोगों को देखा और सोचा—क्या इनमें से कोई एक भी मेरे दुख को बांट सकेगा ! . . . पर भीड़ उसी तरह गुजरती रही. किसी ने उसकी तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखा. उसका दुख गहन था, अनंत था. अगर उसका कलेजा फट सकता और दुख उससे बाहर छलक सकता तो वह सारी दुनिया को अपनी चपेट में ले लेता. किसी ने यह जानने, यह देखने की कोशिश नहीं की. उसका यह दुख जिस्म के किसी अदृश्य कोने में छिपा बैठा था. उसे दिन के उजाले में कोई दिया लेकर ढूंढ़ता तो भी उसे नहीं खोज पाता.

एक दरबान बोरा उठाये जा रहा था. लोना ने सोचा, क्यों न उससे कहूं अपनी बात. लोना ने पूछा, "क्या वक्त हुआ होगा मेरे भाई?"

"दस बजे हैं. तुम यहां खड़े-खड़े क्या कर रहे हो ? यहां से टलते क्यों नहीं ?"

लोना वहां से कुछ आगे बढ़ गया. उसका शरीर झुका हुआ था और वह अपने दुख से हार मान चुका था. उसने तय किया कि मदद पाने के खयाल से लोगों से मुखातिब होना बेकार है ! मगर कुछ ही मिनट में उसने अपने-आपको तना हुआ महसूस किया. उसने अपना सिर झकझोरा, मानो अब यह तकलीफ उससे बर्दाश्त नहीं होगी. उसने लगाम खींची. दर्द अब सहन नहीं हो रहा था.

उसने सोचा, अब घुड़साल वापस चलें ! . . . छोटी घोड़ी भी जैसे उसके मन की बात ताड़ गयी. वह आगे बढ़ी.

डेढ़ घंटे बाद लोना एक बेहद गंदे स्टोव के पास बैठा था. आसपास, फर्श पर, बेंचों पर लोग खर्राटे भर रहे थे. हवा बदबूदार और घुटनभरी थी. लोना सोये हुए लोगों को देख रहा था. वह अपना शरीर खुजाने लगा. उसे अफसोस हो रहा था कि वह इतनी जल्दी वापस क्यों आ गया.

अभी तो चारा खरीदने तक के पैसे नहीं कमाये. उसने सोचा, दुख मेरे पीछे पड़े हुए हैं. . . मगर वह आदमी जो अपना काम जानता है, जिसका पेट भरा है, जिसके घोड़े का पेट भी भरा है, वह सुख की नींद सो रहा है. एक जवान कोचवान नींद में बड़बड़ाता हुआ पानी के घड़े के पास पहुंचा.

"तुम्हें प्यास लगी है ?" लोना ने पूछा.

"लगी तो है."

"प्यास लगना तो अच्छी बात है, पर भाई, जहां तक मेरा ताल्लुक है, मेरा बच्चा मर गया है. तुम सुन रहे हो न. . . वह इसी हफ्ते अस्पताल में मरा. . . बड़ी मुसीबत है."

लोना ने मुड़कर देखा कि उसकी बात का असर हो रहा है या नहीं, पर कोई असर नहीं हो रहा था. जवान लड़के ने पानी पीकर अपना मुंह कंबल से ढक लिया था. बूढ़े लोना ने निश्वास छोड़ा, जैसे जवान छोकरे पीना चाहते हैं, वैसे वह बात करना चाहता था. उसके बच्चे को मरे अब एक हफ्ता बीत जायेगा, लेकिन किसी ने उसके बारे में ठीक से बात तक नहीं की. उसे अपनी बात, धीरे-धीरे समझा-समझाकर कहनी है. उसे बताना है कि कैसे उसका बच्चा बीमार पड़ा, उसने कैसी-कैसी तकलीफें झेलीं. मौत से पहले उस बच्चे ने क्या कहा और वह कैसे मरा. उसे बताना है कि बच्चे का जनाजा कैसे निकला, कैसे वह अपने बच्चे के कपड़े लेने अस्पताल गया. तब तक उसकी बच्ची गांव में थी, वह अपनी बच्ची के बारे में भी बातें करना चाहता है. कितनी बातें थीं बताने को. सुनने वाले को इस किस्से में आहें भरनी हैं, रोना है. सिसकना है. शायद इस बारे में किसी महिला से बातें करना बेहतर होगा, हालांकि औरतें इतनी मूर्ख होती हैं कि उनसे दुख-तकलीफ की कोई बात कही नहीं कि उनकी आंखों में आंसू भरे नहीं.

लोना ने मन ही मन तय किया कि अब वह घोड़ी के पास जायेगा, सोना ही तो है. . . फिर सो लेंगे !

उसने अपका कोट उतारा और नीचे घुड़साल में गया. अकेले में अपने बच्चे के बारे में सोचने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी. वह अपने बच्चे के बारे में किसी से भी बातें कर सकता था, मगर अकेले में उसके बारे में सोचना, उसकी स्मृति को जीवित करना बहुत कष्टप्रद था.

उसने घोड़ी की चमकती आंखों में आंखें डालते हुए कहा, "तुमने कुछ खाया या नहीं. अच्छा खाओ, खाओ. आज इतनी कमाई तो हुई नहीं कि तुम चना खा सको, पर चारा तो खा ही सकती हो. इस उमर में मेरे बच्चे को तांगा चलाना चाहिए था, मुझे नहीं. वह वाकई एक अच्छा कोचवान था. उसे जिंदा रहना चाहिए था.

लोना एक क्षण को चुप रहा और फिर उसने बात बढ़ायी, "सयानी छोकरी, ऐसा हुआ मेरे साथ. मेरा बच्चा बेवक्त मर गया. वह हमारे रहते मर गया. तुम मेरी बात को इस तरह समझो, मान लो तुम्हारा बच्चा होता और एक दिन अचानक तुम्हें पता चलता कि वह इस दुनिया में नहीं है. . . . तुम्हें दुख होता न."

छोटी घोड़ी उसके हाथों पर रखी घास चबाती रही, सुनती रही, सांस लेती रही. . .

अपने दुख से हारे लोना ने उसे अपनी सारी व्यथा कह सुनायी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul K

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कहानी नहीं

अमृता प्रीतम

पत्थर और चूना बहुत था, लेकिन अगर थोड़ी-सी जगह पर दीवार की तरह उभरकर खड़ा हो जाता, तो घर की दीवारें बन सकता था, पर बना नहीं. वह धरती पर फैल गया, सड़कों की तरह, और वे दोनों तमाम उम्र उन सड़कों पर चलते रहे.

सड़कें एक दूसरे के पहलू से भी फटती हैं, एक दूसरे के शरीर को चीरकर भी गुजरती हैं, एक दूसरे से हाथ छुड़ाकर गुम हो भी जाती हैं और एक दूसरे के गले से लगकर एक दूसरे में लीन हो जाती थीं. वे एक दूसरे से मिलते रहे, पर सिर्फ तब, जब कभी-कभार उनके पैरों के नीचे बिछी हुई सड़कें एक दूसरे से आकर मिल जाती थीं.

घड़ी पल के लिए शायद सड़कें भी चौंककर रुक जाती थीं और उनके पैर भी. और तब शायद दोनों को उस घर का ध्यान आ जाता था, जो बना नहीं था. बन सकता था, फिर क्यों नहीं बना? वे दोनों हैरान से होकर पांवों के नीचे की जमीन को ऐसे देखते थे, जैसे यह बात उस जमीन से पूछ रहे हों, और फिर वे कितनी ही देर जमीन की ओर ऐसे देखने लगते मानो अपनी नजर से उस घर की नींव खोद लेंगे.

और कई बार सचमुच वहां जादू का एक घर उभरकर खड़ा हो जाता और वे दोनों ऐसे सहज मन हो जाते मानो बरसों से उस घर में रह रहे हों.

यह उनकी भरपूर जवानी के दिनों की बात नहीं, अब की बात है, ठंडी उम्र की बात, कि अ एक सरकारी मीटिंग के लिए स के शहर गयी. अ को भी वक्त ने स जितना सरकारी ओहदा दिया है, और बराबर की हैसियत के लोग. जब मीटिंग से उठे, सरकारी दफ्तर ने बाहर शहरों से आनेवालों के लिए वापसी टिकट तैयार रखे हुए थे. स ने आगे बढ़कर अ का टिकट ले लिया, और बाहर आकर अ से अपनी गाड़ी में बैठने के लिए कहा.

पूछा, "सामान कहां है?"

"होटल में."

स ने ड्राइवर से पहले होटल और फिर घर चलने के लिए कहा.

अ ने आपत्ति नहीं की, पर तर्क के तौर पर कहा, "प्लेन में सिर्फ दो घंटे बाकी हैं, होटल होकर मुश्किल से एयरपोर्ट पहुंचूंगी."

"प्लेन कल भी जायेगा, परसों भी, रोज जायेगा." स ने सिर्फ इतना कहा, फिर रास्ते में कुछ नहीं कहा.

होटल से सूटकेस लेकर गाड़ी में रख लिया, तो एक बार अ ने फिर कहा, "वक्त थोड़ा है, प्लेन मिस हो जायेगा."

स ने जवाब में कहा, "घर पर मां इंतजार कर रही होगी."

अ सोचती रही कि शायद स ने मां को इस मीटिंग का दिन बताया हुआ था, पर वह समझ नहीं सकी—क्यों बताया था?

अ कभी-कभी मन से 'यह क्यों' पूछ लेती थी, पर जवाब का इंतजार नहीं करती थी. वह जानती थी, मन के पास कोई जवाब नहीं था. वह चुप बैठी शीशे में से बाहर शहर की इमारतों को देखती रही.

कुछ देर बाद इमारतों का सिलसिला टूट गया. शहर से दूर की आबादी आ गयी और पाम के बड़े-बड़े पेड़ों की कतारें शुरू हो गयीं.

समुद्र शायद पास ही था. अ के सांस नमकीन-से हो गये. उसे लगा—पाम के पत्तों की तरह उसके हाथों में कंपन आ गया था, शायद स का घर भी अब पास था.

पेड़ों-पत्तों में लिपटी हुई-सी एक कॉटेज के पास पहुंचकर गाड़ी खड़ी हो गयी. अ भी उतरी, पर कॉटेज के भीतर जाते हुए एक पल के लिए बाहर केले के पेड़ के पास खड़ी हो गयी. जी किया—अपने कांपते हुए हाथों को यहां बाहर केले के कांपते हुए पत्तों के बीच में रख दे. वह स के साथ भीतर कॉटेज में जा सकती थी, पर हाथों की वहां जरूरत नहीं थी.

मां ने शायद गाड़ी की आवाज सुन ली थी, बाहर आ गयी. उन्होंने हमेशा की तरह अ का माथा चूमा और कहा, "आओ बेटी."

इस बार अ बहुत दिनों बाद मां से मिली थी, पर मां ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए—जैसे सिर पर से बरसों का बोझ उतार दिया हो—और उसे भीतर ले जाकर बिठाते हुए उससे पूछा, "क्या पियोगी, बेटी?"

स भी अब तक भीतर आ गया था, मां से कहने लगा, "पहले चाय बनाओ, फिर खाना."

अ ने देखा—ड्राइवर गाड़ी से उसका सूटकेस अंदर ला रहा था. उसने स की ओर देखा, कहा, "बहुत थोड़ा वक्त है, मुश्किल से एयर पोर्ट पहुंचूंगी."

स ने ड्राइवर से कहा, "सवेरे जाकर परसों का टिकट ले आना."

और मां से कहा, "तुम कहती थीं कि मेरे कुछ दोस्तों को खाने पर बुलाना है, कल बुला लो."

अ ने स की जेब की ओर देखा, जिसमें उसका वापसी का टिकट पड़ा हुआ था, कहा, "पर यह टिकट बर्बाद हो जायेगा."

मां रसोई की तरफ जाते हुए खड़ी हो गयी और अ के कंधे पर अपना हाथ रखकर कहने लगीं, "टिकट का क्या है बेटी, इतना कह रहा है, रुक जाओ."

पर क्यों! अ के मन में आया, पर कहा कुछ नहीं. कुर्सी से उठकर कमरे के आगे बरामदे में जाकर खड़ी हो गयी. सामने दूर तक पाम के ऊंचे-ऊंचे पेड़ थे. समुद्र परे था. उसकी आवाज सुनाई दे रही थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति का नाम उसके चरित्र को बहुत हद तक उजागर कर देता है. . . लेकिन उन लोगों का चरित्र कैसा होता है जो बेनाम जिंदगी जीते हैं. . . या जिनके नाम को रेखांकित करना ही व्यर्थ मान लिया जाता है. . .? ऐसे ही एक युगल—'अ-स'—के तीस बरस का सफरनामा यानी नाम और बेनाम के चारित्रिक द्वंद्व की कहानी—

पर पेड़ दिखाई दे रहे थे. अ को लगा —सिर्फ आज का 'क्यों' नहीं, उसकी जिंदगी के कितने ही 'क्यों' उसके मन के समुद्र के तट पर पाम के पेड़ों की तरह उगे हुए हैं और उनके पत्ते अनेक वर्षों से हवा में कांप रहे हैं.

अ ने घर के मेहमान की तरह चाय पी, रात को खाना खाया, और घर का गुसलखाना पूछकर रात को सोने के समय पहननेवाले कपड़े बदले. घर में एक लंबी बैठक थी, ड्राइंग डाईनिंग, और दो और कमरे थे— एक स का और एक मां का. मां ने जिद करके अपना कमरा अ को दे दिया और स्वयं बैठक में सो गयी.

अ सोने वाले कमरे में चली गयी, पर कितनी ही देर झिझकी हुई-सी खड़ी रही. सोचती रही—मैं बैठक में एक दो रातें मुसाफिरों की तरह ही रहती, ठीक था, यह कमरा मां का है, मां का ही रहना चाहिए था.

सोने वाले कमरे के पलंग में, पर्दों में, और अलमारी में एक घरेलू-सी बू-बास होती है, अ ने इसका एक घूंट-सा भरा, पर फिर अपना सांस रोक लिया मानो अपने ही सांसों से डर रही हो.

बराबर का कमरा स का था. कोई आवाज नहीं थी. घड़ी पहले स ने सिरदर्द की शिकायत की थी, नींद की गोली खायी थी, अब तक शायद सो गया था, पर बराबर वाले कमरों की भी अपनी एक बू-बास होती है, अ ने एक बार उसका भी एक घूंट पीना चाहा, पर सांस रुकी रही.

फिर अ का ध्यान अलमारी के पास नीचे फर्श पर पड़े हुए अपने सूटकेश की ओर गया और उसे हंसी-सी आ गयी—वह देखो, मेरा सूटकेस, मुझे सारी रात मेरी मुसाफिरी की याद दिलाता रहेगा.

और वह सूटकेस की ओर देखेते हुए, थकी हुई-सी, तकिये पर सिर रखकर लेट गयी.

न जाने कब नींद आ गयी. सोकर जागी तो खासा दिन चढ़ा हुआ था. बैठक में रात को होने वाली दावत की हलचल थी.

एक बार तो अ आंखें झपककर रह गयी—बैठक में सामने स खड़ा था—चारखाने का नीले रंग का तहमद पहने हुए. अ ने उसे कभी रात के सोने के समय के कपड़ों में नहीं देखा था. हमेशा दिन में देखा था—किसी सड़क पर, सड़क के किनारे किसी कैफे में, होटल में या किसी सरकारी मीटिंग में—उसकी यह पहचान बड़ी नयी-सी लगी, आंखों में अटक-सी गयी.

अ ने भी इस समय नाइट सूट पहना हुआ था, पर अ ने बैठक में आने से पहले उस पर ध्यान नहीं दिया था, अब ध्यान आया तो अपना आप आप ही अजीब लगने लगा—साधारण से असाधारण-सा होता हुआ.

बैठक में खड़ा हुआ स, अ को आते हुए देखकर कहने लगा, "ये दो सोफे हैं, इन्हें लंबाई के रूख रख लें? बीच में जगह खुली हो जायेगी."

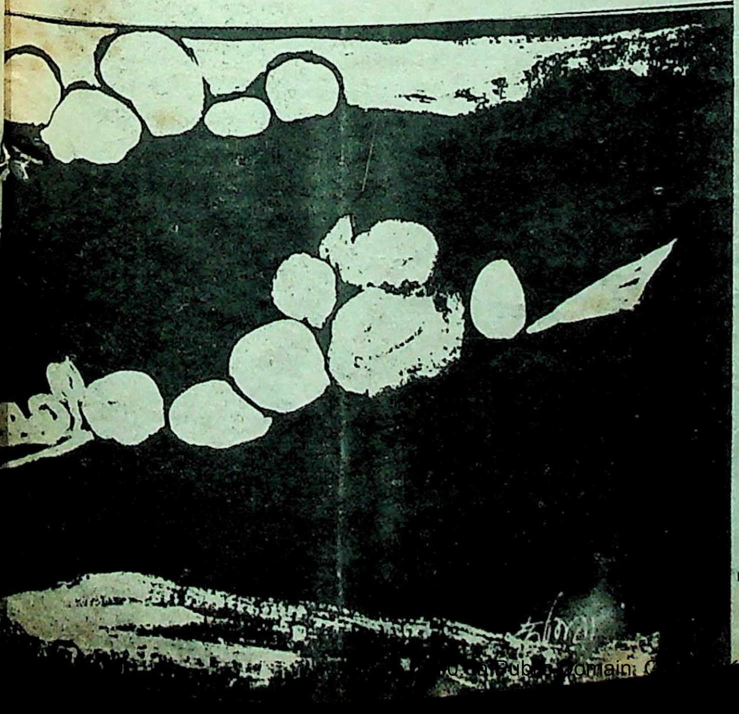

अ ने सोफों को पकड़वाया, छोटी मेजों को उठाकर कुर्सियों के बीच में रखा. फिर मां ने चौके से आवाज दी तो अ ने चाय लाकर मेज पर रख दी.

चाय पीकर स ने उससे कहा, "चलो, जिन लोगों को बुलाना है, उनके घर जाकर कह आयें, और लौटते हुए कुछ फल लेते आयें."

दोनों ने पुराने परिचित दोस्तों के घर जाकर दस्तक दी, संदेश दिये, रास्ते से चीजें खरीदीं, फिर वापस आकर दोपहर का खाना खाया और फिर बैठक को फलों से सजाने में लग गये.

दोनों ने रास्ते में साधारण बातें की थीं—फल कौन-कौन से लेने हैं? पान लेने हैं या नहीं? ड्रिंक्स के साथ के लिए कबाब कितने लें? फलां का घर रास्ते में पड़ता है, उसे भी बुला लें—और ये सब बातें वे नहीं थीं, जो सात बरस बाद मिलने वाले करते हैं.

अ को सवेरे दोस्तों के घर पर पहली, दूसरी दस्तक देते समय ही सिर्फ थोड़ी-सी परेशानी महसूस हुई थी, वे भले ही स के दोस्त थे, पर एक लंबे समय से अ को जानते थे, दरवाजा खोलने पर बाहर उसे स के साथ देखते तो हैरान से हो कह उठते, "आप!" पर वे जब अकेले गाड़ी में बैठते, तो स हंस देता, "देखा, कितना हैरान हैरान हो गया, उससे बोला भी नहीं जा रहा था."

और फिर एक दो बार के बाद दोस्तों की हैरानी भी उनकी साधारण बातों में शामिल हो गयी. स की तरह अ भी सहज मन से हंसने लगी.

शाम के समय स ने छाती में दर्द की शिकायत की. मां ने कटोरी में ब्रांडी डाल दी, और अ से कहा, "लो बेटी, यह ब्रांडी इसकी छाती पर मल दो."

इस समय तक शायद इतना कुछ सहज हो चुका था, अ ने स की कमीज के ऊपरवाले बटन खोले, और हाथ से उसकी छाती पर ब्रांडी मलने लगी.

बाहर पाम के पेड़ों के पत्ते और केलों के पत्ते शायद अभी भी कांप रहे थे, पर अ के हाथ में कंपन नहीं था. एक दोस्त समय से पहले आ गया था, अ ने ब्रांडी में भीगे हुए हाथों से उसका स्वागत करते हुए उसे नमस्कार भी किया, और फिर कटोरी में हाथ डोबकर बाकी रहती ब्रांडी को स की गर्दन पर मल दिया—कंधों तक.

धीरे-धीरे कमरा मेहमानों से भर गया. अ फ्रिज से बरफ निकालती रही और सादा पानी भर-भरकर फ्रिज में रखती रही. बीच-बीच में रसोई की तरफ आती, ठंडे कबाब फिर से गर्म करके ले आती. सिर्फ एक बार जब स ने अ के कान के पास होकर कहा, "तीन-चार तो वे लोग भी आ गये हैं जिन्हें बुलाया नहीं था. जरूर किसी दोस्त ने उनसे भी कहा होगा, तुम्हें देखने के लिए आ गये हैं." तो पल भर के लिए अ की स्वाभाविकता टूटी, पर फिर जब स ने उससे कुछ गिलास धोने के लिए कहा तो वह उसी तरह सहज मन हो गयी.

महफिल गर्म हुई, रात ठंडी हुई और जब लगभग आधी रात के समय सब चले गये, अ को सोने वाले कमरे में जाकर अपने सूटकेस में से रात के कपड़े निकालकर पहनते हुए लगा—कि सड़कों पर बना हुआ जादू का घर अब कहीं भी नहीं था.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह जादू का घर उसने कई बार देखा था—बनते हुए भी, मिटते हुए भी, इसलिए वह हैरान नहीं थी. सिर्फ थकी-थकी-सी तकिए पर सिर रखकर सोचने लगी—कब की बात है—शायद पच्चीस बरस गये, नहीं, तीस बरस, जब पहली बार वे जिंदगी की सड़कों पर मिले थे—अ किस सड़क से आयी थी, स कौन-सी सड़क से आया था, मानों पूछना भी भूल गये थे, और बताना भी. वह निगाह नीची किये जमीन में नींवें खोदते रहे, और फिर वहां जादू का एक घर बनकर खड़ा हो गया, और वे सहज मन सारे दिन उस घर में रहते रहे.

फिर जब दोनों की सड़कों ने उन्हें आवाजें दीं, वे अपनी-अपनी सड़क की ओर जाते हुए चौंककर खड़े हो गये. देखा—दोनों सड़कों के बीच एक गहरी खाई थी. स कितनी ही देर उस खाई की ओर देखता रहा, जैसे अ से पूछ रहा हो कि इस खाई को तुम किस तरह पार करोगी? अ ने कहा कुछ नहीं था, पर स के हाथ की ओर देखा था, जैसे कह रही हो—तुम हाथ पकड़कर पार करा लो, मैं मजहब की इस खाई को पार कर जाऊंगी.

फिर स का ध्यान ऊपर की ओर गया था, अ के हाथ की ओर. उसकी उंगली में हीरे की एक अंगूठी चमक रही थी. स कितनी देर तक देखता रहा, जैसे पूछ रहा हो—तुम्हारी उंगली पर यह जो कानून का-सा धागा लिपटा हुआ है, मैं इसका क्या करूंगा? अ ने अपनी उंगली की ओर देखा था, और धीरे से हंस पड़ी थी, जैसे कह रही हो—तुम एक बार कहो, मैं कानून का यह धागा नाखूनों से खोल दूंगी. नाखूनों से यह नहीं खुलेगा तो दांतों से खोल दूंगी.

पर स चुप रहा था, और अ भी चुप खड़ी रह गयी थी, पर वे एक जगह पर खड़े हुए भी चलते रहे.

फिर एक दिन स के शहर से आने वाली सड़क अ के शहर आ गयी और अ ने स की आवाज सुनकर अपने एक बरस के बच्चे को उठाया था, और बाहर सड़क पर उसके पास आकर खड़ी हो गयी थी. स ने धीरे से हाथ आगे करके सोये हुये बच्चे को अ से ले लिया था, और अपने कंधे से लगा लिया था और फिर वे सारे दिन शहर की सड़कों पर चलते रहे.

वे उनकी भरपूर जवानी के दिन थे—उनके लिए न धूप थी, न ठंड. और फिर जब चाय पीने के लिए वे एक कैफे में गये तो बैरे ने एक मर्द, एक औरत, और एक बच्चे को देखकर एक अलग कोने में कुर्सियां पोंछ दी थीं. और कैफे के उस अलग कोने में एक जादू का घर बनकर खड़ा हो गया था.

और एक बार–अचानक चलती हुई रेलगाड़ी से मिलाप हो गया था. स भी था, मां भी, और स का एक दोस्त भी. अ की सीट थोड़ी दूर थी, पर स के दोस्त ने उससे अपनी सीट बदल ली थी, और सूटकेस उठाकर स के सूटकेस के पास रख दिया था. गाड़ी में उस समय ठंड नहीं थी, पर रात ठंडी थी, मां ने दोनों को एक कंबल दिया था, आधा स के लिए, आधा अ के लिए. और चलती हुई गाड़ी में बस साझे के कंबल के किनारे जादू के घर की दीवारें बन गये.

जादू की दीवारें बनती थीं, मिटती थीं, और आखिर उनके खंडहरों की-सी खामोशी का एक ढेर लग जाता था.

स को कोई बंधन नहीं था. अ को था, पर वह तोड़ सकती थी. फिर वह क्या था कि वे तमाम उम्र सड़कों पर चलते रहे.

'अब तो उम्र बीत गयी.' अ ने उम्र के तपते दिनों के बारे भी सोचा और अब के ठंडे दिनों के बारे में भी. लगा—सब सब बरस पाम के पत्तों की तरह हवा में खड़े कांप रहे थे.

बहुत दिन हुए, एक बार अ ने बरसों की खामोशी को तोड़कर पूछा, था, "तुम बोलते क्यों नहीं? कुछ भी नहीं कहते. कुछ तो कहो!"

पर स हंस दिया था, कहने लगा, "वहां रोशनी बहुत है, हर जगह रोशनी होती है, मुझसे रोशनी में बोला नहीं जाता."

और अ का जी किया था, वह एक बार सूरज को पकड़कर बुझा दे. सड़कों पर सिर्फ दिन चढ़ते हैं. रातें तो घरों में होती हैं, पर घर कोई था नहीं, इसलिए रात भी कहीं नहीं थी. उनके पास सिर्फ सड़कें थीं, और सूरज था, और स सूरज की रोशनी में बोलता नहीं.

एक बार बोला था.

वह चुप-सा बैठा हुआ था जब अ ने पूछा था, "क्या सोच रहे हो?" तो वह बोला था, "सोच रहा हूं, लड़कियों से फ्लर्ट करूं, और उन्हें दुखी करूं."

पर इस तरह शायद अ दुखी नहीं, सुखी हो जाती, इसलिए अ हंसने लगी थी, और स भी. और फिर एक लंबी खामोशी.

कई बार अ के जी में आता था—हाथ आगे बढ़ाकर स को उसकी खामोशी में से बाहर ले आये, वहां तक जहां तक दिल का दर्द है, पर वह अपने हाथों को सिर्फ देखती रहती थी, उसने हाथों से कभी कुछ कहा नहीं था.

एक बार स ने कहा था, "चलो चीन चलें."

"चीन?"

"जायेंगे, पर आयेंगे नहीं."

"पर चीन क्यों?"

यह 'क्यों' भी शायद पाम के पेड़ के समान था जिसके पत्ते फिर से कांपने लगे.

इस समय अ ने तकिये पर सिर रखा हुआ था, पर नींद नहीं आ रही थी. स बराबर के कमरे में सोया हुआ था, शायद नींद की गोली खाकर.

अ को न अपने जागने पर गुस्सा आया, न स की नींद पर. वह सिर्फ यह सोच रही थी—कि वे सड़कों पर चलते हुए जब कभी मिलते हैं तो वहां घड़ी-पहर के लिए एक जादू का घर क्यों बनकर खड़ा हो जाता है?

अ को हंसी-सी आ गयी—तपती हुई जवानी के समय तो ऐसा होता था, ठीक है, लेकिन अब क्यों होता है? आज क्यों हुआ?

यह न जाने क्या था, जो उम्र की पकड़ में नहीं आ रहा था.

बाकी रात न जाने कब बीत गयी. अब दरवाजे पर धीरे से खटखट करता हुआ ड्राइवर कह रहा था, "एयरपोर्ट जाने का समय हो गया है."

अ ने साड़ी पहनी, सूटकेस उठाया, स भी जागकर अपने कमरे में आ गया, और वे दोनों उस दरवाजे की ओर बढ़े जो बाहर सड़क की ओर खुलता था.

ड्राइवर ने अ के हाथ से सूटकेस ले लिया था. अ को अपने हाथ और खाली से लगे. वह दहलीज के पास अटक-सी गयी फिर जल्दी से अंदर गयी और बैठक में सोई हुई मां को खाली हाथों प्रणाम कर के बाहर आ गयी.

फिर एयरपोर्ट वाली सड़क शुरू हो गयी, खत्म होने को भी आ गयी, पर स भी चुप था, अ भी.

अचानक स ने कहा, "तुम कुछ कहने जा रही थीं?"

"नहीं."

और वे फिर चुप हो गये.

फिर अ को लगा—शायद स को भी—कि बहुत कुछ कहने को था, बहुत कुछ सुनने को, पर बहुत देर हो गयी थी, और अब सब शब्द जमीन में गड़ गये थे—पाम के पेड़ बन गये थे और मन के समुंदर के पास लगे हुए उन पेड़ों के पत्ते शायद तब तक कांपते रहेंगे जब तक हवा चलती रहेगी.

एयरपोर्ट आ गया और पांवों के नीचे स के शहर की सड़क.

अब सामने एक नयी सड़क थी— जो हवा में से गुजर कर दूसरे शहर की एक सड़क से जा मिलने को थी.

और वहां जहां दो सड़कें एक दूसरे के पहलू से निकलती हैं, स ने धीरे से अ को अपने कंधे से लगा लिया. और फिर वे दोनों कांपते हुए, पांवों के नीचे की जमीन को इस तरह देखने लगे, जैसे उन्हें उस घर का ध्यान आ गया हो, जो नहीं बना था. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमाशा

जीलानी बानो

रोटी के लिए क्या तो इंसान और क्या तो पशु-पक्षी! सबको, पता नहीं क्या-क्या करना पड़ता है और इसे हासिल करने के लिए हर कोई हर तरह के दंद-फंद भी करता है, मगर दुनियावी दंद-फंद से दूर वे लोग, जो वस्तुतः कुछ नहीं कर पाते, उनका हस्र क्या होता है. रोटी और तमाशे में मनुष्य की भूमिका को जतलाती उर्दू कहानी—

"हमें रोटी दे दो!"

मई की तेज धूप उसके सिर पर थी और वह आंगन में खड़ी हांफ रही थी. उसके बदन पर कहीं गोश्त न था. इसलिए इंसानी बदन की बनावट के सारे भेद उस पर एक नजर डालते ही जाहिर हो जाते थे.

"अम्मा! अम्मा! इसे एक रोटी दे दो न! बेचारी कई दिन से भूखी है. कल दोपहर से सारे मुहल्ले में रोती फिर रही है." आदिल अम्मा से कह रहा था.

"चल, भाग यहां से!" अम्मा ने उस मलिनता की पोट पर एक नजर डालकर नाक सिकोड़ी.

"हिम्मत तो देखो चुड़ैल की! रोटी लेने आंगन में आ खड़ी हुई, जैसे उसके बाप का कर्ज देना है हमें."

"तीन रुपये किलो गेहूं हो गया है. फकीरों को रोटियां कौन बांटेगा?" दादी ने मुसल्ले (नमाज का बिछौना) के कोने तले माला ढूंढ़ते हुए कहा.

"हमें रोटी दे दो!" वह फिर चिल्लायी.

"अब जाती है हरामखोर कि उठाऊं जूती!" दादी को नमाज-तोड़कर डांटना पड़ा, "तोबा. . . न जाने कौन है शैतान की खाला? आ गयी नमाज में खलल डालने."

"अम्मी, इस बेचारी को नौकर रख लीजिए न! इसे रोटी खिला दीजिए. बेचारी बहुत भूखी है." आदिल से उसका पिचका हुआ पेट और नंगी पसलियां नहीं देखी जा रही थीं.

"ओ छोकरी, नौकरी करेगी?. . ." अब की बार अम्मा ने उसे गौर से देखा और मुंह फेर लिया, "ऊंह! हड्डियों का कूड़ा है निगौरी. फुरती तो नाम को नहीं होगी."

"नौकरी क्या. . .?" उसने आंखें फाड़कर पूछा और फिर सिसकने लगी, "हमें रोटी दे दो न!"

"हां, हां, रोटी देंगे, मगर इसके बदले तुम्हें काम करना पड़ेगा." अम्मा को वह बासी चावल याद आ गये, जिन्हें कल से फेंकने को उनका दिल नहीं चाह रहा था. वह इस फिक्र में थीं कि चावल किसी फकीर को देकर पुण्य कमाएं.

"अच्छा, जल्दी से रोटी दे दो!" वह सबके हाथों में रोटी ढूंढ़ने लगी

"तुझे गोश्त बघारना आता है?" दादी ने उसे घूरकर देखा और मुंह बनाकर कराहत से बोलीं, "इससे कहो, नहा धोकर साफ-सुथरे कपड़े पहनकर आये, तब चूल्हे के पास भेजना."

"दादी अम्मा, इसके सामने गोश्त का जिक्र मत कीजिए. यह हिंदू है." आदिल ने आवाज दबाकर दादी से कहा.

"एं. . . हिंदू है." अम्मा चौंक पड़ीं, "यह कंबख्त अजीब-सा फैशनेबल फिल्मस्टारों जैसा लंगोट पहने थी. वरना लिबास से. . . आदमी फौरन पहचान लिया जाता है कि हिंदू है या मुसलमान."

"ए लो! अच्छा तुमने बता दिया, वरना मनहूस कहीं इमामबाड़े में घुस जाती तो हर चीज भ्रष्ट हो जाती. . .अरी सुन, तो क्या तू हिंदू है?"

"हिंदू क्या. . . ?" उसने बार-बार बंद हो जानेवाली आंखों को जरा-सा खोलकर पूछा और अमरूद के पेड़ का सहारा लेकर झूलने लगी.

"धत तेरा सत्यानाश हो!" अम्मा को हंसी आ गयी, "निरी हूश है मुरदार! दिमाग खाली कर देगी मेरा!" एक लड़की के आने का शोर सुनकर भाई जान ने जासूसी उपन्यास तकिये पर पटका और बरामदे में चले आये.

"ऊंह, अभी बहुत छोटी है." उन्होंने सिगरेट सुलगाकर उसे घूरा.

"तेरी कोई बड़ी बहन है तो उसे बुला ला. . . अम्मा! यह तो बहुत छोटी है. किसी काम की नहीं!" उन्होंने सोचा, यह लड़की एक रोटी के लिए तरस रही है. मतलब पर बहुत जल्द आ सकती है.

"बहन क्या?" अब वह लड़खड़ायी और वहीं ढेर हो गयी.

"ए लो! यह मैडम तो स्थायी रूप से रहने-खाने के इरादे से आयी हैं."

सब को हंसी आ गयी.

"रोटी दे दो न". वह नाक में मिनमिनायी.

"देखा, कैसी बदमाश है. काम के नाम पर अनजान बन रही है और रोटी खाने की इतनी जल्दी पड़ी है."

"तूने पहले कहीं काम किया है?" दादी ने सलाम फेरकर पुलिसवालों के अंदाज में बात शुरू की और फिर अम्मा की तरफ देखकर सरगोशी में कहा, "दुलहिन, कहीं किसी चोर की सिखायी हुई न हो. रात को दरवाजा खोलकर चोरों को अंदर बुला लेगी."

सबने उसे गौर से देखा: वह सचमुच अपनी बंद आंखें खोलकर चोरों की तरह उस अंधी काली कोठरी को देख रही थी, जहां शैतानों के दीदे जैसे सुर्ख चूल्हे दहक रहे थे और सारे आंगन में खिचड़ी की खुशबू महक रही थी.

"मुझे तो पक्की चोर लगे है. चारों तरफ कैसी ललचायी हुई नजरों से देख रही है."

अजरा साइकॉलाजी में एम. ए. कर रही थी. इसलिए इंसान के अंदर छिपे हुए इरादों से खूब वाकिफ थी.

"इसे नौकरी थोड़ी करनी है. आप इसे रोटी दे दीजिए. अभी भाग जायेगी बदमाश! चल उठ, झाड़ू लगा!"

"पहले गो की फलियां धो दे."

"खबरदार, जो चूल्हे के पास से कोई चीज उठाकर मुंह में डाली!"

"दुलहिन, तुम्हारे सब काम हो जायें तो इसे जरा मेरे पास भेज देना! रात से पिंडलियों में दर्द हो रहा है. जरा पांव दबा देगी!" दादी ने आराम से पलंग पर लेटकर कहा.

"आप लोगों ने देखा. वह कहीं उठी. काम के नाम पर कैसा दम निकल रहा है. अच्छा, अब आप सब इसका तमाशा देखेंगे." अजरा साईकोलॉजी की किताब रखकर उठी और बावर्चीखाने से एक रोटी उठा लायी.

"आओ बच्चो, तमाशा देखो."

अजरा ने रोटी पहले उस लड़की की नाक के पास छुआयी और फिर उसके सिर पर नचाने लगी, "ले, रोटी खायेगी."

अजरा ने उसकी लटकी हुई गर्दन ऊपर उठाना चाही, लेकिन सख्त शर्मिंदा हुई कि वह बच्चों को कोई तमाशा न दिखा सकी. □

रूपांतर : सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डैडी नंबर लगाते थे

लुई एम. मैरीवेदर

"मुझे कल रात सपने में एक मछली दिखायी दी थी. अब तुम बताओ, मैं आज का डालर किस नंबर पर लगाऊं?" मिसेस मैकाय ने पूछा.

"मुझे भी कल रात सपने में मछली ही दिखायी दी थी. मैं तो मैडम जोरा की किताब की सलाह के मुताबिक 5-14 नंबर पर अपना डालर लगा रही हूं." मैंने कहा. "मैं यह नंबर एक डालर के नोट के साथ अपने शाप को देने जा रही हूं."

"तो, मेरा भी यही नंबर. मेरे डालर के साथ लेती जाओ." कहकर मिसेज मैकाय ने एक परची पर 5-15 नंबर लिखकर एक डालर के नोट के साथ मुझे दे दिया.

नंबर निकलने का वक्त नजदीक था और मेरे पास जो रकम थी, उसे देने मुझे जिस इमारत में जाना था, वह एक ऐसी स्ट्रीट में थी, जिसमें जाने के लिए डैडी ने मना कर दिया, क्योंकि वहां वेश्याएं रहती थीं, लेकिन मुझे उस स्ट्रीट और उसमें रहनेवाली वेश्याओं के बारे में पूरी जानकारी थी, क्योंकि मेरी एक सहेली सूकी की छोटी बहन फैनी खुद वहां धंधा करती थी. वह सिर्फ बारह साल की थी.

डैडी अपनी जगह पर नहीं थे, इसलिए मुझे घर वापस जाना पड़ा.

घर आते ही मैंने मां को आवाज दी, "मां, डैडी घर पर हैं?"

"नहीं, लेकिन तुम नंबरों की रकम उनकी अल्मारी के अंदर रख दो."

अल्मारी में नंबरों की सारी पर्चियां और उनकी रकम रखकर मैं तेजी से सीढ़ियों से उतरती हुई नीचे आने लगी तो मां चिल्लायी, "इतनी जोर से मत उतराकर, कभी गिर पड़ेगी."

मां और डैडी में मुझे मां ज्यादा अच्छी लगती थीं. डैडी मुझे प्यार करते थे, मगर उन्हें अपने प्यार को दिखाने और जताने के मौके कम ही मिलते थे. ज्यादातर वे मुझे और सारी दुनिया को गालियां ही बकते रहते थे. और मां न कभी अपना प्यार दिखातीं या जतातीं थीं, लेकिन मेरा पूरा ध्यान रखती थीं और सबसे बड़ी बात यह कि कभी मुंह से गाली नहीं निकालती थीं.

जब मां ने मेरे सामने खाना परोसा तो मैंने अपनी आदत के मुताबिक कहा, "मैं यह नहीं खाऊंगी. . . मैं वह नहीं खाऊंगी. . . ."

"कुछ नहीं खाती, तभी तो तेरी हड्डी-हड्डी दिखायी देती है." मुझे याद आयी मुहल्ले के शोहदों की बोलियां, जो वे मुझे देखकर लगाते थे, "जरा अपनी हड्डियों पर गोश्त चढ़ा लो जानी, फिर प्यार करने लायक हो जाओगी."

मैंने खाना खत्म ही किया था कि डैडी घर में आये. उनकी भारी पदचाप से ही मैं अंदाजा लगा लेती थी कि डैडी आ गये हैं. मैं भागी हुई उनके पास गयी. उन्होंने हंसते हुए मुझे उठाया और तीन-चार चक्कर दिलाकर छोड़ दिया. डैडी सदा हंसते रहते थे.

डैडी को देखकर मेरा मन होने लगता था कि मैं सूकी से, जो हमेशा मुझे लड़ने के लिए उकसाती रहती थी, जाकर भिड़ जाऊं, क्योंकि मुझे पूरा भरोसा था कि डैडी उसके साथ संघर्ष में मेरी रक्षा करने को फौरन आगे आ जायेंगे. सूकी मेरी समवयस्का होने के अलावा मेरी अच्छी सहेली थी, लेकिन वह अजीब मूडी लड़की थी और जब लड़ने के मूड में आ जाती थी, तब मुझे ऐसे मारने बैठ जाती थी, जैसे मैं उसकी पुरानी दुश्मन हूं.

डैडी जब नंबर की रकम सिंडीकेट के ऑफिस में पहुंचाकर घर वापस लौटे तो मां ने उनसे धीरे से कहा, "नंबर का धंधा करनेवाला जिम गिरफ्तार हो गया है. . . तुम भी कोई दूसरा धंधा क्यों नहीं अपना लेते?"

"कौन-सा धंधा अपनाऊं मैं? बता, बता, बता. जबसे मेरा रंगाई का धंधा टूटा है, मैंने बहुत से ईमानदार काम करने की कोशिश की, मगर आजकल ईमानदारी के काम भी बिना बेईमानी किये नहीं मिलते. . . . और इस धंधे में कोई जोखिम नहीं है. जिम गिरफ्तार इसलिए हुआ, क्योंकि उसने पुलिस को हफ्ता देना बंद कर दिया था. मेरा बॉस बराबर पुलिस को हफ्ता देता रहता है. . . . जब तक पुलिस मेरे बॉस से हफ्ता खाती रहेगी, मुझे उससे कोई डर नहीं है. . . . नंबर (मटके) के इस धंधे में सारा गंदा काम हम काले निगर लोग करते हैं और उसकी मलाई ये अमीर गोरे लोग ले जाते हैं. वे कभी नहीं चाहेंगे कि यह धंधा बंद हो."

तभी डैडी ने देखा कि मैं उन दोनों की बात बड़े ध्यान से सुन रही हूं. उन्होंने मुझसे चिल्लाकर कहा, "अभी तक स्कूल नहीं गयी. स्कूल जा इसी वक्त."

घर के बाहर सूकी खड़ी थी. मुझे देखकर वह मेरे डैडी और अपने डैडी दोनों को गालियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछले दो दशकों में अमरीकी नीग्रो कथाकारों की जो नयी पीढ़ी उभरकर आयी है, उसमें अपने निपट यथार्थवादी दृष्टिकोण के लिए विख्यात लेखिका लुई एम. मेरीवेदर का स्थान अन्यतम है.

आम आदमी इसी आशा के साथ आगे बढ़ता है कि किसी न किसी दिन अच्छा वक्त आयेगा, लेकिन क्या वह अच्छा वक्त आता है? क्या वह आशा टूटती है?

देने लगी. वह अक्सर मुझसे कहती रहती थी कि सब बाप हरामी और शराबी होते हैं. मैं जानती थी कि उसका बाप शराबी है, मगर दिल का अच्छा था, और घर के किसी सदस्य को न मारता था, न गाली देता था. तो बाप तो महज एक बहाना था, सूकी का आक्रोश इस बात को लेकर था कि उसकी छोटी बहन फैनी को इसलिए इतनी कम उम्र में वेश्यावृत्ति करनी पड़ी है कि इसका बाप कुछ कमाता नहीं, और शराब के नशे में धुत्त पड़ा रहता है, और किसी दिन फैनी बीमार या दुर्घटनाग्रस्त हो गयी तो उसे उसके स्थान पर वेश्यावृत्ति करनी पड़ सकती है.

सूकी से ज्यादा उलझी नहीं, जानती थी, उससे बहस करूंगी तो वह खूंखार शेरनी की भांति मुझपर टूट पड़ेगी और मेरी खूब पिटाई करेगी.

मगर उसी रात को मेरे घर में भी वही दृश्य उपस्थित हो गया, जो सूकी के घर हमेशा मौजूद रहता था. मां और डैडी में झगड़ा हो रहा था.

"मुझे तंग मत कर, औरत. मैं वैसे ही परेशान हूं कि लोगों ने न जाने क्यों नंबर लगाना कम कर दिया है. फिर भी, किसी तरह गाड़ी तो चल रही है. हम लोग भूखे तो नहीं मर रहे हैं."

"अगर तुमने पहले जैसी कमाई शुरू नहीं की तो वह नौबत भी जल्दी आ जायेगी." डैडी चुप रहे.

"अब रिलीफवाले लोगों के पास जाने के अलावा, कोई और चारा हमारे पास नहीं है. कम से कम दो वक्त का अच्छा, भरपेट खाना तो मिलेगा."

"मैंने तुझसे एक बार नहीं, हजार बार कहा है औरत, कि मुझे रिलीफ नहीं चाहिए, मुझे सरकार की मेहरबानी पर नहीं जीना है."

"उसके अलावा कोई और रास्ता नहीं है."

"रास्ता है. है क्यों नहीं? मैं कल से दो-तीन क्लबों के लिए पियानो बजाने का काम शुरू कर दूंगा. हफ्ते में दस डालर की ऊपर से आमदनी हो जायेगी. तू घबरा मत औरत, धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा, मुझ पर विश्वास रख."

"बहुत विश्वास रखकर देख लिया." मां ने कहा.

मुझे मां की बात पर बड़ा गुस्सा आया. पता नहीं, डैडी पर उसका विश्वास क्यों नहीं है? मुझे तो डैडी पर पूरा विश्वास है.

डैडी ने पियानो बजाकर एक हफ्ते में नौ डालर कमाये, मगर दो-तिहाई अकेले अच्छे से रेस्तरां में खाने में खर्च कर दिये. डैडी शराब नहीं पीते, मगर अच्छा खाना खाने का उन्हें बड़ा शौक है, बल्कि यह उनकी एक मात्र कमजोरी है. मुझे यकीन है कि उनके पास ज्यादा रकम होती तो वे हम लोगों को भी—मां को, मुझे और मेरे भाइयों को भी—उन रेस्तराओं में ले जाते.

मगर मजबूरी थी.

उधर मां ने मजबूर होकर एक गोरी महिला के घर पार्ट-टाइम नौकरानी का काम शुरू कर दिया और चुपचाप रिलीफ के लिए अर्जी दे दी.

उस शनिवार को, जब मां, डैडी काम पर गये थे और भाई आवारागर्दी करने, दो पुलिस के आदमी धड़धड़ाते हुए हमारे घर में घुस आये और घर की तलाशी लेते हुए मुझसे पूछने लगे, "ऐ छोकरी, तेरे डैडी ने नंबरों की पर्चियां कहां छिपायी हैं?"

मैं इस आकस्मिक घटना से इतनी अधिक स्तब्ध हो गयी थी कि कुछ नहीं बोल पायी और सिर हिलाकर रह गयी.

वे लोग करीब दस-पंद्रह मिनट तक घर की तलाशी लेते रहे. तभी मैंने डैडी की पदचाप सुनी और दरवाजे की तरफ भागती हुई चिल्लायी, "पुलिस आयी है डैडी, आना मत."

पुलिस के एक आदमी ने मुझे धक्का देकर गिरा दिया. मैंने फुर्ती से उठकर वही किया, जो ऐसे अवसरों के लिए मां ने मुझे सिखाया था, मैंने कसकर उसके गुप्तांग पकड़ लिये. वह चीखने-चिल्लाने लगा.

तभी डैडी ने आकर मुझे उस आदमी से छुड़ाया और उसे जोर से धक्का देकर फर्श पर गिरा दिया. यह देखकर, दूसरे आदमी ने अपनी पिस्तौल निकालकर डैडी के सीने पर तान दी.

"मैं तुम्हारी पिस्तौल से नहीं डरता. पहले यह बताओ कि तुम्हारे पास मेरे घर की तलाशी लेने के वारंट हैं या नहीं?"

"हमें वारंट की जरूरत नहीं. जल्दी से नंबर की पर्चियां निकाल."

"पहले वारंट दिखाओ, आगे कुछ बात करो."

दोनों ने डैडी की तलाशी लेनी शुरू कर दी. जब एक आदमी ने उनकी जेब से एक लिफाफा निकाला तो मैं डरी, अब डैडी को जेल जाना ही होगा, मगर लिफाफे में बिजली का बिल था. मेरी जान में जान आयी, लेकिन उन दोनों ने डैडी को पकड़ लिया और साथ ले जाते हुए बोले, "भले ही हमें नंबर की पर्चियां न मिली हों, लेकिन पुलिस पर हमला करने का जुर्म तो तेरे ऊपर लग ही जायेगा."

डैडी रात को घर लौटे. उन्होंने बताया था कि उनकी गिरफ्तारी का नाटक सिंडीकेट से हफ्ते की रकम ज्यादा बढ़ाने के उद्देश्य से किया गया था. अब समझौता हो गया है और अब पुलिस कभी उन्हें परेशान नहीं करेगी.

"रिलीफवाले कल तुमसे बात करने आयेंगे." मां ने कहा.

डैडी के नथुने क्रोध से फड़कने लगे, मगर वे कुछ बोल न पाये.

"भूख से न मरने का यही एक रास्ता है, हमारे पास. तुम जो नंबरों से कमाते हो, उसे नंबरों में ही लगा देते हो. और पियानो की कमाई खुद अच्छा खाना खाने में खर्च कर देते हो. मैं और मेरे बच्चे कब तक भूखे मरते रहेंगे?"

"आज वह नौ नंबर आते-आते रह गया..."

"भाड़ में जायें तुम्हारे नंबर. मुझे अपना और बच्चों का पेट भरना है."

डैडी की सारी अकड़ न जाने कहां गायब हो गयी. अपने को गालियां सुनाते हुए सिर्फ इतना कह पाये, "जो..ठीक समझो...करो."

मैं खिल उठी. न जाने कहां का जोश और बल अचानक आ गया मुझमें. अगर इस वक्त सूकी मिल जाये तो मैं उसका कचूमर निकालकर रख दूं. □

प्रस्तुति : हरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गवाह

दिनेश त्यागी

वह गवाह था. कुछ लोग उसे पेशेवर गवाह भी कहते थे. मौहल्ले-पड़ोस में जब भी कोई झगड़ा-टंटा होता, गवाही में उसका नाम भी जरूर होता. आज भी एक मुकद्दमे में गवाही देने के लिए उसके पास न्यायालय से समन आये हुए थे. दस बजे न्यायालय पहुंचना था पर वह नौ बज जाने पर भी अपनी खाट पर आराम से पसरा पड़ा था.

"अरे भाई साहब, अभी उठे नहीं? तारीख भूल गये क्या?" कहते हुए वह व्यक्ति जिसने उसे अपनी तरफ से गवाह बनाया था, घर में भीतर आ पहुंचा. उसके साथ उसका वकील भी था.

उन दोनों को अंदर आता देखकर वह उठ बैठा और बोला, "अभी तो नौ ही बजे हैं, जल्दी क्या है. बैठो आराम से."

वकील और उसका वादी दोनों खाट पर बैठ गये. वकील साहब ने अपने ब्रीफकेस से दो कागज निकाले और गवाह को देते हुए कहा, "ये तुम्हारे बयान हैं. इन्हें अच्छी तरह याद कर लो."

उसने सरसरी निगाह उन कागजों पर डाली और बोला, "आप चिंता न करें. मुझे जो कुछ कहना हो, सब याद रहता है. फिर भी एक बात बताइए, क्या इन बयानों के आधार पर आप मुजरिमों को सजा दिलवा सकते हैं?"

"हां, हां, क्यों नहीं. तुम्हीं तो मौके के एकमात्र गवाह हो. तुम्हारी गवाही पर ही पूरा मुकद्दमा निर्भर करता है. अगर तुमने ठोक-बजाकर गवाही दे दी तो क्या मजाल न्यायाधीश की जो मुकद्दमा बरी कर दे." वकील ने कहा.

"और अगर मैं कुछ और बयान दे दूं तो?" कहते हुए वह मुस्करा दिया.

"फिर मैं ही क्या, कोई भी वकील क्या कर सकता है."

"वकील साहब, इन साहब ने आपको जो पैसे दिये हैं, वो इस चक्कर में दिये हैं कि आप इनके विरोधियों को सजा करवा देंगे. मगर आपके अभी दिये गये बयानों से यह गलत बात बिल्कुल साफ हो गयी है कि उन्हें सजा करवाना या बरी करवाना आपके नहीं, मेरे हाथ में है, इस सूरत में तो मुझे आपसे ज्यादा फीस मिलनी चाहिए?"

"यह आप जानें या यह जानें." वकील ने अपने साथ आये व्यक्ति की ओर इशारा करते हुए कहा, "आप लोग जल्दी बात कर लीजिए."

गवाह ने उन सज्जन की तरफ देखते हुए कहा, "भाटिया साहब, अगर आप मुझे दस हजार नहीं देंगे तो अपने वकील साहब को जो पांच हजार दिये हैं उन पर पानी फिरनेवाला है, और अगर आपके बनवाये हुए इस झूठे मुकद्दमे में उस डाक्टर परिवार के चारों डाक्टरों को सजा हो जाती है या मेरी गवाही हो जाने पर उनका आपसे समझौता हो जाता है कि वो अपना नर्सिंग होम आपके मकान से हटा लेंगे तो आपको लाखों का फायदा हो जायेगा. आजकल बहुत मोटी पगड़ी चल रही है."

"पर दस हजार तो बहुत ज्यादा हैं, वकील साहब से दुगने."

"वकील से दुगने-चौगुने मैं नहीं जानता. मैं तो सिर्फ आपको मिलनेवाली रकम में से एक छोटा-सा हिस्सा मांग रहा हूं."

"फिर भी दस तो बहुत ज्यादा हैं. मैं आपको पांच दे दूंगा." भाटिया साहब ने सौदा पटाना शुरू किया.

"आप चाहते हैं कि पांच हजार खर्च करके चार आदमियों को कैद हो जाये और आपको लाखों का फायदा. . .?"

"नहीं भाई, मैं किसी को कैद नहीं करवाना चाहता. मैं तो चाहता हूं कि किसी तरह भी मेरा मकान खाली हो जाये." भाटिया साहब ने सफाई दी.

"अगर सिर्फ मकान ही खाली करवाने की बात थी तो डाक्टर परिवार से मारपीट करने और पुलिस को पैसा देकर उन्हें ही बंद करवा देने की क्या जरूरत थी? उसके लिए तो आपको चाहिए था कि आजकल के हिसाब से जो पगड़ी चल रही है, उससे थोड़ा-बहुत कम पैसा उन्हें दे देते जिससे वे दूसरी जगह पगड़ी देकर अपना नर्सिंग होम चला लें. पर नहीं, आपकी नीयत खोटी है ना. . ."

"अच्छा छोड़ो ये सब बातें, ये बताओ कि जो बयान वकील साहब देने को कह रहे हैं वो पांच हजार में दोगे या नहीं? मैं इससे ज्यादा एक पैसा भी नहीं दूंगा." भाटिया साहब झल्लाकर बोले.

"अगर सिर्फ इन बयानों को एक बार अदालत में बोलने की ही बात है तो चलो निकालो पांच भी चलेंगे."

"तो चलो अब उठो, दस बजने वाले हैं." वकील साहब ने उठते हुए कहा.

गवाह उसी तरह बैठा-बैठा ही वकील से पूछने लगा, "वकील साहब, आप पैसे मुकद्दमा जितवाकर ही लेते हैं या पहले. . ."

"पहले. . ."

"तो फिर मुझ गरीब को बिना पैसे दिलवाये क्यों उठने को कह रहे हैं." गवाह ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंसते हुए कहा.

वकील के कहते ही भाटिया साहब पास ही में अपने घर गये और आते ही गवाह की जेब का बोझ बढ़ा दिया. जेब का वजन बढ़ जाने के बाद गवाह ने तैयार होने में पांच मिनट भी नहीं लगाये. फटाफट तैयार होकर तीनों न्यायालय की तरफ चल दिये.

पेशकार के मुंह से अपने नाम की पुकार सुनते ही वह न्यायालय में घुस गया. अंदर उसका वकील, सरकारी वकील और प्रतिवादी दल का वकील तथा चारों मुजरिम पहले से ही खड़े थे.

उसके वहां पहुंचते ही सरकारी वकील ने पूछा, "तुम्हारा नाम?"

उसने अपना नाम बता दिया.

"28 सितंबर को सुबह 11 बजे तुम कहां थे?" सरकारी वकील ने पूछा.

"जी, इन डाक्टर साहब के नर्सिंग होम में." गवाह ने मुजरिम डाक्टर की तरफ हाथ से इशारा करते हुए बताया.

"वैसे तुम करते क्या हो?"

"जी नौकरी करता हूं."

बीच में ही प्रतिवादियों का वकील बोल पड़ा, "तो तुम 11 बजे नर्सिंग होम में क्या कर रहे थे? उस समय तो तुम्हें अपनी नौकरी पर होना चाहिए था?"

"हुजूर, वकील साहब, उस दिन मेरी तबीयत कुछ खराब थी. इसलिए मैं डाक्टर साहब से दवाई लेने गया था."

"अच्छा बताओ उस दिन झगड़ा कैसे हुआ? क्या इन डाक्टरों को तुमने मिस्टर भाटिया की पिटाई करते देखा था?" सरकारी वकील ने पूछा.

"हां हुजूर, ये बड़ेवाले डाक्टर साहब के हाथ में डंडा था और ये भाटिया साहब को डंडे से मार रहे थे."

मुजरिमों का वकील फिर मैदान में कूदा, "अच्छा, जब मारपीट हो रही थी तो क्या सब लोग चुप थे, कोई किसी से गाली-गलौज नहीं कर रहा था. न ही चीख-चिल्ला रहा था."

"जी शोर-शराबा तो बहुत हो रहा था."

"शोर क्या इतना था कि आवाज नर्सिंग होम से बाहर जा रही थी?" मुजरिमों के वकील ने उसकी तरफ देखते हुए कहा.

"अरे साहब, मैंने बताया न मैं दवाई लेने के लिए डाक्टर साहब के पास अंदर मौजूद था. फिर मैं कैसे बता सकता हूं कि आवाज बाहर जा रही थी या नहीं? यह बात तो वही बता सकता है जो उस समय बाहर खड़ा हो."

गवाह के इस व्यंग्य से अपराधियों का वकील सकपका गया. उसने न्यायाधीश महोदय से गवाह से प्रति-प्रश्न करने की अनुमति मांगी. अनुमति मिल गयी पर न्यायाधीश

आदमी की सबसे बड़ी पहचान है उसमें मौजूद आदमियत... फिर चाहे वह अदना-से-अदना नौकरीपेशा हो या सेठ-साहूकार या वकील-जज. मगर उसमें आदमियत है या नहीं इसकी पहचान कैसे हो...? यही पहचान करवा रहे हैं युवा रचनाकार बिनेश अपने इस गवाह के माध्यम से—

महोदय ने आगे की सुनवाई के लिए अगली तारीख निश्चित कर दी. गवाह ने देखा कि आज सरकारी वकील और भाटिया साहब का वकील दोनों बहुत खुश थे.

न्यायालय के उस कक्ष से बाहर आते ही भाटिया साहब से उनके वकील ने कहा, "बहुत खूब, मजा आ गया गवाही में. क्या ठोककर बोला हमारा गवाह. अब तो मुकद्दमा पूरी तरह हमारी पकड़ में है."

गवाह भी खुश होता हुआ बोला, "आपका पैसा वसूल हो गया न भाटिया साहब?"

"हां भाई, मजा आ गया. अब आगे का सारा काम तो वकील साहब ही संभाल लेंगे."

आज अगली तारीख का दिन था, जबकि प्रति-प्रश्न होने वाले थे. वह सुबह दस बजे से पहले ही न्यायालय पहुंच गया. अपना नाम पुकारते ही वह न्यायाधीश महोदय के सामने उपस्थित हो गया. प्रतिवादी के वकील ने उससे सवाल पूछने शुरू किये:—

"आपने बताया कि झगड़े के समय आप वहां पर पहले से ही उपस्थित थे. आप यह बताइए कि झगड़ा शुरू कैसे हुआ?"

"वकील साहब, मैं इन बड़ेवाले डाक्टर साहब के पास बैठा था. ये मेरा चैकअप कर रहे थे. उसी समय भाटियाजी उस कमरे में आये और डाक्टर साहब से बोले, 'बताओ, तुम मेरा मकान शराफत से खाली करोगे या नहीं?' इसी बात को लेकर कहा-सुनी हो गयी और नौबत मारपीट तक आ गयी."

"इन बड़े डाक्टर साहब के हाथ में डंडा था और इन्होंने भाटिया को डंडे से मारा, यही कहा था न तुमने अपने बयान में?"

"जी हां."

"ऐसी क्या बात कही थी भाटिया ने जो डाक्टर ने डंडा मारा?"

"डाक्टर साहब ने मकान खाली करने से मना कर दिया था. इंकार सुनते ही भाटिया साहब ने डाक्टर साहब को गिरेबान से पकड़कर बुरी तरह झिंझोड़ना शुरू कर दिया. बस, डाक्टर साहब ने झट से डंडा उठाया और भाटिया साहब को मारने लगे."

"जब भाटिया साहब ने डाक्टर को गिरेबान से पकड़ रखा था तो डाक्टर डंडा कहां से उठा लाया?"

"जी, वो डंडा तो डाक्टर साहब की मेज पर हमेशा ही पड़ा देखा है मैंने."

"क्या डाक्टर डंडे के सहारे चलता है जो हर समय डंडा इसके पास रहता है?"

"नहीं जी, वो ऐसा डंडा कहां था जिसके सहारे कोई चल सके. वो तो वैसा डंडा था जैसे रजिस्टर पर लाइन खींचने का होता है. छोटा-सा, फुटे से थोड़ा-सा बड़ा होगा."

"दैट्स ऑल." कहते हुए डाक्टर के वकील ने न्यायाधीश महोदय की तरफ मुस्कराकर देखा.

गवाह न्यायालय से बाहर निकला तो भाटिया और उसका वकील उसके पीछे-पीछे लपककर आये और उसका कंधा पकड़कर हिलाते हुए भाटिया साहब ने कहा, "किसने, कहा था तुम्हें इस तरह के बयान देने को?"

"मेरे मन ने."

"तो मुझसे पैसे क्यों लिये थे?"

"वो तो मुझे जरूरत थी उन पैसों की. और तुम्हारे पैसे तो मैंने पिछली तारीख पर ही पूरे वसूल करवा दिये थे न. तुम ही तो कह रहे थे, अब आगे का सारा काम तो तुम्हारा वकील संभाल लेगा. अब संभलवा लो."

"आज तुमने ऐसे बयान दे दिये हैं, अब मैं क्या खाक संभालूंगा."

"भाटिया साहब, आपके इन पांच हजार रुपयों की वजह से मैं अपने मोहल्ले के इन अच्छे-भले, शरीफ और ईमानदार डाक्टरों को निकालकर पूरे मोहल्लेवालों को परेशानी में डाल दूंगा यह कैसे सोच लिया आपने? मैं जानता था, तुम डाक्टरों को भगाने की चाल चल रहे हो. इसीलिए मैंने तुम्हारे कहते की गवाही में अपना नाम लिखवा दिया था." कहकर वह वहां से चला गया.

उसके जाने के बाद भाटिया अपने वकील से कह रहा था, "साला कमीना, कितनी ऊंची-ऊंची बातें बना गया. हमसे तो पांच मिले... पर लगता है डाक्टरों से दस खा गया." □

● 1/5497, बलबीर नगर (एक्स), शाहदरा, दिल्ली-32

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा है जिसमें जी रहे व्यक्ति का कोई चरित्र न हो . . . उसकी कोई चरित-गाथा न हो. . . . संभवत नहीं? और हर आम और खास आदमी की जिंदगी को उकेरा है विशेषकर बंगला कथाकारों ने.

मनोज बसु बंगला के सुपरिचित कथाकार हैं. यहां प्रस्तुत है उनके उपन्यास 'निशि कुटुंब' का संक्षिप्त रूपांतर. इस उपन्यास को साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया जा चुका है और इस पर प्रसिद्ध बंगला फिल्म 'रात्रेर अतिथि' का निर्माण भी हुआ है.

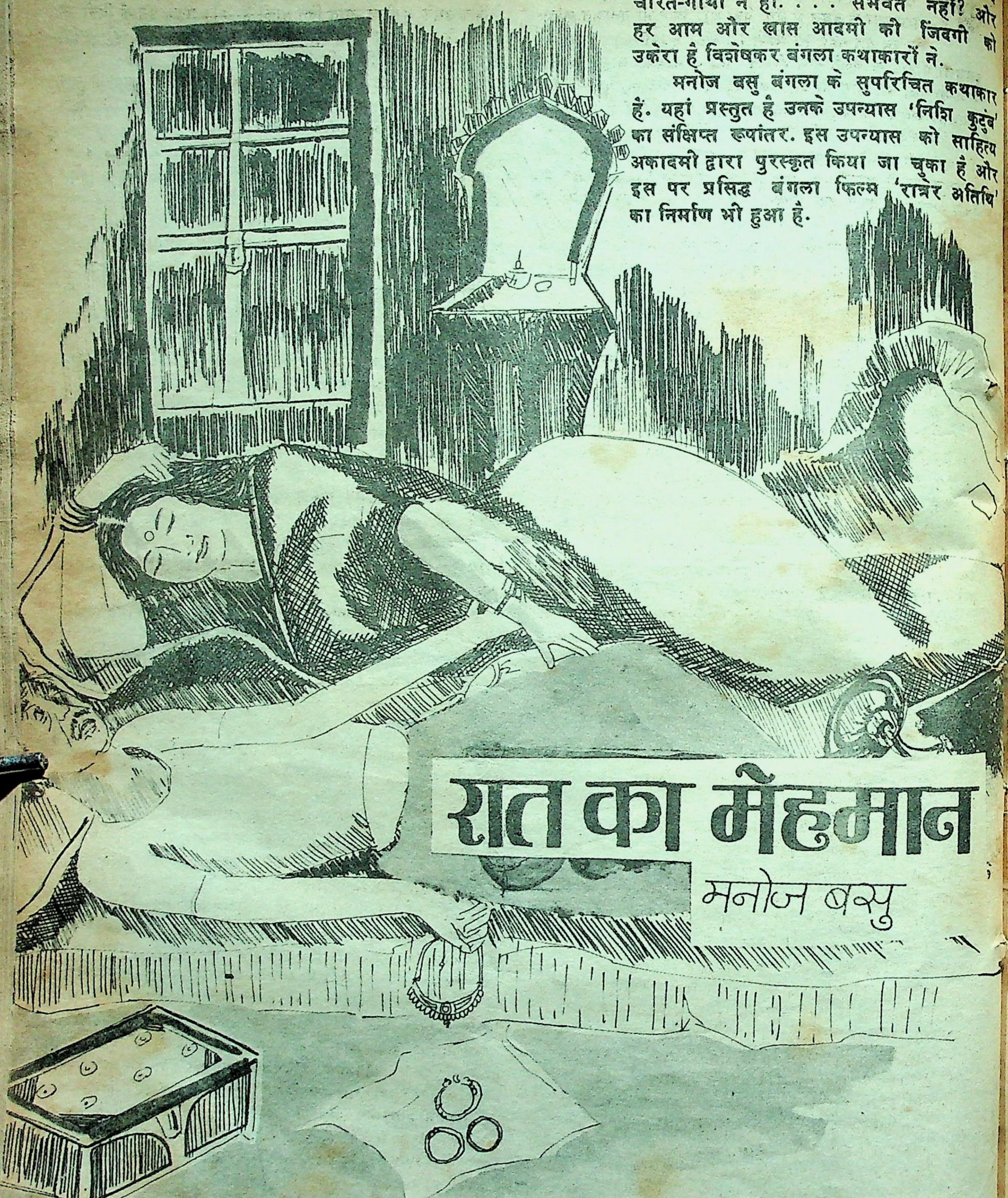

रात का मेहमान

मनोज बसु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज रात के काम का कारीगर था साहब. लेकिन वह खाट पर आशालता के बंधन में बंधा पड़ा था. फिर भी गनीमत कहिए कि वह यह नहीं देख पायी कि कैसा रूपवान है वह पुरुष! दूधघुली गोराई के चलते नाम ही पड़ गया—'साहब'. साहब बिल्कुल लाश-सा पड़ा था, सांस भी बहती थी या नहीं! जैसे अजगर ने लपेट लिया हो. अजगर के चंगुल से इसी तरह बचा जा सकता है. जोर-शोर किया कि गये. चोट कर बैठेगा.

एक बार आधी रात को वास्तव में यही हुआ था. कोठी के पोखरे में साहब मछली मारने गया था. फूलहारा गांव में निलहे साहबों का सेवार-भरा एक बहुत बड़ा पोखरा. वंशी में मेढक लगाकर बांध की झाड़ियों में खड़ा साहब उसे पानी में नचा रहा था. ऐसे में पांव में ठंडे स्पर्श का अनुभव हुआ. साहब थिर खड़ा. सांप धीरे-धीरे दोनों पैरों पर से होकर उन्हें जड़ या ऐसा ही कुछ सोचकर निकल गया. वह निकल गया, साहब फिर भी अकंप खड़ा. आज भी वही मुसीबत.

उहू, उससे ज्यादा. सांप से युवती की चपेट कहीं कठिन होती है. यहां सिर्फ चुपचाप पड़े रहने से काम नहीं चलने का, हलके-हलके बदन पर उंगलियां फेरनी होंगी, कुछ ऐसे कि उंगलियों की नोकों से प्यार-आदर टपका पड़ता हो. और मुंह में निंदाई बीड़ी, जब जैसी जरूरत, धुआं फूंकते रहो. शिकार कहिए या मुवक्किल—वह स्त्री माजरा कुछ समझ नहीं पाती. अपने को निढाल करके काम में और सहूलियत कर देती है. जोंक पकड़ता है तो यही हालत होती है. दो मुंह से खून पीता रहता है, पता चलता है आपको? जख्म में सुड़सुड़ी-सी होती है, आराम लगता है. दोनों हाथों को जोंक के दो मुंह जैसा बनाना पड़ेगा, उस्ताद का कहा है.

साहब के दोनों ही हाथ अभी उलझे थे. बायें हाथ की उंगलियां उधर सहला रही थीं और इधर दायें हाथ ने इसी बीच चंद्रहार, नेकलेस, कंगन आदि एक-एक करके उतार लिए. बदन खाली हो गया, मगर उसे कुछ पता नहीं. आवेश में आंखें बंद किये पड़ी रही. इतना महीन काम हाथ का. यह केवल साहब के बूते की बात थी और शायद तब के कोई-कोई पुरनिये ही ऐसा कर सकते थे. अब यह सिफत रही नहीं. तकलीफ उठाकर कोई कुछ सीखना नहीं चाहता. छोटी निगाह-सामने जो मिल गया, बटोरकर चलते बने. इसीलिए काम की भी कोई इज्जत नहीं रही. चोरी-छिछोरी. उन दिनों चोर का मतलब था चतुर. चोरी माने चातुरी.

चोरी बहुत बड़ी विद्या है. यों ही इतना बड़ा नाम नहीं पड़ गया. बड़ी कठिन विद्या है. इसमें पारंगत होने के लिए उस्ताद से बदस्तूर सबक लेना पड़ता है. सफेद कागज पर स्याही की लकीरें खींचकर बी.ए. एम.ए. जैसा इम्तहान नहीं. साहब का गुरु था पंचा वाइटा. इम्तहान में कामयाब होने पर वाइटा खिताब मिला था. उफ, कितना सख्त इम्तहान. खैर, अभी छोड़िए, उस इम्तहान की बात.

साहब वैसा ही निर्जीव-सा पड़ा. काम बन गया. फिर भी हिलने डुलने की गुंजाइश नहीं. वही मछली मारते हुए पैरों पर सांप के चढ़ जानेवाली स्थिति. जब तक वह युवती अपने-आप बाहों का बंधन नहीं खोल देती, तब तक इसी तरह पड़ा रहना पड़ेगा. वही हुआ आखिर, होना ही था—आशालता ने हाथ खींच लिया और संभलकर सो गयी. मौके से साहब झट उठ बैठा. दरवाजे का हुड़का खोल रखा था. दबे पांव कमरे से बाहर निकला. धीरे-धीरे, घबराने की बात न थी. बाहर निकला और घड़ी भर में हवा हो गया.

युवती आवेश में विह्वल थी. जरा देर तक जब किसी तरह की आहट नहीं मिली तो जबान खुली. फुसफुसाकर पूछा, "सो गये?" आंखें खोलीं. कलेजा धक से रह गया, याद आ गया— ससुराल कहां है यह, यह तो पीहर है. एक-एक करके सारी बात याद आयी. आज ही दोपहर को अपनी ससुराल नवग्राम से जुड़नपुर चली आयी है. शंकरानंद घाट पर उतारकर खुलना गया है. कह गया है लौटते हुए यहां उतरेगा. लेकिन उसके अभी छः-सात दिन बाकी हैं. और महज इन के दिनों की आदत से आशालता आप ही रात एक पराये पुरुष को वही आदमी समझकर. . . छिः छिः छिः!

यह वाकया है या सपना है एक अजीब-सा? उठकर जल्दी से बत्ती जलायी. दरवाजा हा किये पड़ा था. घर में कैसी तो एक गंध-सी. मीठी-मीठी. देखा. खिड़की के नीचे सेंध. . .

"चोर, चोर! चोर घुसा है. . ."

नौकर-चाकर दौड़े आये. किधर गया चोर? कितनी देर हुई भागे? क्या-क्या लिया?

अब आशालता को खयाल आया, कमर का चंद्रहार गायब है, गले का नेकलेस भी नहीं है. एक हाथ का कंगन भी नदारद.

गहने किस तरह से उतरे, यह तो मरते दम भी कह नहीं सकती. जो जी में आया, मां से कहती गयी, "कंगन खींचते ही तो मैं अचकचाकर जग गयी. कौन-कौन किया कि दौड़कर चंपत. पता नहीं चलता तो एक भी गहना बच सकता था भला?"

गहनों का गम था, मगर उससे भी ज्यादा गम इस बात का था कि औरतों की जिंदगी का जो सबसे बड़ा गहना है, एक अचीन्हा पुरुष उसी का थोड़ा-बहुत तहस-नहस कर गया. थोड़ा-बहुत तो जरूर ही. और आशालता ने ही यह होने दिया. खुद से उसे अपने कलेजे के करीब-करीब खींच लिया. . .

खैर, साहब टाट ओढ़े डोंगी पर सो रहा था और वहां से कोई तीस हाथ के फासले पर बांध के रास्ते चौकीदार तेजी से थाने जा रहा था. लोग चोर की तलाश में चारों तरफ खाक छान रहे थे, इस तरफ कोई ताक भी नहीं सकता था. शुबहा हो भी तो क्या. नाव में गहने का एक टुकड़ा भी न मिलता. वह सब तो नदी के पेट में पड़ा है. सेंध काटने के समय वंशी साहब के पास खड़ा मदद कर रहा था. साहब जब घर के अंदर घुस गया तो वह आड़ में दुबक गया. इनकी अपनी भाषा में इस पद को डिप्टी कहते हैं. माल लेकर बाहर निकला कि डिप्टी ले-देकर रफूचक्कर. कारीगर का काम यहीं खतम अब उसकी छुट्टी. अब जो करना-धरना है, सब डिप्टी के जिम्मे.

अंगोछे में गहने की पोटली बांधकर वंशी ने उसे नदी में फेंक दिया. सही निशान है. पोटली से पतली एक डोरी बंधी है, जिसका एक सिरा नदी किनारे किसी झाड़ी से बंधा है. जब चाहे, डोरी खींचकर माल निकाल लेगा.

लौटते ही खुदीराम से साहब की आंखें मिलीं. बेहद खुश दोनों जने. खुदीराम का पाठ जारी था—तपोधन नारद श्रीकृष्ण के वक्षस्थल में शोभित. . . कहते-कहते खुदीराम ने अपनी छाती पर जोरों की एक थाप जमाई. .मतलब कि खुदीराम का काम देख लिया न. समझो कि किस कोटि का खोजी हूं मैं. खोज देनेवाले का बखरा आमतौर से अगर रुपये में एक आना होता है, तो खुदीराम का होता है डेढ़ आना. काम भी पक्का करता है, जरा भी भूलचूक नहीं होती. जैसे आज का काम उसका.

आशालता गहनों से लदी-फदी अपने पीहर आयी है. यह सुराग डोंगी में बैठे-बैठे तो नहीं लग सकता था. खोजी एक-एक बात की खबर ले आया. किसी और से सुनी हुई नहीं, खुद लाया. ज्योतिषी बनकर उसका हाथ देखकर लौटा. कहा, करना हो सो आज ही, देर होने से नहीं बनेगा. विलंब से आदमी को बुद्धि-विवेक आ जाता है. आज घर के सब लोग मद से चूर हैं. टोले के लोगों को गहना-गुरिया दिखा रहे हैं. एक-दो दिन में उतारकर सहेज देंगे. मित्तिर यहां के धनी आदमी हैं. हो सकता है उनके लोहे के संदूक में रख आवें. वैसा होने पर सेंध मारने से काम नहीं चलेगा. बदस्तूर बम-बंदूक की जरूरत होगी. चोरी नहीं डकैती करनी होगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul K

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पहर रात गये खुदीराम फिर एक बार जाकर अंतिम खबर ले आया. नहीं, घर में कुत्ता नहीं है. घर में बाहर से आम अतिथि भी नहीं आया. फिकर कुछ है तो मूल मुवक्किल की ही —आशालता है बड़ी तर्रार वैसे. ससुराल से लौटी है. अब खुद ही सोच देखो साहब.

सारा अता-पता समझाकर खुदीराम डोंगी की टापर में लालटेन लटकाकर निश्चिंत हो महाभारत खोलकर बैठ गया. उद्योग पर्व.

बड़े ठंडे दिमाग का विचार. उस्ताद की मनाही है, वैसी स्त्री के कमरे में हर्गिज मत दाखिल हो. और कहीं वह अनब्याही, क्वांरी हो तब तो और भी नहीं. भूल से जा भी पहुंचो तो वैसी स्त्री का बदन मत छुओ. हर्गिज नहीं, उस्ताद की कसम, क्वांरी का बदन अपवित्र होगा, यह उतनी बड़ी बात नहीं. बात है कि जब तुम काम में उतर पड़े हो, तो उस वक्त तुम पुरुष नहीं हो. बल्कि आदमी ही नहीं हो. काम करने की कल हो महज. उस कल के दो आंखें हैं और उन आंखों में जलती हुई निगाह है. मगर औरत के बदन पर नहीं होगी, बदन पर जहां जो चीज है, उस पर होगी केवल. मुसीबत है दूसरी तरफ से. अंग-अंग में जवानी की बिसात बिछाए वह औरत भेंट देने को उन्मुख है. बदन पर पहले पुरुष की छुअन पाने से खैरियत है भला! लमहे में जग जायेगी.

गहनों का गम था, मगर उससे भी ज्यादा गम इस बात का था कि औरतों की जिंदगी का जो सबसे बड़ा गहना है, एक अचीन्हा पुरुष उसी का थोड़ा-बहुत तहस-नहस कर गया थोड़ा-बहुत तो जरूर ही. और आशालता ने ही यह होने दिया. खुद से उसे अपने कलेजे के करीब खींच लिया...

विचार का दूसरा पहलू भी है. क्वांरी लड़की के बदन पर गहने भी क्या होंगे आखिर.

लेकिन विवाहिता की बात और है. उसे एक बात में खारिज नहीं किया जा सकता. अब वह पुरुष-संग की आदी हो गयी है. ब्याह के बाद से जेवर भी खूब आ जुटे हैं. बदन में टकसाल समझो. बने तो उस टकसाल के रुपये उड़ा लेने की मनाही नहीं सोचना. यह है कि उड़ाते बनेगा या नहीं. क्योंकि ऐसी भरी जवानी वाली औरत ज्यादा सोती नहीं. छटपट करती रहती है. हां, नयी ब्याही औरत के कमरे में मजे से घुस सकते हो, यदि गुरु का आशीर्वाद है, काली मैया और षडानन कार्त्तिक की वैसी कृपा हो, अगर ज्ञान-गुण हों. सुई गिरने जितनी भी आवाज तुम्हारे चलने-फिरने से नहीं होनी चाहिए. सेंध काटते वक्त भुरभुरा मिट्टी न गिरे, डिप्टी उसे अपनी हथेली पर संभालकर हटाये. आहिस्ता-आहिस्ता. सोयी हुई औरत के पास जाओ. खास स्थिति में बगल में सो जाओ. जैसा उसका पति करता है. हल्के-हल्के बदन पर हाथ रखना होगा. सहाते हुए, आवेश न जाता रहे उसका. यह संदेह न हो जाये कहीं कि कोई गैर है. बड़ा कठिन काम है. तुम भरी जवानी के जवान हो, मगर मन जरा न डोले. किसने कहा कि युवती नारी है, महज एक मुवक्किल है. नींद का भी लेखा लगा लेना होगा. कालाकाल का भी विचार है.

कितना विचार, कितनी व्यवस्था करनी पड़ती है. तब कहीं निर्विघ्न कोई काम होता है. यों ही चोरी नहीं होती. चोरी इतनी सहज विद्या नहीं है. सहज होती तो दुनिया के सारे लोग हाथ में सिंधकाठी लिए निकल पड़ते. इतने दांव-पेंच से बेनामी चोरी के रास्ते नहीं जाते.

मोड़ से मुड़ने पर खुदीराम ने वंशी से सवाल किया, "कहां तक का सफर है?"

वंशी ने कहा, "सबसे पहले फुलहाटा. बलाधिकारी जी के पास माल तो पहुंच जाये. उसके बाद वे जैसा कहें."

साहब की भी यही राय थी. माल जब बलाधिकारी के पास पहुंच जायेगा, तभी समझेंगे कि रोजगार के रुपये गांठ में आये. माल गलाना, बेचकर रुपया-पैसा बांट देना, यह सब उनका काम है. सदा के धर्म-भीरु —जब दरोगा थे, तब भी. एक पाई का हेरफेर नहीं.

गहनों को बलाधिकारी देख-भालकर अंदर रख आये. लौटकर साहब की तारीफ की, "तुम पक्के कारीगर हो. इतनी कम उमर में ऐसा कमाल मैंने अपने जमाने में नहीं देखा. हो क्यों न! आखिर सीखा कितने बड़े उस्ताद से है! तुम अच्छी भूमि हो, रेलगाड़ी के डब्बे में पहली ही नजर में मैं ताड़ गया था. और उसी वक्त मैंने तय कर लिया कि ऐसी प्रतिभा को बरबाद नहीं होने दूंगा. वही हुआ भी. अभी और कितना होगा जाने. आज मुझे बेहद खुशी हो रही है."

गहनों के इंतजाम में लगभग एक बेला बिताकर बलाधिकारी वापस लौटे. खिला हुआ चेहरा—एक बार कहा, "मैं कहता हूं जल्दी भी क्या है. अभी पांच-दस दिन आराम से काटो. मछली मारो, ताश-पांसा खेलो. उधर खुदीराम कोई अच्छा दिन ढूंढ़ने में लग पड़ा. मां का नाम लेकर अच्छी साइत में निकल पड़ना. अभी सुगुनिया दिन हैं. दोनों हाथों बटोरो."

दोपहर-रात, घर-बाहर घुपघुप अंधेरा. दरवाजे की तरफ पीठ किए पंचा बाइटा बैठकर बातें कर रहा था. सामने साहब. बोलते-बोलते बाइटा सहसा चुप लगा गया. फुसफुसाकर बोला, "आदमी. . ."

साहब ने पैनी निगाह उठाकर बाहर की तरफ ताका, कहा, "देख तो नहीं रहा हूं."

पंचा बाइटा झुंझला उठा, "तुम्हारी आंखें हैं कि देखोगे? दुनिया-भर के लोग अंधे हैं. वह आदमी झप्पर की ओलती से अब घेरे की तरफ जा रहा है. जब नजर के सामने था, तुम्हें तभी नहीं दिखायी पड़ा तो अब क्या खाक देखोगे?"

और मजा यह कि पंचा एक बार के लिए भी अपनी जगह से नहीं हिला. घूमकर देखने की अभी भी उत्सुकता नहीं थी. पंचा की पीठ पर भी गोया दो आंखें लगी हुई हों. . . .

आखिर एक दिन साहब ने खोलकर ही कहा, "कुछ गुण-विद्या बतानी पड़ेगी. बड़ी उम्मीद लेकर इतनी दूर से आया हूं."

पंचा ने उड़ा ही दिया एक बारगी. "विद्या? वह सब तो कब की गुम हो गयी. अब कुछ भी नहीं है. होती तो अपमान सहकर इन लोगों के साथ पड़ा रहता? तुम चल दो. अब मत आना."

"यह तो मैं नहीं सुनने का. खाली हाथ क्यों जाने लगा. पहले कुछ दीजिए, तब जाने की बात."

बाइटा ने बिगड़कर कहा, "जबरदस्ती हासिल करेगा?"

"मेल से आपने दी कहां."

पोपले मुंह से पंचा हंसा. हुक्का रखकर लेट गया. कहा, "रात हो गयी. लौट जा. फिर किसी दिन तेरी सुनूंगा."

पोटली बना लेट गया. सीधे लेटने की शक्ति नहीं थी. बाइटा के होंठों पर हंसी देखकर साहब को बड़ा उत्साह आया.

पंचा ने कहा, "सूर्य की आवाज से भी कान चौकन्ना हो और पहाड़ गिरने से भी पता न चले, शिक्षा इसका नाम है. वैसा पक्का आदमी अब नहीं मिलता. तू वैसा होगा साहब. मैं जिसमें तेरी कामयाबी देखकर आंख मूंद सकूं."

साहब गहरी नींद में सो रहा था. काफी रात गये बाइटा अपनी चौकी से चुपचाप उतरा. उसके बदन पर हाथ रखकर कहा, "चल."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहब हड़बड़ाकर उठा, कहा, "कहां. कहां?"

"गुरु माना है तो तर्क मत कर. जाने को कह रहा हूं. चल."

आगे-आगे पंचा रास्ता दिखाता चला. फुसफुसाकर बोला, "खाली जगह से बचकर चलना." पांव के नाखून से थोड़ी-सी मिट्टी कुरेदकर बाइटा मंत्र पढ़ने लगा. बिड़बिड़-बिड़. मंत्र पढ़कर उसने मिट्टी को घर की तरफ छींटा. कहा, "जा. सब सो गये. डरना मत. डर की बात होती तो साथ लाता तुझे?"

काम करके साहब लौटा. गुरु-शिष्य दोनों घर की चौहद्दी छोड़कर तेजी से चल दिये. बांस की असंख्य झाड़ियां.

"असली परीक्षा अब होगी, घर में कितने लोग हैं?"

साहब ने कहा, "दो. घर में दो तरह की सांस थी. लेकिन दोनों के दोनों आदमी नहीं हैं. उनमें से एक बिल्ली है."

पंचा खूब प्रसन्न हो उठा. पीठ पर हाथ फेरकर कहा, "शाबाश. आदमी एक ही है. आदमी ने जब अंदर जाकर दरवाजा लगाया तो वंसी-बिट्टी से मैं तुम्हारी कसौटी करने की सोचता रहा. अच्छा, औरत है कि मर्द?"

"औरत है, सधवा.

पंचा ने कहा, "मर्द क्यों नहीं, और सधवा कैसे बता रहा है?"

"करवट बदलने से चूड़ियां बजती हैं."

"वाह, बहुत खूब. जीवन के अंतिम दिनों में आज मुझे बेहद खुशी है कि इतने दिनों में एक लायक लड़का मुझे मिला."

इतना खुश हुआ वह कि पहला पाठ साथ-ही-साथ शुरू कर दिया. .

साहब के सिर से पहाड़ का भार उतर गया. पीठ पर स्नेह की एक थपकी देकर पंचा ने कहा, "बेटे, तेरी हर कसौटी हो गयी. अब तू पूरे जोर के साथ काम में जुट जा. तू सिंधकाठी के लिए बेताब है, गुरु दक्षिणा चुकाकर उसकी इजाजत ले ले. राजा का महल हो, फकीर का डेरा, माछी की तरह निडर पैठ जा. बीस जने मिलकर भी तुझे रोक नहीं पायेंगे."

खुशी से रोमांचित होकर साहब ने पूछा, "तो दक्षिणा की आज्ञा हो, स्था. . हे षडानन साक्ष रहो, साक्षी रहो, साक्षी रहो काली मैया, साहब जान देकर भी गुरु का ऋण चुकायेगा."

बाइटा ने कहा, "क्षेत्र और पात्र, मैं सब बता देता हूं. मेरे दो बेटे हैं—तू जिस दिन माल लाकर मेरे हाथ देगा उसी दिन से मैं तुझे सबसे बड़ा बेटा मान लूंगा. शागिर्द है, गुरु का मान रखना. तुमसे मेरा दावा है."

उसके पांव छूकर गदगद स्वर से साहब ने कहा, "जी हुक्म हो. . ."

और दावे की बात जो सुनी तो साहब को काठ मार गया. क्षेत्र यही घर. बाइटा का. पात्र भी और कोई नहीं. छोटी बहू सुभद्रा. उसके दोनों हाथ से चूड़े खोलकर ला देना होगा. यही गहना देकर ससुर ने बहू का मुंह देखा था. उपहार की वही चीज वापस चाहिए थी.

देखते-देखते अंत में एक सूझ आयी दिमाग में.

सुभद्रा खा-पीकर आ रही थी. साहब उसके पीछे लग गया. सुभद्रा ताला खोल कोठे में गयी. लालटेन जलायी, चौकी के नीचे झांका, ठीक तभी साहब कोठे में घुस गया. निश्चिंत हो सुभद्रा ने कोठे की सांकल लगा ली. बदन के कपड़े-लत्ते उतारकर हलकी होने लगी. हाथों से चूड़ खोलकर डिबिया में भरकर जतन से तकिए के नीचे रख दिया और सो गयी.

सुबह जगी और चूड़ पहनने गयी तो तकिये के नीचे से सुभद्रा को वह नहीं मिला. घर में कोहराम मचा दिया उसने.

उसकी आंखों के आंसू साहब के हाथ पर चुए थे—सुभद्रा की वह रुलाई चमड़े को छेदकर साहब की नस-नस में दौड़ रही थी. साहब हठात बोल उठा, जैसे उसने बाइटा से कहा था, "आपको चूड़ मिल जायेगा भाभी. मेरी जिम्मेदारी रही."

सुभद्रा ने पलटकर देखा. साहब जा चुका था.

"दक्षिणा हो गयी. अब आशीर्वाद दे दीजिए कि मैं ऐसा काम कभी न करूं, जिसमें आपकी शिक्षा की निंदा हो."

उसके सिर पर हाथ रखकर बाइटा ने कहा, "तू मुझसे बहुत आगे निकल जायेगा. अभी ही आगे निकल गया है, मेरे गुरु चिड़िया के पेट के नीचे से अंडा उठा लाये थे, चाहेगा तो तू भी ला सकेगा."

बाइटा के पैरों पर हाथ रखकर साहब ने कहा, "लाऊंगा. यहां से जाने के पहले आपको वह भी दिखा जाऊंगा. आशीर्वाद दीजिए."

सांझ ढल गयी. साहब नहीं आया. पंचा और सब्र नहीं कर सका. थोड़ी दूर चलकर हांफ उठा. रास्ते में घास मिली. लेट गया. कौन आ रहा है? जिसकी तलाश थी—वही, साहब!

"क्यों उस्ताद?"

"मैं अब जिंदा नहीं हूं. मर गया. जिंदा होता तो मेरी नजर के सामने से चीज कभी गायब हो सकती. फर्श की माटी खोदकर कोई छोटी बहू का वह गहना चुरा ले गया, जो तूने गुरु दक्षिणा में दिया था. . ."

गर्व के साथ छाती पर हाथ मारकर साहब ने कहा, "जिसे आप जैसा गुरु मिला है, उसके सिवा ऐसा बारीक काम और कौन कर सकता है? सात-आठ दिन तक थोड़ा-थोड़ा करके खोदा. कल तीसरे पहर काम फतह हुआ. माल को कपड़े में छिपाकर मैं आपके सामने से निकल गया. .. अब मैं इसे दान ही करूंगा. यह चूड़ा जिसका है मैं उसे ही दे जाता हूं. आपकी क्या आज्ञा है."

उस्ताद से हां कहलवाकर साहब सुभद्रा के पास चूड़ा लौटाने चला गया.

नाम-धाम नहीं कहूंगा. नामी-गरामी गृहस्थ. कच्चा मकान, लेकिन माटी की ऊंची दीवारों से घिरा. कै दिन हुए, दामाद आया था. सो बेटी, सज-संवरकर, जो जहां का है, गहने पहनकर, पति के साथ सोती थी. खोजी ने देख-सुनकर शुरू से आखीर तक सब बतलाया. उस लड़की को गहने के बोझ से जहां तक संभव है छुटकारा दिलाना होगा.

पहर रात बीतते न बीतते निशि-कुटुंबों ने घर की पिछौली अगोदी. खा-पीकर दामाद कमरे में उकुस-पुकुस कर रहा था. स्त्री आ नहीं रही थी. बड़ी देर बाद आयी. साहब ने आंख-कान दोनों बिछा दिए थे. बत्ती बुझा दी. थोड़ी देर में दोनों सो गये. पति-पत्नी मानो होड़ लगाकर खर्राटे भर रहे थे. घर में तीसरा कोई न था. साहब लेकिन तो भी घेरे के पास से हिल नहीं रहा था. कोई हुक्म नहीं दे रहा था. डिप्टी परेशान.

एक समय साहब वहां से हट आया. सेंध नहीं कटेगी. डिप्टी सोचने लगा, यहां कुछ हो हवायेगा नहीं. लेकिन साहब के होंठों पर रहस्यमय मुस्कान. काफी वक्त बीता. खुट से आवाज हुई और दरवाजा खुल गया. किवाड़ के पल्ले भिड़काकर वह स्त्री मानो हवा में खो गयी. खोजी ने ठीक ही बतलाया था, बदचलन स्त्री अपने प्रेमी से मिलने गयी. साहब इसी ताक में बैठा था. झट कमरे में घुसा. तकिए के नीचे से गहने निकाल लिए. बदन में जरा धूल भी न लगी. कान की सिफत से पता चल गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

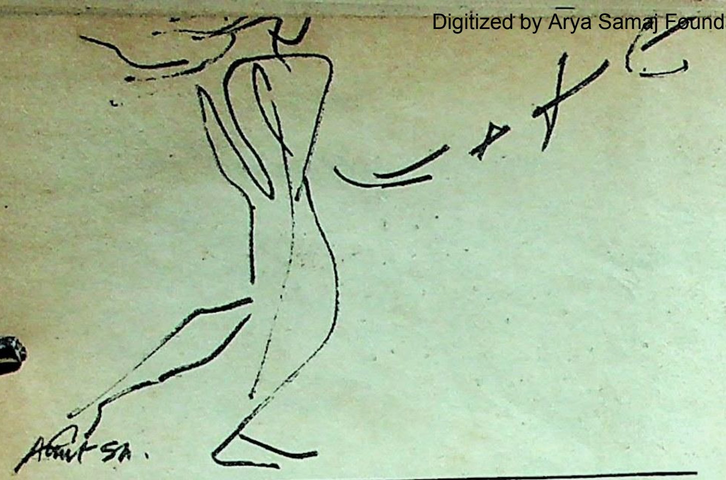

कि पति-पत्नी में से एक की नींद बनावटी है. स्त्री नींद का बहाना बनाये पड़ी थी. पति की नींद गाढ़ी हो कि निकले. इतने ज्यादा गहने लेकर बाहर जाने की हिम्मत न पड़ी. पता भी किसे होगा. निकालकर तकिए के नीचे रख दिये. साहब के पैने कानों ने गहना खोलकर रखने की बात भी ठीक-ठीक भांप ली.

ऐसे मौके पर अनाड़ी कारीगर अनर्थ कर बैठता है. . .

एक दिन गुरुपदो भागा-भागा आया. आकर खबर दी कि साहब को घर के अंदर घेर लिया है.

हो नहीं सकता. साहब ऐसा काम ही क्यों करने लगा कि घर के आदमी जग पड़ें.

लेकिन बात ठीक ही थी. साहब अपने ही दोष से घिर गया. सेंध से कमरे में दाखिल होते ही सबसे पहले दरवाजे की जंजीर-छिटकनी खोल लेनी चाहिए. मृच्छकटिक के समय में भी यही नियम था. साहब दरवाजा खोलने के लिए ही जा रहा था, पता नहीं, नन्हा बच्चा लुढ़ककर कब तो मसहरी के बाहर आ गया था. साहब का पांव उसकी गरदन पर पड़ गया. एक बार वह केंक कर उठा और फिर बिल्कुल चुप्प.

मां मसहरी से निकली. बाप दियासलाई जलाने लगा. सेंध देख चोर-चोर का शोर मचा. लोग आ जुटे. पहले खोजबीन की फिर चोरों के किस्से सुनाने लगे.

उधर साहब मसहरी के अंदर था. इधर पति दिया जलाने लगा और उधर वह चुपचाप मसहरी में घुस गया. बहू बच्चे को दूध पिलाने लगी और इधर साहब. . .

चोर यात्रा. चोर साहब के जीवन में इस यात्रा का विराम न हुआ. बुड्ढा होकर एक समय वह लाचार हो पड़ा. बैठा-बैठा पिछले दिनों की बातें सोचता. छोकरों को किस्से सुनाता. घर-द्वार, घाट-बाट, नदी-नाला, सबको लेकर. माटी अंचल एक विराट मैदान हो जैसे. उसी मैदान में खेलते-खेलते ही तमाम जिंदगी गुजार दी. काम की ऐसी शोहरत-साहब खुद लेकिन खेल से ज्यादा कुछ नहीं सोचना चाहता. बहुत हुआ तो काम-काम का खेल.

साहब चोर की कई कहानियां हैं. कुछ बुढ़ापे की हैं. मलमनसाहत से भरीं. आपको यकीन न आये तो उपाय क्या है. आजीवन उसने कितने मुवक्किलों की कितनी-कितनी चीजें उड़ायीं. आसमान के तारे और पाताल के बालू की तरह साहब के मुवक्किलों की गिनती नहीं. कहानी सुनते-सुनते उत्सुकता से एक ने पूछा था, "इतने मुवक्किलों में सबसे महत्त्व का कौन था साहब? किसका माल सबसे दामी थी?"

अपनी छाती पर पंजा जमाकर साहब ने कहा, "मैं?"

सबसे बड़ा मुवक्किल वह खुद है. उसे जो कुछ भी था, उसने अपने-आप ही चुराया. अनोखा रूप लिए आया था, उस रूप तक को चुराया. और चीज के बारे में नहीं कह सकता, यह बात साहब ने बिलकुल सही कही.

अब वह असमर्थ है. लाचार पड़ा रहता है. लोग कहते हैं, विष-विहीन सांप.

थाना चार कोस पर था. तिस पर रास्ते में तीन नाले, एक नदी. पूरा रास्ता दौड़ना, घाट पर इंतजार. केवल पार होने में पूरा एक बेला. तिस पर एक और आफत. एक पांव का लंगड़ा. वही कब तो तिलकपुर में राखालपति के गोले से छलांग मारी थी. उसी समय पांव में मोच आयी थी. जोश में उस वक्त पता नहीं चला था. और जब तक उमर थी, काम की धुन थी, तब तक भी वैसा खास महसूस नहीं किया. बुढ़ापे में उस मोच में बात हो गया. मावस-पुनमासी को घुटने फूलकर ढोल हो जाते.

अगले हफ्ते साहब थाने पर गया. हाथ जोड़कर दरोगा के आगे खड़ा हो गया. "दया कीजिए."

"हुआ क्या?"

"खाना बंद. मांग-चांगकर चल रहा है. गनीमत है कि पेड़ों पर आम-कटहल पके हैं. मगर वही और कब तक?"

दरोगा ने उपदेश दिया, "अच्छे रास्ते नहीं चला. अंत की नहीं सोची. सारी दुनिया के लोग खाते-पहनते सुख से हैं. तुम लोग पापी हो इसीलिए तो यह रोना."

गिड़गिड़ाकर बोला, "बाकी दिन अब भला बनकर ही रहना चाहता हूं. दौड़-धूप से नफरत हुई. हुजूर, इसका इंतजाम कर दें."

दरोगा ठीक समझा नहीं था. साहब ने झटपट कहा, "जिसमें आसानी से रहना-खाना चल सके. चरणों में यही विनती है."

दरोगा खिलखिला उठा, "और क्या अब थाने पर सदावरत खोल दूं?"

"थाने पर न सही, सदावरत तो है, जिसे जेलखाना कहते हैं."

अब की जान पर खेलकर साहब ने अपना मतलब साफ-साफ कहा, "कोई न कोई इंतजाम हो जाये उसका, यही उम्मीद लेकर आया हूं. आपके हाथों कितने-कायदे कानून हैं. आपकी दया हो तो क्या नहीं हो सकता."

हिमाकत से दरोगा ने आंखें टांग लीं. "किस बात की दया? कहो तो? दया का क्या पात्र-अपात्र नहीं होता? जेलखाना पिंजरापोल नहीं है कि जितने बूढ़े-अपाहिज हैं, वहां खा-खाकर झीमते रहें. सरकार ने इसलिए उसे नहीं बनाया है. वह सक्षम और समर्थ लोगों के लिए है. जवान रहा होता तो सोच देखता. देता दफा दस में या कि और कोई तरकीब करता."

कहते-कहते दरोगा की आवाज सख्त हो गयी, "मेरा इलाका शांत है, जेल जाने के लोभ से कहीं कोई हरकत की तो पीट-पीटकर जान ले लूंगा. सपने में भी यह न सोचना कि मुकद्दमा बनाकर हाकिम तक ले जाऊंगा. कीड़ा-मकोड़ा मारने के लिए जज-मजिस्ट्रेट की जरूरत नहीं होती."

"तो हुजूर, मुझे हुक्म दीजिए कि मैं आपका इलाका छोड़कर चला जाऊं. काली घाट गंगा के किनारे. . ."

"आखिर धरम पर मति हो गयी न!" अपनी बड़ाई से दरोगा उमग उठा. कहा, "होनी ही होगी मति. अकेले तू क्या, मैं जब तक इस थाने पर हूं, सभी चोर-छिछोर को धार्मिक बन जाना ही पड़ेगा."

बात को वहीं खत्म करके दरोगा रसोई की तरफ गया. जमादार को पुकारकर कहा, "अंगूठे का निशान लेकर इसे छोड़ दो."

साहब चल पड़ा. चोर-डकैत के लिए जो जेलखाना है, उसका भी फाटक नहीं खुला चाहता. सौ बहाने. महंगी का जमाना है. मुफ्त में सरकारी अनाज खाने के लोभ से किसी बहाने साधु-सज्जन भी पहुंच जाते हैं.

फिर भले-बुरे का फर्क क्या रहा. नाहक ही इतनी तकलीफें उठाकर साहब बुरा क्यों बना? भूख अंतड़ियों पर कहर बरपा रही थी लगातार. . . .

वह बढ़ता ही गया. कितनी दूर निकल गया. पता नहीं. . . □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी इच्छा

ओ. हेनरी

स्थिति यह है कि आम आदमी पुलिस और जेल के नाम से ही कांप जाता है. उसकी भरसक कोशिश होती है कि ताउम्र वह इनसे बचा रहे! ऐसे में कोई व्यक्ति अगर जेल जाने की इच्छा करे तो उसे आप क्या कहेंगे—पागल, सनकी, मूर्ख या कुछ और? जवाब दे रहे हैं प्रख्यात अंग्रेजी कथाकार ओ हेनरी . . .

चौराहे की एक बेंच पर सोपी बेचैनी से करवटें बदल रहा था. जब जंगली बत्तखें रात में भी जोर से चीखने लगीं, जब सील के चमड़े के ओवरकोट के अभाव में स्त्रियां अपने पतियों से अधिक सट कर बैठने लगीं और जब बाग में पड़ी हुई बेंच पर सोपी करवटें बदलने लगे, तब आप कह सकते हैं कि बस, अब सर्दी आने ही वाली है.

सोपी मन ही मन सोच रहा था कि अब उसे आने वाली कठिनाइयों का सामना करने के लिए कमर कसनी पड़ेगी. और इसीलिए आज वह बेंच पर, बेचैनी से करवटें बदल रहा था. शीत से बचने के लिए उसके दिमाग में कोई ऊंची कल्पना नहीं थी. वह सिर्फ यही चाहता था कि तीन महीने जेल में कट जायें. तीन महीने तक रहने, खाने की निश्चित व्यवस्था, हमजोलियों का सहवास और कड़ाके की सर्दी एवं पुलिस के सिपाहियों से रक्षण. . . बस, यही उसकी इच्छा थी.

बरसों से ब्लैकवैल की मेहमाननवाज जेल ही उसका सर्दियों का निवास-स्थान रही है. जिस प्रकार न्यूयार्क के कई लोग हर वर्ष सर्दियां बिताने के लिए रिवीरा या पामबीच के टिकट कटाते थे, उसी प्रकार सोपी भी जाड़ों में जेल जाने की मामूली व्यवस्था कर लेता था. और अब वह समय आ गया था.

पिछली रात इसी चौक में फव्वारे के पास एक बेंच पर उसने रात काटी, परंतु कोट के नीचे, घुटनों पर और कमर पर लपेटे हुए तीन मोटे-मोटे अखबार भी सर्दी में उसकी रक्षा नहीं कर पाये थे. इसीलिए उसे जेल की याद सताने लगी. शहर के गरीबों के लिए सोने की जो धर्मार्थ व्यवस्था की जाती थी, वह उसे पसंद नहीं थी. सोपी की राय में इस परोपकार से कानून कहीं अधिक दयालु था. शहर में नगरपालिका की ओर से कई सदाव्रत और संस्थाएं चलती थीं, जहां उसके खाने और सोने की सामान्य व्यवस्था हो सकती थी, परंतु सोपी जैसे स्वाभिमानी को, दान की यह भिक्षा असहनीय बोझ लगती थी. दान में प्राप्त की गयी किसी भी सहायता का मूल्य आपको रुपयों से नहीं तो इज्जत गंवाकर चुकाना ही पड़ता है. इसलिए कानून का मेहमान बनना ही बेहतर है, क्योंकि कानून, नियमों से संचालित होने पर भी, किसी शरीफ आदमी के व्यक्तिगत जीवन में दखल नहीं देता.

जेल जाने का निश्चय करते ही सोपी ने तुरंत तैयारी शुरू कर दी.

सोपी बेंच से उठकर चौक से बाहर निकला और पक्की सड़कों के जाल को लांघता हुआ एक चमचमाते होटल के सामने जा रुका.

सोपी को कमर से ऊपर पहने हुए कपड़ों पर विश्वास था कि उसकी दाढ़ी बनी हुई थी, कोट अच्छा था और बड़े दिन पर किसी मिशनरी महिला द्वारा भेंट मिली हुई टाई उसके संभ्रांत होने की घोषणा कर रही थी. अगर वह किसी प्रकार बिना शंका उत्पन्न किये मेज तक पहुंच जाता तो सफलता उसके हाथ में थी. शरीर का वह भाग, जो मेज के ऊपर दिखायी देता है, वेटर के मन में किसी प्रकार का संदेह नहीं जगा सकता. सोपी ने सोचा कि फ्रांसीसी शराब की एक बोतल, मुर्ग-मुसल्लम, पुडिंग, आधा पैग शैंपेन और एक सिगार—इतना काफी होगा. सिगार की कीमत तो एक डालर से ज्यादा नहीं होगी. सब मिलाकर कीमत इतनी ज्यादा नहीं होनी चाहिए कि होटल मालिक मन में बदला लेने पर उतारू हो जाये फिर भी तृप्ति इतनी होनी चाहिए कि जाड़ों के निवास स्थान तक की यात्रा आनंद से कटे, परंतु जैसे ही सोपी ने होटल के दरवाजे में पैर रखा, मुख्य वेटर की नजर उसकी फटी पतलून और पुराने जूतों पर पड़ी. तुरंत ही सुदृढ़ और सधे हुए हाथों ने उसे पकड़कर चुपचाप सड़क पर ला पटका. इस प्रकार मुर्ग-मुसल्लम के बरबाद होने की नौबत टल गयी.

सोपी ब्राडवे से वापस लौटा. उसे लगा कि जेल तक पहुंचने में यह स्वादिष्ट भोजन वाला उपाय काम नहीं देगा. जेल तक पहुंचने का और कोई उपाय ढूंढ़ना चाहिए.

छठी सड़क के मोड़ पर उसे तरह-तरह की चीजों से, करीने से सजायी हुई, एक कांच की खिड़की रोशनी में जगमगाती हुई दिखायी दी. सोपी ने पत्थर उठाया और उसे शीशे पर दे मारा. चारों तरफ से लोग दौड़े और फिर पुलिस का सिपाही भी आ खड़ा हुआ. सिपाही को देखकर सोपी मुस्कराया और अपनी जेबों में हाथ डाले चुपचाप खड़ा रहा.

सिपाही के दिमाग ने सोपी को दोषी मानने से इंकार कर दिया. खिड़कियों को पत्थर मार कर तोड़नेवाले, कानून के रक्षकों से

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गपशप करने के लिए नहीं रुकते, वे तो फौरन नौ दो ग्यारह हो जाते हैं. सिपाही ने कुछ दूर सड़क पर एक आदमी को बस पकड़ने के लिए भागते देखा और अपना डंडा घुमाता हुआ उसके पीछे भाग लिया.

दो बार असफल होकर सोपी निराश हो गया और मटरगश्ती करने लगा.

सड़क के उस पार, एक साधारण किस्म का होटल था. वहां छोटी जेब और बड़े पेटवाले ग्राहक आया करते थे. घटिया बर्तन और धूमिल वातावरण, पतली दाल और गंदे मेजपोश. इस स्थान पर सोपी बिना रोक-टोक अपनी फटी पतलून और पुराने जूतों समेत जा पहुंचा. वह मेज पर जा बैठा और पेट भरकर कबाब, कोफ्ते, केक और कचौड़ियां खा गया. . .और तब उसने वेटर से कहा, "जल्दी पुलिस को बुलवा लो, व्यर्थ में एक शरीफ आदमी का वक्त क्यों खराब करें?"

अंगारे-सी लाल आंखें दिखाते हुए वेटर ने कड़ककर कहा, "तेरे लिए और पुलिस का सिपाही?" उसने अपने साथी को आवाज दी और सोपी को एक बार फिर निर्दयता से सड़क पर ला पटका गया.

काफी देर इधर भटकने के बाद सोपी में गिरफ्तार होने की ललक फिर जागृत हुई. इस बार जो अवसर आया, वह नासमझ सोपी को अचूक लगा.

मनोहर और सुशील मुखमुद्रावाली एक नवयुवती, एक दूकान की खिड़की के सामने खड़ी, अंदर सजी हुई प्यालियों और दावातों को दिलचस्पी से देख रही थी और दो गज की दूरी पर ही कठोर मुखाकृति वाला एक सिपाही नल का सहारा लिये खड़ा था.

सोपी ने इस बार, औरतों से छेड़-छाड़ करने वाले, घृणित और तुच्छ गुंडे की भूमिका अदा करने की योजना बनायी. अपने शिकार की सौम्य और भोली सूरत देखकर तथा कानून के सतर्क पहरेदार को पास में खड़ा पाकर सोपी को प्रोत्साहन मिला कि शीघ्र ही उसे अपनी बांह पर सिपाही के पंजे की उस सुखदायी पकड़ का अनुभव होगा, जो उसे सर्दियों भर आरामदायक जेल में पहुंचा देगी.

सोपी ने मिशनरी महिला द्वारा भेंट दी गयी टाई को ठीक किया, सिकुड़ती हुई आस्तीनों को कोट से बाहर निकाला, टोप को तिरछी अदा से पहना और उस युवती की तरफ बढ़ा. उसने उसकी तरफ आंख से इशारा किया. उसे देखकर खांसा और चेहरे पर बनावटी हंसी लाकर बदतमीजी से घृणित गुंडों की तरह झूमने लगा. अपने आंख की कोर से तिरछी नजर डालकर उसने यह देख लिया कि सिपाही उसे घूर रहा है. युवती दो-चार कदम आगे-पीछे हुई और फिर पूरी एकाग्रता से खिड़की में सजी हुई चीजों को देखने लगी. सोपी निर्भयता से आगे बढ़कर उसके पास जा खड़ा हुआ और अपना टोप सिर से उठाकर बोला, "क्यों, कहीं कुछ तफरीह का इरादा है?"

युवती उसकी ओर मुंह करके खड़ी हो गयी और अपना हाथ आगे बढ़ाकर उसके कोट की बांह को पकड़कर खुशी से बोली, "जरूर, मैं तो खुद ही तुमसे कहने वाली थी, मगर वह सिपाही जो देख रहा था!"

फिर अपनी देह से लिपटी हुई उस लड़की को लिये-लिये जब सोपी सिपाही के सामने से गुजरा तो उदासी ने उसे घेर लिया. उसके भाग्य में शायद आजादी ही बदी थी.

अगले मोड़ पर ही वह उस लड़की से पिंड छुड़ाकर भागा. वहां से वह ऐसे मुहल्ले में पहुंचकर रुका, जहां रात में झूठे वादे करने वाले बेफिक्र प्रेमी आ जुड़ते हैं और फिर शराब तथा संगीत के दौर चलते हैं. वहां शान से टहलते हुए एक सिपाही को देखते ही उसके मन में शराबी का पार्ट अदा करने की योजना बिजली की तरह कौंध गयी. उसने अपनी कर्कश आवाज में शराबियों की तरह बकना और चिल्लाना आरंभ किया. नाचकर, चीखकर, चिल्ला कर. . .अनेक तरीकों से उसने आसमान सिर पर उठा लिया.

सिपाही ने डंडा घुमाते हुए सोपी की तरफ पीठ कर ली और एक राहगीर से कहने लगा, "यह कालेज का कोई लड़का है. इन्होंने आज फोर्ट कालेज को बुरी तरह हराया है, इसी लिए खुशियां मना रहा है."

दुखी होकर सोपी ने इस असफल तिकड़म को त्याग दिया. क्या पुलिस के सिपाही उसे कभी गिरफ्तार नहीं करेंगे? जेल एक दुर्लभ स्वर्ग के समान लगने लगी. उसने ठंडी हवा से बचने के लिए अपने फटेहाल कोट के बटन बंद कर लिये.

सिगार की एक दूकान में उसने एक संभ्रांत व्यक्ति को सिगार सुलगाते देखा. अंदर जाते समय उसने अपना रेशमी छाता दरवाजे के पास रख दिया था. सोपी अंदर घुसा, छाता उठाया और धीरे-धीरे चहलकदमी करता हुआ आगे बढ़ गया. सिगार वाला व्यक्ति जल्दी से उसके पीछे हो लिया और कुछ सख्ती से बोला, "मेरा छाता है!"

चोरी पर सीनाजोरी करते हुए सोपी उपहास करने लगा, "क्या वाकई. . . आपका छाता है तो फिर आप पुलिस को क्यों नहीं बुलाते? जल्दी करिए साहब, पुलिस को बुलाइए, सिपाही मोड़ पर ही खड़ा है."

छाते के मालिक ने अपनी चाल धीमी कर दी. सोपी ने भी वैसा ही किया. छातेवाले ने कहा, "जी, आप जानते हैं, ऐसी गलती हो ही जाती है. अगर यह छतरी आपकी है तो मुझे माफ करें. दरअसल बात यह है कि आज सुबह ही मैंने यह एक होटल से उठायी थी. अगर आप इसे पहचानते हैं. . .अगर आपकी है तो मैं आशा करता हूं कि आप मुझे. . ."

सोपी दुष्टता से बोला, "जी हां, निश्चित रूप से यह मेरी है."

छतरी का तथाकथित मालिक मानो जान बचाकर भाग गया.

अंत में सोपी एक ऐसे मुहल्ले में पहुंचा, जहां कोलाहल और प्रकाश बहुत कम था. इस मार्ग से होकर वह मैडिसन चौक की दिशा में चला. घर का मोह मनुष्य को अपनी ओर खींचता ही है, चाहे उसका घर किसी पार्क की बेंच ही क्यों न हो. मगर एक सुनसान जगह पर सोपी के पांव ठिठक गये. जहां एक पुराना गिरजा था, टूटा-फूटा. उसकी खिड़की में से मंद प्रकाश छन रहा था और निश्चय ही अगले इतवार की प्रार्थना की तैयारी में लीन पियानो वादक, पियानो पर उंगलियां नचा रहा था.

आकाश में निर्मल स्निग्ध चांद चमक रहा था, सड़क राहगीरों से सूनी थी. पंछी तंद्रिल स्वरों में चहचहा रहे थे. वातावरण किसी गांव के गिरजे के समान प्रशांत था. प्रार्थना के स्वरों ने सोपी को सींखचों से जकड़ दिया था, क्योंकि वह उस प्रार्थना से परिचित था—उसने इसे उस युग में सुना था, जब कभी उसके जीवन में पवित्र विचारों, सामूहिक आकांक्षाओं, फूलों, बहनों और मित्रों का भी स्थान था.

सोपी के मन की ग्रहणशीलता और पुराने गिरजे के पवित्र प्रभाव ने सम्मिलित हो सोपी की अंतरात्मा में एक अद्भुत परिवर्तन ला दिया. आतंकित होकर उसने उस गर्त की गहराई का अनुभव किया, जिसमें वह गिर चुका था. ..घृणित आकांक्षाएं, संत्रस्त आशाएं, ध्वस्त मानस, जिन्होंने अब तक उसके अस्तित्व को बनाया था, उसकी आंखों में उभर आये.

उसके हृदय में अपने दुर्भाग्य से छूटने की एक प्रेरणा उत्पन्न हुई. उसने इस दलदल से अपने-आपको बाहर निकालने का निश्चय किया. वह फिर से अपने-आपको मनुष्य बनायेगा. जिस बुराई ने उसे जकड़ रखा है, उसे वह जीतेगा. कल सुबह ही वह शहर जाकर काम ढूंढ़ेगा. वह दुनिया में कुछ बनेगा.

तभी सोपी ने अपनी बांह पर किसी पकड़ का अनुभव किया. तेजी से घूमते ही उसे एक सिपाही का कठोर चेहरा दिखायी दिया.

सिपाही ने पूछा, "यहां क्या कर रहे हो?"

सोपी ने कहा, "जी, कुछ नहीं."

सिपाही बोला, "कुछ नहीं. . .तो मेरे साथ चलो."

दूसरे दिन सवेरे पुलिस-कचहरी के न्यायाधीश ने हुक्म सुनाया, "तीन महीने कैद. . . बामशक्कत!" ☐

● संक्षिप्त रूपांतर : रमेश बत्तरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मामूली लोग

हेनरिक ब्योल

अदृश्य सत्ता की चौपड़ अभावों और कष्टों का जीवन जीते हुए मामूली लोगों का सब कुछ छीन लेती है, लेकिन वे फिर भी जीते चले जाते हैं. वह कौन-सी चीज है, जो उन्हें जीने का यह संबल प्रदान करती है? बता रहे हैं नोबेल पुरस्कार विजेता जर्मन कथाकार हेनरिख ब्योल--

लासनोव ने जो धंधा अपनाया था, वह काफी लाभदायक था. लड़ाई के दिन थे. वह रोज सुबह ओडेसा स्टेशन पहुंच जाता और स्पेशल ट्रेन में सफर करने वाले जर्मन सैनिकों से मोजे, नमक, सैकरीन, मक्खन, बिस्कुट वगैरह भावतोल करके सस्ते दामों पर खरीद लेता और शहर में आकर उन्हें ऊंचे दामों पर बेच देता. स्पेशल ट्रेन के आते ही वह प्लेटफार्म पर तेजी से चक्कर लगाता हुआ चिल्लाने लगता, "कुछ भी बेचो, ऊंची से ऊंची कीमत लो. . .कुछ भी बेचो, ऊंची से ऊंची कीमत लो!"

इस धंधे में उसने स्टेशन-मास्टर को भी भागीदार बना रखा था. अगर भावतोल करते-करते देर हो जाती और ट्रेन के छूटने का समय हो जाता तो स्टेशन मास्टर ट्रेन को रोक लेता और बाद में एक मिनट में एक मार्क की दर से लासनोव से कीमत वसूल करता. बाद में लासनोव के बढ़ते हुए लाभ को देखकर उसने अपना रेट छह मार्क प्रति मिनट कर दिया था.

लेकिन आज दूसरा ही रंग देखने में आ रहा था. ट्रेन रुकते ही मिलिट्री पुलिस ने प्लेटफार्म की गश्त लगाना शुरू कर दिया. जो भी ट्रेन के निकट आता, पुलिस उसे भगा देती. और जैसे ही ट्रेन के छूटने का समय हुआ, वह चल दी. एक सेकेंड भी ज्यादा न रुकी. ट्रेन के चलने पर एक छोकरा उसके साथ-साथ भागने लगा. पुलिस के एक सिपाही ने डिब्बे में चढ़ते-चढ़ते उसे ठोकर मारी. छोकरा उठकर खड़ा हुआ ही था कि उसके पांव के पास एक पैकेट आकर गिरा, उसने उसे खोला तो पाया, पैकेट में एक सेब और एक ब्रेड थे. छोकरा पैकेट को प्रतीक्षालय में उदास बैठे लासनोव को दिखाकर मुस्कराने लगा.

लासनोव के पल्ले आज कुछ नहीं पड़ा था. वह सोच रहा था, पिछले कुछ महीनों में आमदनी काफी कम हो गयी है और आज तो बिल्कुल बंद हो गयी.

छोकरा उसके पास आकर कहने लगा, "सेब शायद मीठा तो नहीं है. फिर भी चल जायेगा. बताओ, क्या दोगे इसका? तुम्हारी बीवी को जरूर पसंद आयेगा. कैसे मोती जैसे दांत हैं उसके, वाह!"

"भाग यहां से शैतान, तूने कब देखे मेरी बीवी के दांत?"

"अच्छा सेब न सही, यह टूथब्रुश ही खरीद लो. कैसा चमकता है. अपना चेहरा भी साफ-साफ देख सकते हो इसमें."

लासनोव ने टूथब्रुश देखा. अच्छा था, लेकिन इस्तेमाल किया हुआ लगता था. उसने छोकरे से पूछा, "बोल, क्या लेगा?"

"दस."

"दो." कहकर वह आगे बढ़ने लगा. छोकरे ने उसके पीछे भागते हुए कहा, "कम से कम पांच तो दो." पांच में सौदा घाटे का नहीं है. यह सोचकर लासनोव ने पांच मार्क उसके हाथ में थमा दिये. फिर टूथब्रुश जेब में रखकर, तंबाकू निकालकर अपने लिए एक सिगरेट 'रोल' करने लगा. छोकरा पांच मार्क जेब में रखकर कूड़े के ढेर से सिगरेट के टुर्रे को ढूंढ़ने लगा.

तभी पीछे से आकर स्टेशन मास्टर ने लासनोव के हाथ में रखा आधा तंबाकू हड़प कर अपनी सिगरेट रोल करते हुए कहा, "आने वाले दिन अच्छे नहीं लगते."

"हां, शायद. अच्छा, अब चलूं. बेकार गया आज का दिन."

"बाजार से निकलते समय, कॉप से कह देना कि उसके नाम एक क्रेट आयी है."

"क्रेट? क्या है उसमें?"

"मुझे मालूम नहीं. उससे कह देना कि ओडसा से आयी है. कह दोगे न! मैं एक छोरे के हाथ बाद में उसे भेज दूंगा."

"जरूर."

बाजार में यह खबर आग की तरह फैल गयी कि कॉप के नाम ओडसा से एक क्रेट आयी है. सब तरह-तरह के अनुमान लगाने लगे कि उसमें क्या होगा. लासनोव का कहना था, उसमें टूथब्रश होंगे.

कॉप को जब लासनोव ने क्रेट के बारे में बताया तो वह एक लंबी सांस लेकर बोला, "यार, औरों की तरह तुम भी मेरे साथ मजाक करने लगे."

"मजाक की बात नहीं है दोस्त, मुझे खुद स्टेशन मास्टर ने बताया था."

"क्रेट क्या आयी, मुसीबत आ गयी. अब सब मुझे तंग करेंगे. पता नहीं उसमें क्या है? मेरे खयाल से उसमें टीन की चीजें होंगी."

क्रेट लेकर वही छोकरा आया, जिसने लासनोव को टूथब्रश बेचा था. जब कॉप क्रेट को खोलने लगा तो उसने कहा, "मैं जानता हूं इसमें क्या है?"

किसी ने उससे नहीं पूछा कि क्रेट में क्या है? वे क्रेट को ही देख रहे थे. तभी छोकरे ने मुस्कराते हुए धीमे-से कहा, "इसमें कुछ भी नहीं है."

किसी ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि इस समय तक क्रेट खुल चुकी थी . . . और कॉप उसमें से चिमटियों जैसी कोई चीज निकालने में लगा था. अरे, ये तो शुगर-टॉन्ग्ज हैं. . .और दर्जनों हैं.

"चीनी तो हमारे पास है नहीं, फिर इन शुगर टॉन्ग्ज का हम क्या करेंगे." एक महिला चिल्लायी, "उनसे कहो, पहले चीनी के क्यूब्ज भेजें."

"न सही चीनी, इनसे टमाटर तो उठाकर खा ही सकते हो." कोई बोला.

"मगर टमाटर भी तो हों हमारे पास?" उस महिला ने जबाब दिया.

"इनसे कोयले भी उठाये जा सकते हैं."

"इन्हें बतौर सिगरेट-होल्डर काम में लाया जा सकता है, बशर्ते कि अपने पास सिगरेट हो."

लासनोव को लगा कि यह बहस जितनी बढ़ती जायेगी, उतनी ही बेहूदा होती जायेगी इसलिए उसने इस बहस का अंत करने के लिए कहा, "इन्हें आप लोग अपने बच्चों को खेलने के लिए दे सकते हैं. कहिए कैसी रही."

"बशर्ते कि आपके पास. . ."महिला का सुपरिचित स्वर फिर उभरा, लेकिन अट्टहासों के बीच डब गया. बच्चे ही एक ऐसी चीज थे, जो सबके पास न सिर्फ थे, बल्कि जरूरत से ज्यादा थे. उनकी कमी उन्हें लड़ाई के तंग दिनों में भी महसूस नहीं हो रही थी. . . □

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्खीम

आर. एल. स्टीवेंसन

आदमी का सबसे बड़ा दुश्मन स्वयं आदमी है तो सबसे बड़ा दोस्त भी वह स्वयं ही है. . . . आदमी की स्वयं अपने ही से हुयी दोस्ती और दुश्मनी का परिणाम क्या निकलता है. . . .? बयॉन कर रहे हैं अंग्रेजी के प्रख्यात कथाकार राबर्ट लुई स्टीवेंसन.

"हां!" दुकानदार बोला, "हमें कई तरह से नफा होता है. कुछ ग्राहक अनजान होते हैं और उनसे मैं अपनी जानकारी के बल पर नफा कमाता हूं. कुछ बेईमान होते हैं," और इतना कहकर उसने मोमबत्ती ऊंची कर दी, जिससे आगंतुक पर तेज रोशनी पड़ने लगी, "और तब, मैं अपनी ईमानदारी से नफा कमाता हू."

मार्खीम धूप से प्रकाशित सड़क से अंदर घुसा ही था और उसकी आंखें दूकान के मिले-जुले छाया-प्रकाश की अभ्यस्त नहीं हुई थी. इन चुभते हुए शब्दों पर, और मोमबत्ती के बहुत पास होने के कारण उसकी आंखें कष्ट से झपक गयीं, उसने नजर एक तरफ कर ली.

दुकानदार के मुंह पर दबी हुई मुस्कराहट दिखाई दी, "तुम क्रिसमस के दिन मेरे पास आये हो, जब तुम जानते हो कि मैं घर पर अकेला हूं, किवाड़ लगा चुका हूं और कभी सौदा नहीं किया करता, तुमने मेरा हिसाब-किताब मिलाने के समय का नुकसान किया है. तुम्हें यह नुकसान भरना पड़ेगा, इसके अलावा आज मुझे तुम्हारे रंग-ढंग बड़े निराले दिखाई दे रहे हैं, और इसकी भी तुम्हें कीमत चुकानी पड़ेगी. . . .तो आज भी तुम पहले की तरह ठीक-ठाक बता दोगे कि यह चीज तुम्हें कहां मिली? इस बार भी तुम्हारे चाचा की अलमारी में होगी. बड़े बढ़िया संग्रहकर्त्ता हैं भई!"

मार्खीम बोला, "इस बार मैं बेचने नहीं, खरीदने आया हूं. अब मेरे पास बेचने के लिए कोई दुर्लभ वस्तु नहीं बची. मैंने सट्टे में बढ़िया दांव मारा है और उसे बढ़ाऊंगा ही, घटाऊंगा नहीं. आज तो मैं बड़े मामूली काम से आया हूं. मुझे एक महिला के लिए क्रिसमस का उपहार चाहिए. . .और आप जानते ही हैं कि धनी कन्या से विवाह. . ."

"अच्छा भई, तुम मेरे पुराने ग्राहक हो, ऐसा ही सही. अगर तुम्हें अच्छी जगह शादी का मौका मिल रहा है तो मेरे कारण इसमें बाधा नहीं पड़नी चाहिए. यह लो पंद्रहवीं सदी का दस्ती शीशा. यह भी एक बहुत अच्छे संग्रह में से प्राप्त हुआ था, पर भाई, अपने ग्राहक का ख्याल करके, जो बिलकुल तुम्हारी ही तरह एक बहुत अच्छे संग्रहकर्त्ता का भतीजा और एक-मात्र उत्तराधिकारी था, मैं तुम्हें उसका नाम नहीं बता सकता."

मार्खीम ने कहा, "मैं तुमसे क्रिसमस का उपहार मांग रहा हूं और तुम मुझे दे रहे हो यह उमर की और पापों और बेवकूफियों की याद दिलानेवाली कंबख्त चीज, यह छोटा अंतःकरण!"

दुकानदार एक बार फिर झुका. इस बार वह शीशे को शैल्फ में वापस रख रहा था और उसके हल्के भूरे बाल उसकी आंखों पर आ गये थे. मार्खीम अपना एक हाथ ओवरकोट की जेब में डाले उसके और पास को सरक आया. उसने अपने को साधा और सांस भरी.

"शायद यह ठीक रहेगा," दुकानदार ने कहा, और फिर जैसे ही उसने सीधे होने की कोशिश की कि मार्खीम पीछे से अपने शिकार पर झपट पड़ा, लंबा धारदार छुरा चमका और पेट में घुस गया. दुकानदार ने मुर्गी की तरह फड़फड़ाकर जोर लगाया, उसकी कनपटी शैल्फ से टकरायी. वह फर्श पर ढेर हो गया.

एकाएक बाहर की गली से किसी बड़े खुशमिजाज आदमी ने दूकान के दरवाजे पर छड़ी से खटखटाना शुरू किया और चिल्लाकर दुकानदार को उसके अनेक बोलचाल के उपनामों से पुकारना शुरू किया. मार्खीम बर्फ की तरह जड़ हो गया. . .जरा देर बाद वह भलामानस खटखटाना छोड़ आगे चल दिया.

यह इस बात का संकेत है कि बाकी काम जल्दी से खत्म करो, पकड़ने के लिए आतुर इस जगह से दूर हो जाओ, और लंदन के विशाल जन-सागर में कूद पड़ो. एक मिलनेवाला आ चुका था, किसी भी समय दूसरा आ सकता है और वह अधिक आग्रही हो सकता है. जब तुम यह काम कर चुके हो, तब भी इसका लाभ न उठाना बड़ी भारी असफलता होगी. अब मार्खीम रुपया निकालना चाहता है और इसके लिए उसे चाबियां चाहिए.

उसने ऊपर खुला दरवाजा देखा, जहां अभी छाया घूम रही थी और कांप रही थी. वह अपने शिकार की लाश के कुछ और पास खिसक आया. इस समय उसके मन में कुछ घृणा का ध्यान तो नहीं था, पर उसका पेट हिल रहा था. उसने चाबियां उठायीं और दूकान के खुले दरवाजे की ओर बढ़ा. बाहर तेज वर्षा होने लगी थी.

इस दूसरी मंजिल पर दरवाजे खुले पड़े थे. वे तीन दरवाजे, मानो पकड़नेवालों के आने के तीन रास्ते थे, और यह देखकर उसके दिमाग का एक तार झनझना उठा. उसे ऐसा लगा कि अब लोगों की नजरों के सामने खड़ा रहने लायक साहस मुझमें कभी नहीं आयेगा.

मार्खीम ने अल्मारी के सामने की एक पेटी खोली और वह उपयोगी चाबियां तलाश करने लगा. समय तेजी से भाग रहा था. पर अपने साध्य को पास ही देखकर उसमें कुछ गंभीरता पैदा हो गयी.

वह इस तरह एक साथ व्यस्त और अन्यमयस्क बैठा था कि अचानक चौंककर खड़ा हो गया. एक कदम धीरे से सीढ़ी पर चढ़ा और तुरंत एक हाथ सांकल पर पड़ा. ताले में खटका हुआ और दरवाजा खुल गया.

डर के मारे मार्खीम सन्न हो गया. वह नहीं जानता था कि कौन आ पहुंचा. क्या मरा हुआ आदमी आ पहुंचा है या मानवीय न्याय के सरकारी अधिष्ठाता आ गये हैं या कोई आकस्मिक गवाह है जो बिना जाने-बूझे मुझे फांसी लगवाने के लिए चला आ रहा है. पर जब खुली जगह में से एक चेहरा अंदर आया, उसने कमरे में चारों ओर झांका, उसकी ओर ताका, सिर हिलाया और इस तरह मुस्कराया जैसे किसी-दोस्त को पहचान लिया हो, वह पीछे हट गया, और फिर उसके पीछे का दरवाजा बंद हो गया, उसकी छाया मोमबत्ती के प्रकाश की तरह हिल-डुल रही थी. डर के मारे मार्खीम बेकाबू हो गया. उसके मुंह से एक दबी हुई चीख निकल गयी. इस आवाज पर आगंतुक लौट आया.

"क्या तुमने मुझे बुलाया था?" उसने प्रसन्न मुख से पूछा और इस तरह कहता हुआ वह कमरे में आ गया और उसने अपने पीछे का दरवाजा बंद कर दिया.

मार्खीम खड़ा हो गया. आंखें फाड़कर उसकी ओर ताका. कभी उसे ऐसा लगा जैसे वह उस आगंतुक को जानता है, और कभी ऐसा लगा कि जैसे वह उससे बहुत मिलता-जुलता है.

उस आगंतुक में आत्मीयता का एक अजीब भाव था. वह मुस्कराता हुआ मार्खीम की ओर देख रहा था. उसने अत्यंत नम्र स्वर में, कहा, "मेरा खयाल है तुम रुपया ढूंढ़ रहे हो."

मार्खीम ने कोई जवाब नहीं दिया.

"मैं तुम्हें चेताये देता हूं," आगंतुक फिर बोला, "नौकरानी अपने प्रेमी से और दिन की अपेक्षा जल्दी विदा हो ली है और कुछ ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देर में यहां पहुंच जायेगी. यदि श्री मार्खीम इस मकान में पाये गये तो इसका परिणाम क्या होगा, यह बताने की मुझे जरूरत नहीं."

"तुम मुझे जानते हो?" हत्यारा चिल्लाया.

आगंतुक मुस्कराया. "तुम तो बहुत समय से मेरे प्रिय रहे हो, मैं तुम्हें बहुत समय से देख रहा हूं और मैंने बहुत बार तुम्हें सहायता पहुंचाने की कोशिश की है."

"तुम क्या चीज हो?" मार्खीम चिल्लाया, "शैतान?"

"मैं जो कुछ भी हूं उसका तुम्हारे लिए प्रस्तुत मेरी सेवा पर कोई असर नहीं पड़ सकता. मैं तुम्हें जानता हूं, अंतर तक जानता हूं."

"मुझे जानते हो." मार्खीम चिल्लाया, "मुझे कौन जान सकता है? मेरा जीवन मेरे ही लिए उपहास और कलंक है. मैं अपनी प्रकृति के विपरीत जीवन बिता रहा हूं. मैं बहुतों से बुरा हूं. मुझ पर बहुत बोझ है. मेरी लाचारी मुझे और ईश्वर को मालूम है. . .जरा सोचो तो मेरे काम!. . .मैं राक्षसों के देश में पैदा हुआ था और वहीं रहा हूं. जब मैं माता के गर्भ से बाहर आया तब से ही राक्षस मुझे हाथ पकड़कर घसीटते रहे हैं—ये हैं परिस्थिति रूपी राक्षस और तुम मेरे बारे में मेरे कामों के आधार पर फैसला करना चाहते हो! क्या तुम मेरे अंदर के दिल को नहीं देख सकते? क्या तुम यह नहीं समझ सकते कि मैं बुरे काम से घृणा करता हूं? क्या तुम मुझे वह चीज नहीं समझ सकते जो मानवता की तरह सब मनुष्यों में सामान्य है—अनिच्छा से पापी—क्या तुम समझते हो कि मेरी बड़ी से बड़ी यही आकांक्षा है कि पाप पर पाप करता रहूं और अंत में घिसटता हुआ स्वर्ग में पहुंचूं. . .? क्या यह हत्या का अपराध सचमुच ऐसा पापपूर्ण है जिससे अच्छाई का स्रोत ही सूख जाये?"

"मेरी नजर में हत्या कोई विशेष अपराध नहीं है," आगंतुक ने जवाब दिया, "सभी पाप हत्या हैं, जैसे सारा जीवन युद्ध है. . .बुरा आदमी मुझे प्यारा है बुरा काम नहीं, जिसके कड़वे फल युगों की बहती हुई जल-धारा के बहुत निचले हिस्से में भी दुर्लभतम शुभ कार्यों के फलों की अपेक्षा अधिक सुखदायक दिखाई देते हैं और मैंने तुम्हें बच निकलने में जो सहायता देने को कहा था, वह इसलिए नहीं कि तुमने इस दुकानदार को मारा है, बल्कि इसलिए कि तुम मार्खीम हो."

"मैं अपने दिल का दरवाजा तुम्हारे सामने खोलूंगा." मार्खीम ने कहा, "तुमने मुझे जो अपराध करते देखा है, वह मेरा अंतिम अपराध है. इस अपराध तक पहुंचते हुए मैंने बहुत-सी शिक्षा ग्रहण की है. यह अपने-आप में एक महत्वपूर्ण पाठ है. मैं गरीबी का दास था. . .पर मुझे सुख की तृष्णा थी. पर आज इस काम से मुझे चेतावनी और धन दोनों प्राप्त हो गये हैं. . .मैं कुछ वर्ष इधर-उधर भटका हूं, मगर अब फिर मुझे अपनी मंजिल दिखाई दे रही है."

"मैं समझता हूं तुम यह रुपया सट्टे में खर्च करोगे? अगर मैं गलती नहीं करता, तो उसमें तुम पहले कई हजार रुपये खो चुके हो?"

"आह," मार्खीम ने कहा, "पर इस बार एक पक्का चांस है."

"इस बार भी तुम खोओगे." आगंतुक ने शांत भाव से कहा.

"पर मैं आधा बचा रखूंगा."

"तुम वह भी खो दोगे."

"तो क्या हुआ? मान लो कि यह जाता रहेगा, मान लो कि मैं फिर गरीबी में पड़ जाऊंगा, तो क्या मेरा एक भाग, जो बुराई वाला भाग है, मेरे अच्छे भाग को अपने अधीन रखने के लिए अंत तक बना रहेगा?"

पर आगंतुक ने अपनी उंगली ऊपर उठाई, "इस दुनिया में अपने छत्तीस वर्ष के जीवन में तुमने धन-संपत्ति और सुख-दुख के जो बहुत-सारे उतार-चढ़ाव देखे हैं उनमें मैंने तुम्हें लगातार नीचे गिरता हुआ ही पाया. पंद्रह वर्ष पहले तुम चोरी के नाम पर चौंक पड़ते. तीन वर्ष पहले हत्या के नाम पर सुन्न हो जाते. क्या ऐसी कोई क्रूरता है जिससे तुम्हारा दिल अब भी हिचकिचाता हो? आज से पांच साल बाद मैं तुम्हें फिर किसी अपराध में देखूंगा. तुम नीचे ही नीचे जा रहे हो. तुम्हें मौत ही इससे रोक सकती है."

"यह सच है," मार्खीम ने कहा.

"तो, तुम जो कुछ हो उस पर ही संतोष करो, क्योंकि तुम कभी नहीं बदलोगे. इस जीवन-मंच पर अभिनय करते हुए तुम्हें जो शब्द बोलने हैं, वे बड़े गहरे खुदे हुए हैं."

मार्खीम बड़ी देर तक चुप खड़ा रहा. आगंतुक बोला, "ऐसी हालत में क्या मैं तुम्हें रुपया दिखाऊं?"

"और ईश्वर-कृपा?" मार्खीम चिल्लाया. "क्या तुम पहले इसकी जांच नहीं कर चुके हो? क्या दो या तीन साल पहले मैंने तुम्हें चर्च के सत्संगों में नहीं देखा था, और क्या भजन गाते हुए तुम्हारी आवाज सबसे ऊंची नहीं होती थी?"

"यह सच है," मार्खीम ने कहा, "और मुझे अपना कर्तव्य स्पष्ट दीख रहा है. इस शिक्षा के लिए मैं तुम्हें हृदय से धन्यवाद देता हूं. मेरी आंखें खुल गयी हैं. अंत में मैंने अपना सच्चा स्वरूप पहचान लिया है."

इसी समय दरवाजे की घंटी की तीखी आवाज मकान में गूंज गयी. आगंतुक का चेहरा तुरंत बदल गया. मानो यह कोई पहले से निश्चित संकेत था जिसकी वह प्रतीक्षा कर रहा था.

"नौकरानी!" वह चिल्लाया, "वह लौट आयी है. अब तुम्हारा रास्ता और भी तंग हो गया है. . .अब जब लड़की अंदर आ जाये और दरवाजा बंद हो जाये तब तुमने जिस चतुराई से दुकानदार से पिंड छुड़ाया है, उसी से इस अंतिम कांटे को भी. . ."

मार्खीम ने स्थिर दृष्टि से अपने सलाहकार को देखा, "अगर मुझसे बुरे काम ही होने हैं. . . तो मेरे लिए आजाद होने का एक दरवाजा अब भी खुला है. . .मेरा अच्छाई से प्यार निष्फल रहा है, रहने दो, पर मुझमें अब भी बुराई के प्रति घृणा है, और तुम्हें यह देखकर बेहद निराशा होगी कि उससे मैं अब भी शक्ति और साहस प्राप्त कर सकता हूं."

आगंतुक के चेहरे में एक विचित्र और सुंदर परिवर्तन आने लगा. उस पर विजय और कोमलता अंकित थी.

अधैर्य से बजाई हुई घंटी फिर बजी.

वह कुछ मुस्कराता-सा देहली पर नौकरानी से मिला. "अच्छा हो कि तुम पुलिस बुला लो." उसने कहा, "मैंने तुम्हारे मालिक की हत्या कर दी है." □

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

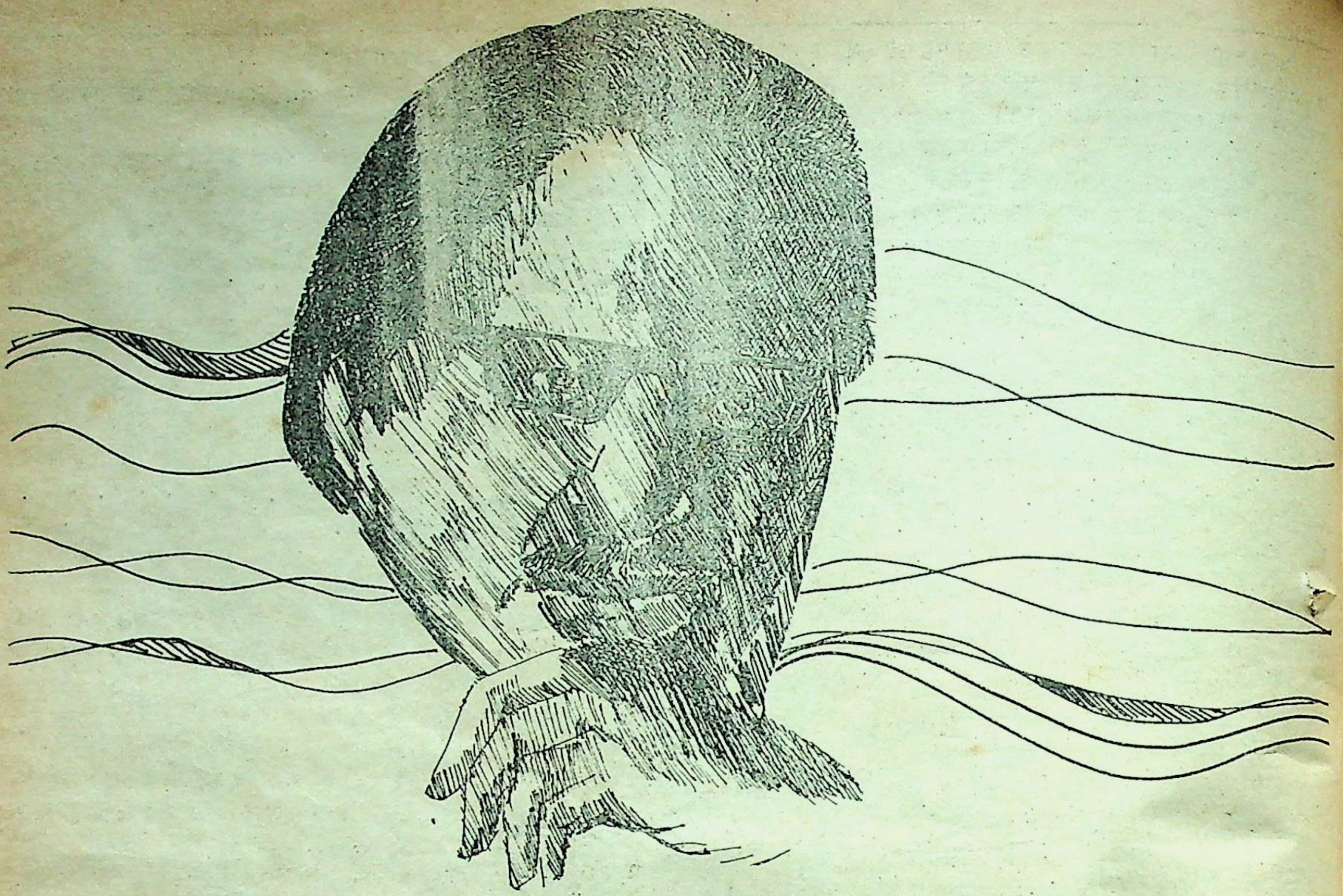

आत्मावलोकन

हड़ताल

भैरव प्रसाद गुप्त

'सारिका' के इस रजत जयंती वर्ष के जनवरी प्रथम अंक से प्रारंभ इस स्तंभ में हम गत चौबीस वर्षों में 'सारिका' में प्रकाशित प्रत्येक वर्ष की श्रेष्ठ कहानी का पुनः प्रकाशन कर रहे हैं. इसके साथ ही हम कहानी पर एक वरिष्ट रचनाकार की टिप्पणी भी आमंत्रित करते हैं. इस क्रम में प्रस्तुत है 'सारिका' के अक्तूबर, १९६९ में प्रकाशित यह कहानी. साथ में है इस कहानी पर हिंदी के चर्चित कथाकार-उपन्यासकार रमेश उपाध्याय की टिप्पणी.

प्रान बाबू उस समय इतने जोश और खुशी में थे कि उन्हें देखकर सभी लोग चकित थे. लोग उनकी हर हरकत और हर बात को चकित हो-होकर देख सुन रहे थे. किंतु प्रान बाबू को अपनी अस्वाभाविक हरकतों और बातों का जैसे कोई होश ही न था. वह तो अपनी ही खुशी और जोश में मस्त थे. उनकी कमजोर टांगों में जाने कहां-कहां की ताकत आ गयी थी कि वह तनिक-तनिक देर में इस मेज से उस मेज और उस मेज से उस मेज पर तुल-तुल चलकर पहुंच जाते. बड़ी गर्मजोशी के साथ मेज पर बैठे हुए लोगों से हाथ मिलाते और अपनी बात शुरू कर देते. उनकी गूंगी जबान आज जैसे कैंची की तरह चल रही थी. उनके सूखे चेहरे पर एक अजीब रौनक थी और उनकी निस्तेज, गढ़ों में धंसी हुई नम आंखों में एक अजीब चमक थी.

इधर बहुत दिनों से प्रान बाबू कॉफी हाउस तो आते थे, लेकिन कॉफी न पीते थे. कोई पूछता तो अजीब-सा दयनीय मुंह बनाकर कह देते, "धन्याद, मन नहीं कर रहा है." किंतु आज कोई पूछता तो वह झट बड़े उत्साह के साथ हंसते हुए कहते, "क्यों न पीऊंगा! जरूरी पीऊंगा. मंगाइये! हां, तो एक सिगरेट भी दीजिए!"

कदाचित उनकी खुशी और जोश का मजा लेने के लिए ही हैरत में पड़े हुए कई लोग एक साथ ही उनकी ओर अपना-अपना पैकेट बढ़ा देते. तब प्रान बाबू एक के पैकेट से एक सिगरेट निकालते हुए दूसरों को आश्वस्त करने की गरज से कहते, "इनकी पी लूं, फिर आप लोगों की भी पिऊंगा.! धन्यवाद! धन्यवाद!"

और सिगरेट जलाकर इतने जोर से कश लेने लगते, जैसे वह सिगरेट नहीं, गांजे का दम लगा रहे हों. पांच-सात कश में ही वह एक सिगरेट खत्म कर दूसरी जला लेते. यही हाल कॉफी का भी था. कॉफी आते ही वह उठा लेते और उसे ऐसे गटक जाते, जैसे वह गर्म कॉफी न होकर ठंडा पानी हो. वह आज कितनी बार कॉफी गटक चुके थे और कितनी सिगरेटें फूंक चुके थे, इसका कोई हिसाब नहीं था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर बहुत दिनों से उन्होंने जैसे अपना मुंह सी रखा था. कभी किसी ने औपचारिकतावश कुशल समाचार पूछ ही लिया तो वह जैसे बड़ी मुश्किल से अपने मुंह का एक टांका खोलते और सिर झुकाये हुए ही मुन से 'ठीक है' कहकर अपने मुंह का टांका दुरुस्त कर लेते. इसी कारण कदाचित लोग उन पर दया करते और उनसे कोई बात न करते. लेकिन आज वह मेज पर आते ही लोगों की ओर हाथ बढ़ाते हुए मुंह फाड़कर बोल पड़ते, "हमारे कार्यालय में तो मुकम्मल हड़ताल हो गयी."

लोग हैरत से उनका मुंह ताकने लगते तो वह हंसकर कहते, "आप लोग मेरा मुंह क्या ताक रहे हैं? मैं पक्की बात कह रहा हूं. अपनी आंखों से ही देखकर आया हूं."

"तो आप अपने कार्यालय गये थे?" कोई पूछ लेता.

"गया नहीं था तो क्या मैं कोई झूठ बोल रहा हूं?" बड़ी दबंगई से वह जवाब देते.

"नहीं-नहीं," कोई बात को संभालता, "इनका मतलब यह था कि जब हड़ताल में शामिल होना ही था तो आपको अपने कार्यालय जाने की क्या जरूरत थी?"

"थी क्यों नहीं?" पटाखे की-सी आवाज में प्रान बाबू बोल पड़ते, "जरूरत क्यों नहीं थी? हम लोग न जाते तो गद्दारों का मुंह काला कौन करता?"

"अच्छा-अच्छा! तो आपके कार्यालय में भी गद्दार हैं क्या?" कोई पूछ बैठता.

"गद्दार कहां नहीं हैं?" प्रान बाबू नाक चढ़ाकर फट पड़ते. . . "लेकिन हमें देखकर गद्दारों का साहस छूट गया. वे भाग खड़े हुए और हमारे यहां मुकम्मल हड़ताल हो गयी."

"हमने तो सुना है कि आपके कार्यालय पर पुलिस ने बड़ी गिरफ्तारियां की हैं." कोई कहता.

"हां," प्रान बाबू तपाक से कहते, "काफी गिरफ्तारियां हुई हैं. हमारे भ्रातृमंडल के प्रायः सभी नेता गिरफ्तार कर लिये गये हैं. अफसरों ने खुद दौड़-दौड़कर नेताओं को पहचनवाया और पुलिस से गिरफ्तार करवाया है. लेकिन इससे क्या? हड़ताल हमारे यहां मुकम्मल है. कोई भी कार्यालय नहीं गया, इतना मैं ताल ठोंककर कहता हूं. अब आप अपने कार्यालय का हाल बताइए?"

"इनके यहां तो हड़ताल आंशिक ही मालूम होती है." कोई इनकी ओर से आंखें बचाकर बताता.

"क्यों?" प्रान बाबू जैसे बिगड़कर पूछते, "ऐसा क्यों हुआ? आप लोगों ने गद्दारों को कार्यालय में क्यों घुसने दिया?"

"उन्हें पुलिस की सुरक्षा प्राप्त थी." वह बताता. . . "इन लोगों ने गद्दारों को रोकने की कोशिश की तो पुलिस ने झट गोलियां चला दीं!"

"गोलियां चला दीं?" प्रान बाबू जैसे आंखें बाहर निकालकर पूछते.

"आपको नहीं मालूम?" वह बताता, "शायद एक-दो आदमी मरे भी हैं, घायल तो कई हुए हैं."

"और आप लोग यहां . . .बड़े अफसोस की बात है. . ."

और प्रान बाबू ललकारकर कहते, "पुलिस ने अगर हमारे यहां गोलियां चलायी होतीं तो हम. . .हम. . .अब हम आपको क्या बतायें."

"आप लोगों का भ्रातृमंडल बहुत ही शक्तिशाली है." वह बेचारा जैसे शर्मिंदा होकर कहता.

"लेकिन," तभी कोई दूसरा कह पड़ता, "हमने तो सुना है कि इनके यहां कितने ही लोग छुपकर अपनी हाजिरी के दस्तखत बना रहे हैं और रात तक रजिस्टर खुला रहेगा ताकि लोग आयें और अपनी हाजिरी के दस्तखत बना जायें."

"यह झूठ है. बिल्कुल झूठ है." प्रान बाबू मेज पर घूंसा मारकर कहते' ऐसा नहीं हो सकता. हरगिज नहीं हो सकता. अफसरों ने यह अफवाह भ्रातृमंडल में फूट डालने के लिए उड़ायी होगी. लेकिन इस अफवाह से हमारे यहां कोई भी धोखा खानेवाला नहीं है. हमारा भ्रातृमंडल चट्टान की तरह ठोस और मजबूत है."

"हो सकता है, आप ठीक कहते हों." वह कहता, "मैंने तो जो बात सुनी है, कह दी है."

"आप लोग ऐसी अफवाहों से गुमराह न हों." प्रान बाबू तब और भी जोश में आकर कहते, "हमारे यहां हड़ताल शतप्रतिशत सफल हुई है और सभी जगहों पर भी हड़ताल अवश्य सफल हुई होगी. जहां पुलिस के जुल्म से हड़ताल पूरी तरह सफल न हुई हो, वहां भी हम हड़ताल को सफल ही मानेंगे. आज हमारे देश के बाबू वर्ग ने जिस अद्भुत साहस का प्रदर्शन किया है, वह हमारे देश के इतिहास में अभूतपूर्व है. . . और मैं कहता हूं कि क्रांति अब दूर नहीं है. हमारे दुखों का अंत निकट है. . . हूं! सरकार सोचती थी कि हमें अध्यादेशों से डरा देगी. हमें देखना है कि अब वह कितने हजारों-लाखों कर्मचारियों के विरुद्ध कार्रवाई करती है. कैसे हमारी मांगों को स्वीकार नहीं करती. मैं कहता हूं कि अगर अब भी सरकार के होश ठिकाने न आये तो फिर वह हड़ताल होगी, वह हड़ताल होगी कि सरकार का तख्ता उलट जायेगा. . . .

उस दिन दोपहर से रात के आठ बजे तक काफी हाउस में प्रान बाबू की यही वक्तृताएं गूंजती रहीं. इस बीच कितने ही लोग आये और गये, लेकिन प्रान बाबू जमे रहे, जमे रहे और अपनी खुशी, जोश और वक्तृताओं से लोगों को चकित करते रहे.

प्रान बाबू, कॉफी हाउस आनेजाने वालों की मंझली पीढ़ी के सदस्य, आज कोई विश्वास नहीं करेगा, लेकिन यह बिल्कुल सच है कि एक जमाने में प्रान बाबू को लिखने-पढ़ने का शौक था और इसी नाते वह बराबर पेशे से एक क्लर्क होते हुए भी, कॉफी हाउस आते थे और साहित्यकारों, पत्रकारों और विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों की मेजों पर बैठते थे. बहसों में अधिक हिस्सा न लेते हुए भी वह उनमें गहरी दिलचस्पी रखते थे और जो बात उन्हें कहनी होती थी, उसे बड़ी निर्भीकता से सपाट शब्दों में कह देते थे. वह बड़े ही सीधे, नम्र और स्पष्ट वक्ता थे, इसी कारण लोग उन्हें, उनके क्लर्क होते हुए भी, अपनी मेजों पर नापसंद न करते थे.

उनकी इस खूबी के कारण ही कॉफी हाउस के उनके सभी मित्रों को उनके विषय में सब कुछ ज्ञात था, उन्हें यह ज्ञात था कि प्रान बाबू अपने पेशे में कोई तरक्की इस कारण न कर पाये, क्योंकि वह अपने पेशे को निहायत कमीना पेशा मानते थे. और हमेशा इस प्रयत्न में रहते थे कि साहित्य में कुछ जम पायें तो इस पेशे को लात मार दें. उन्हें यह ज्ञात था कि प्रान बाबू साहित्य में इस कारण न जम सके क्योंकि उन्हें अपने पेशे के कारण साहित्य में काम करने का अवकाश ही न मिलता था. उन्हें यह ज्ञात था कि इसी कशमकश के बीच, पंद्रह-बीस बरसों में उन्होंने पांच लड़कियां और दो लड़के पैदा कर लिये और बिल्कुल टूट गये. उन्हें यह ज्ञात था कि इस टूटन के बाद प्रान बाबू क्लर्की और साहित्य, दोनों को समान रूप से गालियां देने लगे और साहित्य को इसलिए छोड़ दिया, क्योंकि वह क्लर्की न छोड़ सके और क्लर्की को इस कारण न छोड़ सके क्योंकि उनके एक अदद बीवी और सात अदद बच्चे थे. उन्हें यह ज्ञात था कि प्रान बाबू के इस निर्णय के बाद उनके सामने केवल उनका जीवन-संघर्ष शेष रह गया और इस संघर्ष के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता थी, उसे वे ठर्रे का सेवन करके प्राप्त करने लगे.

उन्हें यह भी ज्ञात था कि जब ठर्रे का परिणाम बहुत बढ़ जाने से प्रान बाबू के घर की विपन्नता बहुत अधिक बढ़ गयी तो उन्होंने ठर्रे को लात मारी और भंग के गोले का सेवन करने लगे—सस्ता और बालानशीं! उन्हें यह ज्ञात था कि इस स्थिति को पहुंचते-पहुंचते प्रान बाबू पक्के औलिया बन गये. उन्हें न तो अपने तन की सुध रही, न मन की. न कपड़े की, न जूते की. न मेजों की, न मित्रों की. उन्होंने अपने मुंह को सी लिया और कॉफी पीना बंद कर दिया, सिगरेट पीना बंद कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया, क्योंकि अब नशे के राजा से उनकी दोस्ती हो गयी थी. उन्हें यह ज्ञात था कि फिर भी प्रान बाबू ने कॉफी हाउस आना बंद न किया लेकिन उन्हें यह एक बात ज्ञात न हो सकी कि इस स्थिति में भी प्रान बाबू ने कॉफी हाउस आना क्यों बंद न किया, क्योंकि अब उन्होंने अपने मुंह को सी लिया था, अब वह कुछ बोलते ही न थे.

ऐसे प्रान बाबू सबको चकित करके जब कॉफी हाउस से निकलकर बाहर आये तो स्वभावत: उनकी चाल में भी अंतर आ ही गया था. और दिनों की तरह डगमगाते हुए चलने की जगह आज वह बिलकुल ठीक तरह चल रहे थे. और तेज भी चल रहे थे. उनकी कुछ झुकी हुई पीठ आज सीधी दिखायी दे रही थी. गढ़ों में डूबी गीली-गीली आंखों की मुंदी-मुंदी-सी रहने वाली पलकें आज पूरी तरह खुली हुई थीं. उनका ठिगना कद लंबा-सा दिखायी दे रहा था. सिले हुए-से रहनेवाले होंठ आज कुछ खुले-खुले थे और उन पर मुसकराहट भी आ-जा रही थी. और वे हिल भी रहे थे. पहले सड़क पर चलते समय वह इधर-उधर बिल्कुल न देखते थे, लेकिन आज वह जान-बूझकर अपने चारों ओर देखते हुए चल रहे थे और कोई परिचित दिखायी पड़ जाता था तो दौड़कर उससे हाथ मिलाते थे और हड़ताल की बात करते थे. किसी किसी के तो वह गले भी लिपट जाते थे.

यों मिलते-मिलाते प्रान बाबू बाजार से आगे निकल आये तो अचानक ही सुनसान, अंधेरी सड़क पर उन्हें एक धक्का सा लगा और उन्हें अब जाकर याद आया कि आज शाम को मैंने गोला तो लिया ही नहीं. यह याद आना था कि उनके पांव भंग की दूकान की ओर मुड़ गये. लेकिन जरा दूर जाकर ही वह ठिठक गये और कुछ सोचने लगे. उन्हें अचानक ही यह खयाल आया कि गोला लेने के बाद न तो मैं किसी से ठीक तरह से मिल सकूंगा और न बातें ही कर सकूंगा. अभी तो मुझे अपनी बीबी से मिलना है, बच्चों से मिलना है और उनके साथ बातें करनी हैं. फिर आज गोले की जरूरत भी क्या है. आज तो अपने ही आप मन मौज में हैं और उन्होंने पलटकर अपने घर की सड़क पकड़ ली.

दो मील पैदल चलकर वह अपने घर पहुंचे थे, लेकिन उन्हें थकावट बिल्कुल न थी उनके जोश और खुशी में कोई भी कमी न आयी थी. उन्होंने पहले की तरह बेजान-से हाथों से बंद दरवाजे की जंजीर न बजायी बल्कि जानदार हाथों से जंजीर इतने जोर से बजायी कि अंदर उनकी पत्नी चौंक उठी और उन्होंने पुकारकर कहा, "कौन है? दया के बाबू जी घर में नहीं हैं."

"अरे भाई, दरवाजा खोलो," खनकती हुई आवाज में मुस्कराते हुए प्रान बाबू बोले, "मैं हूं. दया का बाबू जी." यह दया के बाबू जी ही हैं, पत्नी को आश्वस्त हो जाना चाहिए था किंतु ऐसा न हुआ. वह और भी चौंक उठी. उनका माथा ठनक गया. आज यह कैसी आवाज है दया के बाबू जी की ! कभी उनकी ऐसी आवाज थी, अब तो उन्हें यह भी याद न था."

उन्होंने मन-ही-मन एक परेशानी का अनुभव करते हुए दरवाजा खोला ही था कि प्रान बाबू ने उन्हें अपने अंक में भर लिया और हंसते हुए बोले, "जानेमन, हमारी हड़ताल सफल हो गयी है. अब तुम कोई चिंता मत करो! हमें जल्दी ही हमारी आवश्यकता के अनुकूल वेतन मिलेगा. हमें अब कोई तंगी न रहेगी."

पत्नी ने जबरदस्ती अपने को छुड़ाते हुए कहा, "छोड़िये, यह क्या कर रहे है आप". लेकिन प्रान बाबू ने उन्हें न छोड़ा. वह उन्हें बेतहाशा चूमने लगे.

"बच्चे अभी सोये हैं. . . जाग जायेंगे. . ." हताश पत्नी ने कहा, "छोड़िए, मैं दरवाजा बंद करूं."

उन्हें छोड़कर प्रान बाबू कमरे में आ गये. कमरे में फर्श पर सातों लड़के-लड़कियां एक कतार में सोये हुए थे. प्रान बाबू ने एक-एक कर उन्हें बड़े ध्यान से देखा और फिर उनके सिरहाने बैठकर एक-एक कर उनका सिर सहलाने लगे.

दरवाजा बंद कर पत्नी कमरे में आयीं तो उन्हें लड़के-लड़कियों का सिर सहलाते हुए देखकर बोलीं, "यह आप क्या कर रहे हैं? उन्हें छोड़ दीजिए, वे जाग जायेंगे. जल्दी हाथ-मुंह धोकर खाना खा लीजिए तो मैं भी खा-पीकर आराम करूं. दिन-भर की थकी-हारी हूं. आज हड़ताल थी, फिर भी आपसे न हुआ कि जल्दी घर आ जायें."

"मैं खाना नहीं खाऊंगा." पत्नी की ओर मुस्कराकर देखते हुए प्रान बाबू बोले, "आज मैंने कई कप कॉफी पी है, बहुत-कुछ खाया भी है."

"आपने कहां से खाया-पिया?" विश्वास न करके पत्नी ने पूछा, "आपके पास पैसा तो था नहीं."

हंसकर प्रान बाबू बोले, "लोगों ने खिला-पिला दिया," दया की मां माने ही नहीं. उन्होंने कहा, "तुम जाओ, खा-पी लो."

"झूठ तो नहीं कह रहे हैं न?" पत्नी ने फिर भी विश्वास न करके कहा, "खाना है, उठकर खा लीजिए."

"नहीं, भाई, झूठ क्यों कहूंगा?" जेब से कुछ पैसे निकालकर पत्नी को बढ़ाते हुए प्रान बाबू बोले, "ये पैसे रख लो, आज मैंने गोला भी नहीं लिया. जरूरत ही नहीं पड़ी. . इस तरह क्या देख रही हो? जल्दी खा-पी लो. अब मैं आराम करूंगा."

पत्नी रसोई की ओर चली गयीं तो प्रान बाबू उन्हीं कपड़ों में एक किनारे सबसे छोटे बच्चे के पास लेट गये और उसकी देह पर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगे. अब वह चाहते थे कि उनका मन स्थिर हो जाये और वह सो जायें. उन्होंने कोशिश भी की, लेकिन उनका मन स्थिर न हो रहा था. उन्होंने सोचा कि अगर मैं किसी काम में अपने मन को लगाऊं, तो शायद वह स्थिर हो जायेगा. लेकिन इस समय वहां कौन-सा काम रखा हुआ था? वह सोचते हुए उठे और सबसे बड़े लड़के दयानंद के पास, जो दूसरे किनारे सोया पड़ा था, गये. उसके सिरहाने कई किताबें और कापियां बेतरतीब पड़ी हुई थीं. वह किताबें और कापियां तरतीब से रखने लगे. तभी उनकी दृष्टि एक जासूसी उपन्यास पर पड़ी. वह उसे हाथ में लेकर देखने लगे. उन्हें गुस्सा आया कि लौंडा फिर जासूसी उपन्यासों में पैसा बरबाद करने लगा. इसी के लिए उन्होंने कितनी बार लौंडे को डांटा और पीटा था. लेकिन आज उनका यह गुस्सा क्षणिक ही रहा. बल्कि उन्होंने एक अजीब सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से लौंडे को देखा और उपन्यास हाथ में लिये ही अपनी जगह पर आ लेटे.

वह उपन्यास खोलकर पढ़ना शुरू करने वाले ही थे कि दरवाजे से पड़ोस के कृपाल सिंह बाबू की पुकार सुनायी पड़ी, "प्रान बाबू, प्रान बाबू, हो क्या?"

"हां-हां, कृपाल बाबू! मैं हूं, भाई हूं, रुको दरवाजा खोलता हूं." बड़े उत्साह के साथ उठते हुए प्रान बाबू ने ललकारकर आवाज दी.

उनकी इस समय ऐसी ललकार भरी आवाज सुनकर कृपाल बाबू, चौंक उठे. उनका तो खयाल था कि इस समय प्रान बाबू गोले के प्रभाव से होश-हवाश खोये हुए पड़े होंगे.

प्रान बाबू ने दरवाजा खोला और एकदम उनसे लिपट गये तो उनकी हालत खराब हो उठी. हकलाते हुए वह बोले, "क्या बात है, प्रान बाबू, क्या बात है? आप. . ."

"अरे भाई", उनसे लिपटे हुए ही हंसते हुए प्रान बाबू बोले, "बधाई! बधाई! हमारी हड़ताल शत-प्रतिशत सफल रही."

"नहीं प्रान बाबू," जैसे रोककर कृपाल बाबू बोले, "हमारी हड़ताल. . ."

उन्हें छोड़कर प्रान बाबू अचकचाकर बोले, "क्या कहते हो कृपाल बाबू, सुबह हमने अपनी आंखों से ही. . ."

"सुबह की बात ठीक है," कृपाल बाबू ने मुंह लटकाकर कहा, "लेकिन भाई, बाद में लोग छुपकर रजिस्टर पर अपनी हाजिरी के दस्तखत बना आये हैं. इस समय भी दस्तखत बन रहे हैं. मुझे तो शाम को शंकर बाबू ने बताया कि ऐसा हो रहा है. मैंने जाकर देखा तो शंकर बाबू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हड़ताल: अविश्वसनीय मगर सच!

रमेश उपाध्याय

भैरवप्रसाद गुप्त की कहानी 'हड़ताल' उन लोगों के लिए एक सही सबक साबित हो सकती है, जो कहानी से प्रकृतवादी या अनुभववादी किस्म की 'विश्वसनीयता' की मांग करते हैं और आज की अनेक यथार्थवादी कहानियों को कृत्रिम, गढ़ी हुई, यांत्रिक आदि कहकर खारिज कर देते हैं.

इस कहानी का गरीब क्लर्क प्रान बाबू जीवन को सुंदर और सार्थक बनाने की सहज मानवीय आकांक्षा तथा सर्जनात्मक ऊर्जा से युक्त एक निम्नमध्यवर्गीय व्यक्ति है, जो साहित्यकार बनना चाहता है, लेकिन आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों के चलते एक मामूली क्लर्क बनकर रह जाता है. पत्नी और सात बच्चों की जिम्मेदारी उठानेवाले इस गरीब क्लर्क का जीवन-संघर्ष इतना कठिन है कि वह उसमें बिल्कुल टूट जाता है और भांग के नशे में गाफिल रहकर चुपचाप-सी जिंदगी जीने लगता है. लेकिन जब एक दिन सरकारी दफ्तरों में हड़ताल होती है, वह एक नयी उम्मीद से भर उठता है. उसे लगता है कि 'क्रांति अब दूर नहीं है. हमारे दुखों का अंत निकट है.' लेकिन सरकारी दमन, आतंक और मध्यवर्गीय भीरु लोगों की गद्दारी के कारण हड़ताल असफल हो जाती है तो उसे जबर्दस्त धक्का लगता है और वह मर जाता है.

कहानी में प्रान बाबू को उस दिन बहुत उत्तेजित और प्रसन्न दिखाया गया है, जिस दिन हड़ताल होती है. उसकी उत्तेजना और प्रसन्नता का कारण यह है कि हड़ताल उसे पूर्णतः सफल मालूम होती है. यहां लेखक बड़े कौशल के साथ यह दिखाता है कि जनता का एकजुट संघर्ष ही उसके दुखों का अंत कर सकता है, लेकिन साथ ही वह यह दिखाना भी नहीं भूलता कि यथार्थ में यह संघर्ष उतना सीधा और आसान नहीं है, जितना प्रान बाबू जैसे दुखी किंतु भोले लोग समझते हैं. यथार्थ में एक ओर यदि हड़ताल को सफल बनाने वाली परिवर्त्तनकामी शक्तियां हैं, तो दूसरी ओर हड़ताल को तोड़ने वाली यथास्थितिवादी शक्तियां भी हैं. अन्य लोग इस यथार्थ को प्रान बाबू के सामने लाने की कोशिश करते हैं, लेकिन वह अपने अतिरिक्त उत्साह में वस्तुस्थिति को देख ही नहीं पाता. यह एक मध्यवर्गीय विडंबना है और प्रान बाबू जैसे सदाशयी मगर भोले लोगों की ट्रेजेडी भी, जो एक स्तर पर करुणा जगाते हुए भी कामेडी जैसी लगती है.

हड़ताल को विषय बनाकर बहुत-सी कहानियां लिखी गयी हैं, जिनमें समझौता-परस्त मध्यवर्गीय लोगों की नकारात्मक भूमिका का चित्रण किया गया है. लेकिन क्या 'हड़ताल' का प्रान बाबू नकारात्मक चरित्र है? या कि कहानी पाठक पर यह निराशाजनक प्रभाव डालती है कि ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में लोग एकजुट हो ही नहीं सकते और उनका संघर्ष सफल हो ही नहीं सकता? भैरव जी ने बड़ी कलात्मकता के साथ प्रान बाबू के चरित्र को पॉजिटिव बनाया है और यह दर्शाया है कि समाज में ऐसे लोग भी हैं, जो भोले सही, कुछ हद तक मूर्ख सही, भावुक और आदर्शवादी सही, लेकिन जो मर जाते हैं पर समझौता नहीं करते. कहानी में प्रान बाबू की आकस्मिक मृत्यु एक झटका है, जो पाठक को झकझोरकर उसे सचेत बनाता है और कहानी एक करुण किंतु आशाजनक पॉजिटिव नोट पर खत्म होती है.

ऊपर से देखने पर यह कहानी बिल्कुल गढ़ी हुई और अविश्वसनीय लगती है, लेकिन वास्तव में यह यथार्थवादी कहानी-कला का एक सुंदर नमूना है. व्यंग्य और विडंबना के सधे हुए इस्तेमाल से मध्यवर्गीय जीवन की जो ट्रेजिकामेडी इस कहानी में उभारी गयी है, अत्यंत सार्थक और प्रभावशाली है. मैं इसे चेखव की प्रसिद्ध कहानी 'एक क्लर्क की मौत' से दो कदम आगे की रचना मानता हूं. □

● 107, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार नयी दिल्ली-110063

की बात ठीक निकली. क्या करता, मैं भी दस्तखत बनाकर अभी लौटा हूं. भाई सोचा, पता नहीं तुमको मालूम है कि नहीं, सो चला आया तुम्हें बताने. साहब कहते थे, रात भर दस्तखत बनेंगे. भाई, तुम भी जाकर बना आओ."

सुनकर प्रान बाबू के दिल की धड़कन ही जैसे बंद हो गयी. उन्हें लगा कि अभी बैठ न गये तो गिर पड़ेंगे. वह माथे पर हाथ रखकर वहीं बैठ गये.

"भाई, मुझे भी बड़ा अफसोस है." कृपाल बाबू ने उन्हें समझाते हुए कहा, "लेकिन किया ही क्या जा सकता है? जाओ. . .फिलहाल दस्तखत बना आओ, फिर देखेंगे. . . ठीक है न?"

प्रान बाबू को जैसे कुछ भी सुनायी न दिया वह जवाब क्या देते?

"मैंने अभी खाना नहीं खाया है, बच्चे इंतजार कर रहे हैं. तो मैं चलूं न?" कृपाल बाबू ने उस पर झुककर पूछा.

फिर भी प्रान बाबू कुछ न बोले तो वह सीधे होकर बोले, "सोच लो भाई, लेकिन मैं तो यही कहूंगा कि अब खामखाह के लिए सिर कटाने से कोई फायदा न होगा." कहकर कृपाल बाबू चले गये. प्रान बाबू सुन्न-से वहीं सिर पर दोनों हाथ रखे बैठे रहे.

रसोई उठाकर पत्नी दरवाजे पर आयीं और उन्हें इस तरह बैठे हुए देखा तो उन्होंने पूछा, "वहां क्यों बैठे हैं? कृपाल बाबू चले गये क्या?"

उनसे कोई उत्तर न पा, पत्नी उनके पास आयीं और उनकी बांह पकड़कर उन्हें उठाती हुई बोलीं, "क्या हुआ? कृपाल बाबू ने कुछ कहा है क्या? चलिए अंदर चलिए."

वह सहारा देकर उन्हें अंदर ले आयीं और उन्हें उनकी जगह पर बैठा दिया.

दरवाजा बंद करके वह लौटीं तो प्रान बाबू लेट गये थे. वह उनसे कुछ पूछने को हुईं लेकिन फिर यह सोचकर वह चुप रह गयीं कि आराम करने का समय है, सुबह देखा जायेगा. मच्छर भिन-भिना रहे थे. इसलिए उन्होंने उन्हें चादर ओढ़ा दी.

हमेशा की तरह सुबह चाय बनाकर पत्नी उन्हें जगाने आयीं. उन्होंने कई बार उन्हें पुकारा, लेकिन प्रान बाबू न तो सुगबुगाये और न ही उनमें कोई हरकत हुई. तब पत्नी ने चादर हटायी और उनकी नजर प्रान बाबू की टंगी हुई आंखों पर पड़ी थी कि वह चीख मारकर गिर पड़ी.

प्रान बाबू मर गये थे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या मकसद है जीने का?" यह सवाल आदमी को पूरी तरह बदल सकता है. संसारी को संन्यासी बना सकता है और अपराधी को. . .? उसी सवाल से जूझते अपराधों की दुनिया के एक मोहरे सरना की त्रासदियों का किस्सा, आते हुए लोग श्रृंखला की उनतालीसवीं कड़ी

रोशनी की ओर

ऋषि प्रियदर्शी

कादर ने दोनों हाथों से उसे हवा में ऊपर उठाया और सड़क पर पटक दिया. डामर की सड़क पर सिर बजने से रंग-बिरंगे तारे उसकी आंखों में नाचने लगे. अब उसकी समझ में सब कुछ आ गया था. उसकी आंखों की नींद अब पूरी तरह उड़ चुकी थी.

ये लोग उसे जिंदा नहीं छोड़ेंगे. . . एक झटके-से वह उठकर खड़ा हो गया. मगर तभी कादर का घूंसा उसकी छाती से टकराया. किसी की लात चली और वह असहनीय पीड़ा से वह दोहरा हो गया. दो हाथों ने उसे फिर से ऊपर उठाकर सड़क पर पटका. . .

फिर उन लोगों ने उसे उठाया और ट्रक में डालकर ले चले.

'घर्मा ट्रक बाडी मेकर' के पिछले हिस्से में एक अंधेरी, सीलन युक्त कोठरी है. कच्चा फर्श, बिना प्लास्टर की दीवारें जिन्हें गारे से चिना गया है. फर्श पर कबाड़ का ढेर इधर-उधर फैला है. ट्रक और बढ़ई मिस्त्रियों की ठक-ठक, ठुक-ठुक कोठरी के बाहर दिन-रात गूंजती रहती है.

इसी कोठरी में लाकर उन्होंने उसे पटक दिया.

यह कोठरी सरना के लिए नयी नहीं है. इस कोठरी में वह अक्सर आता रहा है. मिल मजदूर यूनियन के कानूनी सलाहकार बाबू सुंदर लाल का कत्ल इसी कोठरी में किया था, कादर ने. मारने के बाद लाश के तीन टुकड़े किये गये थे, जिन्हें उसने और कादर ने ही ले जाकर दूर गंगाजी में फेंका था. खून से सनी कोठरी के फर्श की मिट्टी खुरचकर जहां-जहां खून था चीनी के दाने डाले थे. हरसरन की बहन कमला का कत्ल भी इसी कोठरी में हुआ था. कत्ल से पहले कमला के साथ बलात्कार भी किया गया था. और जब इंस्पैक्टर शशिभूषण, कादर के पीछे हाथ धोकर पड़ गया था, वह इसी कोठरी में छिपा रहा था. . तब तक, जब तक कि मुकुट सेठ ने अपने प्रभाव से शशिभूषण का तबादला नहीं करा दिया था.

इस कोठरी में लाये जाने का मतलब है मौत. सरना जानता है. . वे लोग उसे जान से मार डालेंगे. . . कोठरी के फर्श पर पड़ा हुआ सरना सोच रहा है कि उसने अच्छा किया या बुरा. . . नहीं जानता. पर वे लोग उसे जिंदा नहीं छोड़ेंगे. यह जरूर जानता है.

पर. . मिल-मजदूरों के बच्चे अब कुछ दिन और जिंदा रह सकेंगे. जल्दी भूखे नहीं मरेंगे. उनका संघर्ष कम से कम कुछ दिन तो और चल ही सकेगा, पर सरना मर जायेगा. . मर जाये सरना. . क्या फर्क पड़ता है. . . सरना जिंदा ही कब था. . क्या फायदा है सरना के जीते रहने का, क्या मकसद है?. . . अपने जीने का मकसद सरना नहीं जानता. कभी सोचा ही नहीं. हां, शुरू-शुरू में यह आशा जरूर रहती थी कि कुछ पैसे इकट्ठे हो जाने के बाद वह गांव जायेगा. मां से माफी मांग लेगा. बा के पांव पकड़कर तब तक बैठा रहेगा जब तक कि वे उसे माफ नहीं कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देगी. अपनी सारी कमाई उनके पैरों में रख देगा. . . और मैया . . मैया तो उसे देखते ही गले से लगा लेंगे. . वो राधा से बात करेगा. . . अगर वह तैयार हुई तो उससे शादी. . पर नहीं, वह भ्रम भी टूट गया था, एक बार कटार का जख्म भर जाने के बाद.

बापू मर चुके थे. घर में घुसते ही मैया ने मां को संबोधित करके कहा था, "इससे कह दे मां, यहां से चला जाये. अब क्यों आया है. . . जायदाद बांटने?"

चला आया सरना. फिर कभी मुड़कर नहीं देखा. गांव, घर की बात भूल ही गया. अब किसी की याद नहीं आती. कभी-कभी राधा की याद आती है बस. अपने दिल की बात उससे न कह पाने का क्षोभ अब तक है उसे.

. . सचमुच क्या मकसद है सरना की जिंदगी का. . नहीं, कोई मकसद नहीं. सरना जिंदा है . . सांस ले रहा है, इसलिए जी रहा है. मौत आयेगी तो मर जायेगा. . .

बिना मकसद जीने से क्या फायदा. . . . एक हल्की-सी कराह के साथ उसने करवट बदली. उसकी दाहिनी आंख में बेहद पीड़ा हो रही है. शायद किसी की कोहनी उसकी आंख में लग गयी थी. आंख के चारों ओर सूजे हुए स्थान पर आहिस्ता-आहिस्ता उसने अपनी उंगलियां फिरायीं और फिर सोचने लगा.

. . शंकर कहता था कि अब मजदूरों के सामने दो ही रास्ते हैं. . या तो वे झुक जायें, हड़ताल खत्म कर दें या. . या भूखे मर जायें. कई दिन से उनके पीपों में आटा नहीं है. रमतारा परसों बनिये की दूकान का ताला तोड़कर दो कट्टे चावल निकाल लाया था. डकैती की रिपोर्ट बनवा दी मुकुट सेठ ने. छह मजदूरों को जेल भिजवा दिया.

. . . नहीं, मुकुट सेठ मजदूरों पर झूठा मुकद्दमा नहीं बनवा सकता. गेहूं ब्लैक का था. . बिना परचों में चढ़ा. . .पाकिस्तान भेजा जा रहा था. नहीं, सेठ कुछ नहीं कर सकेगा. . . लेकिन क्या तूने ठीक किया सरना.

. . .पता नहीं. किंतु विवश मजदूरों को अपने हक के लिए लड़ना ही चाहिए. लड़ते रहना चाहिए. मुकुट सेठ जैसे आदमी के सामने झुकना... समझौता करना, हल नहीं है.

कोठरी के दरवाजे पर थोड़ा खटका हुआ. दरवाजा खुला. एक-एक करके पांच आदमी अंदर आये. कादर, गफ्फार, दर्शी, बुंदू, पांचवा ट्रक यूनियन का अध्यक्ष सरदार धर्मा है. बीसियों ट्रकों का मालिक. मुकुट सेठ का का खास आदमी. कल तक सरना भी धर्मा के लिए काम करता था. कादर, गफ्फार, दर्शी, बुंदू, ये सब उसके साथी थे, मगर आज...

दर्शी ने उसे बालों से पकड़कर उठाया और फर्श पर सीधा खड़ा कर दिया. धर्मा अब उसके बिल्कुल सामने था. सरना की आंखें धर्मा से मिलीं. धर्मा की खूंखार आंखें गुस्से के कारण लाल हो रही थीं. सरना के होंठों पर मुस्कराहट फैल गयी.

सरना की मुस्कराहट ने धर्मा को चिढ़ा दिया. . उसका खून खौल गया. . . चटाक. . चटाक. . . . "हरामजादे, गेहूं का पैसा तेरी खाल से वसूल करूंगा. . तूने हमारे साथ तो गद्दारी की ही. . .ये भी नहीं सोचा कि गेहूं मुकुट सेठ का है."

एक पल के लिए सरना की आंखों में अंधेरा उतर आया मगर दूसरे ही पल उसके होंठों पर फिर वही मुस्कराहट आ गयी. . अपना गाल सहलाते हुए सरना ने कहा, "क्या करोगे. .मुझे जान से मार डालोगे. .. मार डालो. . .कर लो मेरी खाल से वसूल. .पर धर्मा, एक ट्रक गेहूं का सौदा सरना की खाल से. . बहुत महंगा है. . ."

" . . . मारो साले को. . . "धर्मा चीखा. वे चारों उस पर टूट पड़े.

वे चारों उसे मारते रहे. . मारते रहे. सरना बेहोश हो गया.

वे लोग जा चुके थे. सरना का शरीर बुरी तरह दुख रहा है. उसकी आंखें जल रही हैं. बमुश्किल उसने आंखें खोलीं. कोठरी की छत को कुछ देर तक यूं ही ताकते रहने के बाद उसने आंखें बंद कर लीं. पेट में बेहद ऐंठन हो रही है. सारी शिराएं जैसे फट जाना चाहती हैं. उसने मचलकर फर्श की मिट्टी को अपनी मुट्ठी में भरना चाहा. काश! पानी की कुछ बूंदें ही उसे मिल सकतीं.

कोठरी के उस कोने में घड़ा रहता है, सरना जानता है. वह चाहता है कि पानी पिये. अपने बदन की समूची ताकत बटोरकर सरना दोनों कुहनियों पर ऊपर उठता है. मगर गिर पड़ता है. एक अजीब तरह की बेहोशी उस पर छाने लगती है. . . कुछ दृश्य, कुछ चित्र गड्ड-मड्ड होकर उसके जेहन में दौड़ने लगते हैं. कभी अस्पष्ट, धुंधले, . .कभी बेहद साफ-साफ होकर. सरना अतीत में डूबने-उतरने लगता है. . .

. . . सरना. . . सरनामसिंह. . . सरना. . . सुभाष. . . सुभाष. . . सरना है. .. सरनामसिंह है. . . नहीं सुभाष सुभाष है. . . सरना सरना है. . . और गांव है, हवेली है. . . मां है, बापू है. . . मैया है. . . बिसना है. . . संतोखसिंह है. . . मक्खनसिंह है. . . धर्मा है. . . मां बनाम चुप्पी . . . बापू बनाम ताने. . . तिरस्कार है. अविश्वास है. हवेली नर्क है. . . सरना ट्रक क्लीनर है. . .सरना. ट्रक ड्राइवर है. . . सरना का कोई नहीं है. . . सरना किसी का नहीं है. . . सरना सबका है. सरना ने जमाना देखा है.

सरना ने चार साल तक ट्रक क्लीनरी की है. जब सरना आया था, तब वह सरना नहीं था. . . सुभाष था. सरना के दाढ़ी है. . . सुभाष के दाढ़ी नहीं थी. सरना की पसलियों में कटार से बना जख्म है. . . सुभाष के नहीं था. सुभाष को सरना बनाया बिसना ने और मक्खन सिंह ने. . . सरना बनाया धर्मा ने. . . सरना को याद आ रहा है. . .

चव्वन छियत्तर है. ड्राईवर है बिसना. सरना क्लीनर है. ट्रक है. ट्रक में माल है. सफर है. दिन-रात सफर है. और. . . गाड़ी में पंचर हो गया है. सुनसान इलाका है. बिसना पेड़ के नीचे लेटा है. सरना स्टेपनी नीचे उतारता है. जैक उतारता है. बिसना जैक लगाने को सरना से कहता है. सरना जैक लगाता है पर जैक नहीं लगता. बिसना सरना को गाली देता है. सरना सुलगता है. लाल लाल आंखों से बिसना को घूरता है. बिसना गाली देता है. बिसना सरना को जैक लगाना सिखाता है. स्टेपनी बदल गयी है. बिसना को एक दिन ड्राइवर बना देने का वादा करता है. सरना खुश हो जाता है.

फिर सरना है. बिसना है. . . बिसना के मुंह में ठर्रे की बदबू है. सरना के गालों पर बिसना के दांतों के निशान हैं... सरना बिलबिलाता है. . . चीखता है. . . पर इलाका सुनसान है. . . सरना बिसना को वरजता है. . . पर बिसना सरूर में है. . . और फिर. . .

सरना बिसना की पकड़ से अपने को छुड़ा लेता है. . . सड़क पर बड़े जोर से दे मारता है. . . डामर की सड़क पर बिसना चित्त लेटा है. . . सरना के लात-घूंसे हैं. ठर्रे की बोतल है. . . बिसना का सिर है. . . बिसना खून से लथपथ है. . . फटी आखें ऊपर की ओर उठ गयी हैं. . . सरना घबराता है. . . वह भागता है. . . भाग रहा है. . .

यह तब की बात है जब सुभाष, सरना बना था. आज से चौदह साल पहले.

क्या नहीं देखा सरना ने. . सरना ने बहुत कुछ देखा है. बहुत कुछ सहा है.

इकतालीस पंद्रह है. ड्राइवर है मक्खन सिंह. सरना क्लीनर है. सरना हैल्पर है. ट्रक में माल है. . . सफर है... सफर है. . . मक्खन सिंह आदमी अच्छा है, पर ऐयाश है. . . सरना को मक्खन सिंह से क्या लेना-देना. . . उसके लिए तो. . . ढाबे की रोटी है. भरपेट मसालेदार मीट है या मुर्गा है. . . ठर्रे की बोतल है. सड़क की टैक्सियां हैं.

सुभाष ब्राह्मण था. मीट छू नहीं सकता था. ठर्रा पी नहीं सकता था, लेकिन सरना की कोई जात नहीं है. सरना हिंदू नहीं, सरना मुसलमान नहीं है. सरना सिख भी नहीं है. सरना बस सरना है, महज एक नाम.

सरना को ड्राइवरी करना आ गया है. मक्खनसिंह ने सिखाया है. मक्खनसिंह सरना का उस्ताद है. सरना की जिंदगी शायद अब [illegible]रें पर आती जा रही है . . . पर नहीं . . . सरना को इसकी कोई खास परवाह

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी नहीं है.

सफर है. . . सफर है. कुलदीप का ढाबा है. गफ्फार मिलता है. मक्खनसिंह से पूछता है, "मक्खन एक सवारी है. फिरोजपुर जायेगी. . . ले जाणी है. . . "

"बिठाल दे." मक्खनसिंह कहता है.

"कसम खुदा की, राजस्थानी माल है. . . बिल्कुल दही-मक्खन." हो हो करके गफ्फार हंसता है.

एक लंबूतरे चेहरे, सांचे में ढले से बदन की राजस्थानी औरत साथ हो जाती है. फिरोजपुर जायेगी. वहां एक मारवाड़ी सेठ की हवेली में नौकर है.

सफर है. . . सफर में जरा झपकी लेने के लिए सरना ट्रक के ऊपर पहुंच जाता है. और लेटते ही नींद आ जाती है. गहरी नींद. . . झटका खाकर नींद खुलती है. . . देखता है—उजाड़ जंगल है. सूरज डूब रहा है. गाड़ी खड़ी है. शायद कुछ गड़बड़ होगी. सोचता है. . . वह नीचे उतरना चाहता है. . . मगर आंखों में नींद अभी बाकी है. . .

सहसा जंगल में एक चीख गूंज उठती है. वह देखता है. . . वह राजस्थानी औरत मक्खनसिंह की भुजाओं में कसमसा रही है. . . "सरदार जी छोड़ो. . . मुझे छोड़ दो. . . मैं ऐसी नहीं हूं. पैसे नहीं होने से ही तुम्हारे ट्रक में बैठी हूं. . . छोड़. . . "

मगर. . . मक्खनसिंह की भुजाओं का दबाव बढ़ता जा रहा है. सरना नीचे उतर आया है, "उस्ताद, इसे छोड़ दो."

"चुप बे. . . जाकर चुपचाप सो जा." मक्खनसिंह सरना को आंख दिखाता है.

". . . उस्ताद, छोड़ दे उस्ताद! . . . यह टैक्सी नहीं है." सरना फिर जाकर मक्खनसिंह की चिरौरी करता है.

"हट मां. . .के. . . ये क्या तेरी बहन लगती है?" मक्खनसिंह सरना की पकड़ से छूटने के लिए मचलता है. सरना का खून खौल उठता है, "तेरी मां की. . . हां, ये मेरी बहन ही समझ. . . अब जरा हाथ लगा तो. . . चीरकर रख दूंगा!"

मक्खनसिंह सरना की बात पर ध्यान नहीं देता. वह फिर औरत की तरफ बढ़ता है. सरना और मक्खनसिंह एक दूसरे से गुंथ जाते हैं.

सरना कमजोर है, पर हिम्मतवार है. वह मक्खनसिंह को पीछे धकेल देता है. मक्खनसिंह फिर आगे बढ़ता है. सरना उसे मारता है. . . लात. . . घूंसे. . .घुटना. . .कोहनी, "स्साले, सारी उस्तादी झाड़ दूंगा."

मक्खनसिंह सड़क पर पस्त होकर पड़ा है. मक्खनसिंह को वहीं पड़ा छोड़कर सरना ट्रक स्टार्ट करता है. औरत को ट्रक में बिठाकर चल पड़ता है. जाते-जाते कहता है, "जाता हूं उस्ताद. . . अगर जंगली जानवरों से बच जाओ तो सुखवंत के ढाबे से ट्रक ले लेना. वहीं छोड़ दूंगा.

बहुत बाद में एक बार मक्खनसिंह सरना को रोककर अपनी कटार उसकी पसलियों में घुसाकर घुसा देता है.

एक अजीब तरह की बेहोशी जो उसपर छायी थी, टूट चुकी है. मगर सोच का क्रम जारी है. . . सरना मरा नहीं था. सात साल हो गये, अस्पताल से बाहर आकर वह धर्मा के लिए काम करने लगा. पिछले सात बरस में सरना एक बार भी नहीं पकड़ा गया. धर्मा के ट्रक कहीं नहीं रोके जाते. कभी-कमार अगर कहीं कोई उसका कोई ट्रक रोकने की जुर्रत कर भी लेता है तो मुकुट सेठ का नाम सुनते ही गाड़ी को पास हो जाने देता है. एक बार प्रदेश की सीमा पर गेहूं का ट्रक उलट गया था. सरना ने तुरंत खबर धर्मा के पास भिजवायी थी. धर्मा और मुकुट सेठ फौरन वहां पहुंचे गये थे. साथ के खाली ट्रक में गफ्फार और कादर भी थे. उलट गये ट्रक का माल खाली ट्रक में पलटा जाने लगा था. लेकिन तभी एक इंसपैक्टर ने आकर रोक दिया. गेहूं के परचे देखने की मांग करने लगा था.

इंस्पैक्टर शायद नया था. मुकुट सेठ को नहीं जानता था. मुकुट सेठ ने दस हजार रुपये देने की पेशकश की थी, पर फैसला नहीं हुआ. इंस्पैक्टर गाड़ी बंद कराना चाहता था. तब कादर ने धर्मा का इशारा पाते ही इंस्पैक्टर पर रिवाल्वर तान दी थी. मुकुट सेठ ने तब उसे रिश्वत या गोली दोनों में से किसी एक को चुनने के लिए कहा था. तब फैसला हो गया था. और फिर उस रूट पर सरना की गाड़ी को कभी नहीं रोका गया.

शंकर ने सरना को बहुत बार कहा था, "सरना, ठीक है, आज सभी बुरे हैं, कोई भी अच्छा नहीं बनना चाहता. पर फिर भी कुछ लोग तो अच्छे हैं अवश्य. . मुठ्ठी भर ही सही. . . आज जरूरत इसी बात की है कि जो लोग अच्छे हैं, उन्हें बुराई से बचा लिया जायेगा. भले बने रह सकने लायक परिस्थितियों का निर्माण यदि किया जा सकेगा तो कभी सही सृजन भी होगा. . .और उसके लिए पहली जरूरत यही है कि हम इन बदमाशों, इन धन्नासेठों के बुरे कामों में सहायक होने से अपने को बचा लें. . . ये बुराई करें. . . बड़े बनें. . .बनते रहें मगर हमारे कंधों पर चढ़कर नहीं. . . हमारे जरिये नहीं. . . "

बहुत दिनों तक उसने शंकर की बात पर कान नहीं दिया, लेकिन शंकर की आवाज गूंजती रही उसके कानों में. . .

मिल में हड़ताल चलते पच्चीस दिन हो गये हैं मुकुट सेठ ने मिल में ताला डलवा दिया है. सरना रोज देखता है. लेबर इंस्पैक्टर आते. बड़े-बड़े अफसर आते. मुकुट सेठ के यहां रोज व्हिस्की चलती और उधर मजदूरों की बस्ती में बेचैनी बढ़ती जाती. उनके पीपों का आटा यूं भी सदा पच्चीस-छब्बीस तक आते-आते समाप्त हो जाता था. वेतन की सात तारीख पकड़ने के लिए वे अपने बच्चों की कूड़ा-कबाड़ बीनकर की गयी कमाई और बनिये के उधार पर निर्भर रहते, लेकिन पच्चीस दिन की हड़ताल ने उनकी कमर तोड़ दी थी.

रोज शाम को मजदूरों की मीटिंग होती किंतु भूख से पीड़ित मजदूर कोई फैसला न ले पाते. वे जो अनुभवी थे, जिन्होंने दुनिया देखी थी जिनकी सारी जिंदगी मिल में गल गयी थी, वे सब हड़ताल तोड़ देने के पक्ष में थे. किंतु कुछ लोग अभी भी जिद पर अड़े थे. कहते थे, "हड़ताल तोड़ देने से क्या होगा? शोषण का यही क्रम फिर से चालू हो जायेगा. मजदूरों की मां. . . बहनें फिर से बे-आबरू होंगी. उनकी इज्जत पर फिर से हाथ डाला जाने लगेगा." वे इधर-उधर मंत्रियों को, दूसरे लोगों को पत्र लिखते. उन्हें मजदूरों के असली हालात से वाकिफ कराते. अखबारों में मजदूरों को लेकर चार-छह पंक्तियों की सपाट खबरें छपतीं. एक-दो पार्टी अखबारों में मजदूरों पर लंबे-लंबे संपादकीय आते. मगर मजदूरों की हालत यथावत् थी.

हड़ताल चलती रही. मजदूरों की हालत दिनों-दिन गिरती गयी. लाला लोगों ने भी आखिर उधार देना बंद कर दिया. बस्ती में भूख ही भूख फैल गयी. झोपड़ियों में भूख से बेहाल बच्चे, रोटी के एक टुकड़े के लिए तरसते भूखे लोगों का दुख देखा भी नहीं जा रहा था. मजदूर लोग शहर छोड़कर भाग जाने की सोचते भी थे. किंतु कुछ सहृदय नागरिकों का एक समूह ढाढस बंधाये था और संघर्ष. . . जीवन और मौत का फासला यद्यपि क्षीण रह गया था. . . पर चल ही रहा था.

और दूसरी ओर. . . धर्मा के ट्रक मुकुट सेठ का गेहूं लेकर बराबर पाकिस्तान जा रहे थे. शर्मा के ट्रक कहीं नहीं रोके जाते थे. ट्रक रुकवाने के चक्कर में ही बाबू सुंदरलाल जैसे लोग अपनी जान से हाथ धो बैठे थे. . .

उस दिन मुकुट सेठ का गेहूं लेकर सरना को पाकिस्तान जाना था. ट्रक में माल लद रहा था. सरना ने सोचा शंकर से मिल आया जाये. शंकर कई दिनों से दिखा नहीं था.

सरना के पाकिस्तान जाने की बात जानकर शंकर क्षुब्ध हुआ. सरना का हाथ पकड़कर खींचते हुए शंकर ने उसे बस्ती की एक-एक झोपड़ी दिखायी. मजदूरों के खाली पड़े पीपे, भूख से बेहाल औरतें, बेहाल मर्द, भूख से सिकुड़ती जा रही वृद्धों की मांसपेशियां, रोटी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए रोते-बिलखते, रुदन करते छोटे-छोटे बच्चे दिखाये—"देख सरना... देख इन्हें, ये भी इंसान हैं. देख ये बच्चे. . . .ये औरतें. . . .ये असहाय मर्द. . . देख, ये रामतारा की बच्ची है. . .पांच साल की....इसका बाप तेरे सेठ ने पकड़वा दिया है. . . भूखे पेट नींद भी नहीं आती. . . ये सारे लोग रोटी के लिए तरस गये हैं. . सेठ की जिद है इन्हें झुकाने की. .

"देख, ये सारा दिन कूड़ा-कचरा बीनकर भी दो वक्त की रोटी नहीं जुटा पा रहे हैं. . .इन बच्चों से इनका स्कूल छूट गया है. . आगे चलकर ये कैसे आदमियत को बचाकर रख सकेंगे. . इस बस्ती में. . सच कह रहा हूं. . सरना बिल्कुल सच. . इस बस्ती में कभी किसी लड़की ने. . किसी बहू ने सांझ के बाद घर की देहरी नहीं लांघी थी. . और अब. . . छोड़ यार, तुझसे क्या कहूं. . कहना बेकार है. . तू खुद उसी मुकुट सेठ का गेहूं लेकर पाकिस्तान पहुंचाने जा रहा है. . उसी मुकुट सेठ का एजेंट है तू...तुझसे क्या कहूं. . ."

सरना के हाथ मजबूती से स्टीयरिंग पर जमे हैं. आंखें सड़क पर हैं मगर दिल में, दिमाग की नसों में जैसे गरम लावा दौड़ रहा है. . . उसे लग रहा है जैसे शंकर की आवाज अभी उसके कानों में गूंज रही है. . जैसे बस्ती के सारे मर्द, औरतें और बच्चे कतार बांधे हुए एक-एक करके उसके ट्रक के आगे आकर लेटने लगे हैं और उन्हें पहियों से कुचलता हुआ वह आगे बढ़ रहा है. . इन्हीं लोगों में कहीं राधा है. .मां है, भैया है, बापू है. .और वह स्वयं है. . बापू उसे पुकार रहे हैं. . . 'सुभाष. . . सुभाष!'

अचानक उसने देखा कि वह मजदूर बस्ती में ट्रक ले आया है. गेहूं का पूरा ट्रक सरना के कहते ही चंद मिनट में खाली हो गया. उन सवा सौ मजदूरों के लिए यह गेहूं कई सप्ताह के लिए काफी होगा. हतचकित से शंकर ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर पूछा था, "क्या तुम्हें हम पर दया आ गयी?"

पता नहीं उसने अच्छा किया या बुरा. मगर सारे रास्ते उसने अपने को बड़ा हल्का महसूस किया था. खाली ट्रक ले जाकर अहाते में खड़ा किया तो चौकीदार ने उसकी ओर प्रश्नवाचक मुद्रा में देखा. डरते-डरते उसने सरना से क्या पूछा, सरना ने वह जैसे सुना ही नहीं. सिर्फ यह कहकर कि 'गेहूं लुट गया' वह अपने ठिकाने, मेहता की दूकान पर जाकर सो गया.

सरना का सारा बदन दर्द कर रहा है. उसकी छाती और पेट में असहनीय पीड़ा है. प्यास के कारण उसका गला सूख रहा है.

कुछ कदमों की आहट निरंतर पास आती जा रही है. एक आवाज उसके कानों में पड़ती है, "सेठ नहीं आयेगा. उसने कहा कि वह आकर क्या करेगा, घर्मा खुद उससे निपटे. . . घर्मा से हिसाब बाद में हो जायेगा. यह बुंदू की आवाज है.

कोठरी का दरवाजा खुला. वे चारों अंदर आये. कादर सरना को पांव की ठोकर जमाते हुए पूछता है—"गेहूं लोगों ने लूट लिया या बस्ती में जाकर खुद ही उतार आया?"

सरना की अंतड़ियों में ऐंठन होने लगती है. दर्द की लहर उसके तमाम जिस्म में दौड़ जाती है पर सरना मुस्कराकर खड़ा हो जाता है. कादर फिर लात चलाता है मगर इस बार कादर की लात सरना की पकड़ में आ जाती है. कादर धड़ाम से कोठरी के कच्चे फर्श पर गिर पड़ता है. गफ्फार और बुंदू तेजी से सरना की ओर झपटते है मगर कादर का इशारा पाकर रुक जाते हैं. फिर वह उछलकर खड़ा हुआ. अब कादर के हाथों में मोटरसाइकिल की चेन है जिसे कादर हमेशा अपनी कमर में बांधे रखता है. . .चेन सरना के जिस्म पर, सिर पर यहां-वहां लगातार पड़ रही है. सरना चीखता है, चिल्लता है मगर कादर के हाथ चेन घुमाते रहते हैं. सरना खून से लथपथ होकर गिर पड़ता है और फिर बेहोश हो जाता है.

अचानक उसने देखा कि वह मजदूर बस्ती में ट्रक ले आया है. गेहूं का पूरा ट्रक सरना के कहते ही चंद मिनट में खाली हो गया. उन सवा सौ मजदूरों के लिए यह गेहूं कई सप्ताह के लिए काफी होगा.

चेतना लौटती है. सरना देखता है, कोठरी बिल्कुल खाली है. वे उसकी लाश ठिकाने लगाने का इंतजाम करने गये होंगे, सरना सोचता है. एक कोने में चटाई के पास कांच के चार गिलास और शराब की बोतल रखी है. सरना को बेहद प्यास लगी है. उसका कंठ सूख रहा है. जीभ तालू से चिपक रही है. कोठरी के फर्श पर फैले अपने ही खून को देखकर उसका दिल कांप उठता है. यंत्रवत उसका हाथ सिर के जख्मों पर पहुंचता है. जख्मों में उंगलियां गहरे घुस जाती है. एक चीख उसके अंदर घुटकर रह जाती है. वह घबराकर अपना हाथ वापस खींच लेता है.

उसके दिमाग की नसें बुरी तरह डग-मग कर रही है. आंखों में अंधेरा छाया है. कानों में जोरों से शूं-शूं की आवाजें गूंज रही है. शायद वह मर रहा है, सरना सोचता है. कुछ देर यूंही पड़े रहने के बाद, हाथों से फर्श पर जोर देकर सरना धीरे-धीरे उठ खड़ा होता है. दीवार का सहारा लेकर हांफते हुए वह कोने में रखे घड़े तक पहुंचता है लेकिन घड़ा खाली है. वह फर्श पर गिर पड़ता है. लेटे-लेटे ही सरना अपना हाथ शराब की बोतल की ओर बढ़ाता है लेकिन न जाने फिर क्या सोचकर हाथ वापस खींच लेता है.

थोड़ी देर बाद वह अपनी शक्ति समेटकर फिर खड़ा होता है. बोतल तक पहुंचने ही वाला है कि बाहर से एक हवा का झोंका आता है, और दरवाजा थोड़ा-सा हिलता है. . .तो क्या ये लोग दरवाजे को बाहर से बंद नहीं करके गये हैं. सरना सोचता है. वह मुस्कराता है. अब उसे बोतल तक पहुंचने में शक्ति व्यर्थ करने की जरूरत नहीं है. थोड़ा-सा प्रयत्न करके यहां से निकला जा सकता है. एक प्रयत्न. . .

अपने आपको संभालता हुआ वह कोठरी के दरवाजे तक पहुंचता है. एक पुख्ता इरादे के साथ दरवाजा खोलता है. चर्र-चर्र की मद्धिम आवाज के साथ दरवाजा थोड़ा खुल जाता है. दूर गेट पर 'वर्मा ट्रक बाडी मेकर' के साइनबोर्ड के नीचे वह उन चारों को खड़े हुए देखता है. सरना लड़खड़ाता हुआ एक साइड से निकलकर पिछली गली में आ जाता है.

इतने श्रम से वह थककर चूर हो गया है. सिर से खून अभी बह रहा है. दृष्टि धुंधलाती जा रही है. हांफते हुए वह दीवार का सहारा लेकर खड़ा हो गया है. इस वक्त सरना के होंठों पर मुस्कराहट है और दिमाग में एक ही बात कि तगड़े से तगड़े दुश्मन से भी टक्कर लेकर देखा जाये तो फर्क केवल उन्नीस-बीस का ही रहता है.

दूर गली के मुहाने पर एक ट्यूब जल रही है. वह धुंधली आंखों से उस रोशनी की ओर देखता है. क्या वह वहां तक पहुंच सकेगा. . . सरना सोचता है. अगर वह उस खंभे तक पहुंच सका तो बच जायेगा.

हिम्मत करके सरना आगे बढ़ता है. यद्यपि अब उसके पैरों में उतनी शक्ति नहीं रह गयी है कि उसके शरीर का भार संभाल सकें. वह गिर पड़ता है. कूड़े के ढेर पर पड़े-पड़े ही सरना सोचता है. क्या वह यूंही मर जाने के लिए घर से निकला था. क्या यही मकसद था उसकी जिंदगी का.

नहीं. . . लेटे ही लेटे सरना अपनी दोनों कोहनियों की सहायता से रोशनी की ओर बढ़ने लगा है. एक संकल्प अभी शेष है. . . उसे उस रोशनी तक तो पहुंचना ही होगा. . . फिर चाहे. . . □

● 129 प्रेमपुरा, हापुड़-245101 (उ. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Guru...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुलेरीजी को समझने की कोशिश

'उसने कहा था' जैसी अमर कहानी के लेखक पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी साहित्य ही नहीं भाषा विज्ञान, शब्दानुशासन और भारतीय इतिहास पर भी अधिकारिक दखल रखते थे. . .गुलेरीजी की जन्मतिथि ७ जुलाई के अवसर पर प्रस्तुत है गुलेरीजी पर आधारित दो महत्वपूर्ण पुस्तकों पर समीक्षात्मक टिप्पणी. . . कि ये पुस्तकें गुलेरीजी को समझने-समझाने में कितनी सहायता करती हैं. . . .

आज जब हम इक्कीसवीं सदी के एकदम करीब जा पहुंचे हैं. . . . तब यह स्वाभाविक ही है कि हम बीसवीं सदी के प्रारंभ में साहित्योत्थान करने वाली विभूतियों का स्मरण भी करें. आज भाषा, साहित्य, कला, पुरातत्व आदि पर शोध की जो आधुनिकतम उपलब्धियां हैं. . . . उनके पार्श्व में पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी जैसे साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान अविस्मरणीय है, कहना होगा कि अब वह समय भी आ गया है जब गुलेरी जी जैसे साहित्यकारों के संपूर्ण मूल्यांकन की जरूरत महसूस होने लगी है. इसी दिशा में दो सराहनीय प्रयास पिछले दिनों देखने में आये. इनमें एक है— '**श्री चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' : व्यक्तित्व एवं कृतित्व**' और दूसरा—'**गुलेरी साहित्यालोक**'.

पहला प्रयास एक शोध ग्रंथ के रूप में सामने आया है. दो खंडों में विभाजित यह शोध ग्रंथ जहां पहले खंड में बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक साहित्योत्थान पर विस्तार से विचार करता है वहीं दूसरे खंड में गुलेरीजी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अधिकाधिक जानकारी प्रस्तुत करने का प्रयास भी करता है. सन् 1904 में जिस समय जयपुर से 'समालोचक' के माध्यम से गुलेरीजी का उदय हुआ. . . .वह साहित्य में अराजकता, अव्यवस्था और एक तरह से निरंकुशता का ही समय था. गुलेरी अपनी भाषा, शैली, समासांत पदावली, अर्थवक्रता और वैचारिक गांभीर्य के साथ बहुत जल्द समूचे साहित्य-जगत पर छा गये. और सन् 1915 में **उसने कहा था** जैसी कहानी लिखकर तो वे कथा-साहित्य के एक अविस्मरणीय स्तंभ ही बन गये.

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, किशोरीलाल गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, मैथिलीशरण गुप्त, राधाकृष्ण दास, कामताप्रसाद गुरू आदि के साथ गुलेरीजी के संबंधों को स्पष्ट करने की दृष्टि से शोधकर्ता ने विविध आत्मीय प्रसंगों को रेखांकित करते हुए महत्वपूर्ण कार्य किया है. ये प्रसंग गुलेरीजी के व्यक्तित्व को समझ सकने में काफी सहायक सिद्ध होंगे. साथ ही गुलेरीजी के निबंधकार, कहानीकार

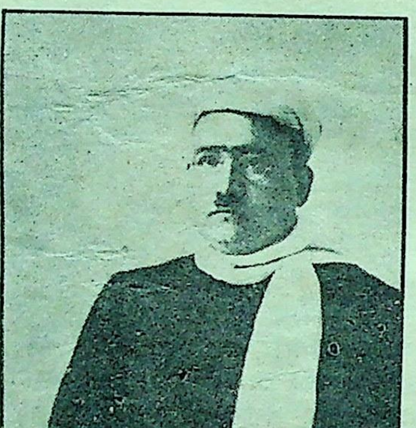

● पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी : साहित्य का एक अविस्मरणीय स्तंभ

कवि, अनुसंधाता, पत्रकार, पत्र-लेखक, समालोचक और अभिनव शैलीकार के रूप को शोधार्थी की दृष्टि से प्रस्तुत करने की कोशिश भी सराहनीय है.

'उसने कहा था' कहानी की पांडुलिपि, अनुपलब्ध कविताओं, निबंधों की खोज भी डा. पीयूष गुलेरी का महत्वपूर्ण कार्य कहा जाना चाहिए. हिंदी का आम पाठक जहां गुलेरीजी को महज 'उसने कहा था' के माध्यम से जान पाता था. . . . वहां उनके जीवन और विचारों को भी समग्रता में समझने-परखने की उल्लेखनीय कोशिश इसके पूर्व कम ही देखने में आयी. यह शोध अत्यंत सहज मुद्रा में अपनी यह बात स्थापित कर जाता है कि जहां भारतेंदुजी ने रचनात्मक साहित्य के लेखकों को तैयार किया, वहीं गुलेरीजी प्राचीन साहित्य के शोधकों को सामने लेकर आये.

अंत में दिये गये परिशिष्टों के तहत गुलेरी, श्यामसुंदर दास, मदन मोहन मालवीय, भगवानदास आदि के दुर्लभ पत्र, 'उसने कहा था' की फोटो कापी और गुलेरी चित्रावली का प्रकाशन इस पुस्तक को संग्रहणीय बनाता है.

जहां यह पुस्तक शोध के रूप में एक साहित्यकार का मूल्यांकन प्रस्तुत करती है वहीं **गुलेरी साहित्यालोक** विविध विद्वान लेखकों के लेखों और आलोचनाओं के माध्यम से रचनाओं के साथ-साथ गुलेरी-साहित्य को समझने-समझाने का स्तुत्य प्रयास कहा जाना चाहिए.

पीयूष गुलेरी के शोध ग्रंथ की तरह ही **डा. मनोहर लाल** ने भी '**गुलेरी साहित्यालोक**' को दो खंडों में विभाजित किया है. पहले खंड में गुलेरीजी के साहित्यकार, कहानीकार और भाषाविद को अपनी-अपनी नजरों से देखने-परखने की कोशिश विविध विद्वानों ने की है. साथ ही कुछ विशिष्ट संस्मरण भी इस खंड को पठनीय बनाते हैं. साहित्यकार गुलेरी पर यूं तो डा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रभाकर माचवे, डा. मनोहर लाल, विजयेंद्र स्नातक और संतराम वत्स्य जैसे सुधी आलोचकों ने अपने समीक्षात्मक आलेख प्रस्तुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किये हैं, पर जीवन वृत्त पर डा. पीयूष गुलेरी का परिचायत्मक आलेख विशेष रूप से उल्लेखनीय है. गुलेरीजी के पत्रों के माध्यम से उनके व्यक्तित्व के विविध पहलुओं को उजागर किया है पुस्तक के संपादक ने.

गुलेरीजी के कहानीकार पर भी विविध आलोचकों ने विचार किया है. सर्वाधिक विचारोत्तेजक आलेख डा. सुशील कुमार फुल्ल का है जिस में वे **'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का कांटा'** और **'उसने कहा था'** पर संयोजन की शिथिलता का आरोप लगाते हैं. उन्हें इन कहानियों में कथानक का संयोजन कृत्रिम भी जान पड़ता है. 'सुखमय जीवन' के प्रारंभिक अंश पर उनकी आपत्ति को एकबारगी सही मान भी लिया जाये पर उसने कहा था, जैसी कहानी पर उनका प्रश्न चिन्ह तार्किक प्रतीत नहीं होता. इस कहानी के संबंध में फुल्ल साहब के जिस तर्क से सहमत हुआ जा सकता है वह है—आंचलिकता का तर्क. आंचलिक शब्दों का प्रयोग एक चीज होती और आंचलिक भाषा ठीक दूसरी चीज .... जहां किसी अंचल विशेष का पूरा परिवेश उभरकर आ जाता है. इस दृष्टि से गुलेरीजी को जो लोग आंचलिक कथाकार के रूप में महत्व देना चाहते हैं, उन्हें पुनर्विचार करना चाहिए. डा. हरदयाल की इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि ये कहानियां हिंदी कहानी के शैशव-काल की रचनाएं हैं. ..और इनका मूल्यांकन करते वक्त हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए. दरअसल, गुलेरीजी की कहानियों का आकर्षण है—उनकी सर्जनात्मक भाषा.

अन्य आलोचकों में पं. मुकुटधर पांडेय, डा. नगेंद्र, डा. लक्ष्मीनारायण लाल, डा. ओमप्रकाश सारस्वत और डा. ब्रजनारायण सिंह के आलेख गुलेरीजी पर आत्मीयता भरी आलोचना प्रस्तुत करते हैं.

भाषाविद गुलेरीजी पर **डा. कैलाश चंद्र भाटिया** का लेख 'पुरानी हिंदी' पर आधारित है. वे गुलेरीजी की मूल स्थापनाओं से सहमत हैं. इनके अतिरिक्त डा. लक्ष्मीशंकर गुप्त और डा. मनोहर लाल के आलेख भी गुलेरीजी के भाषाविद पर विचार करते हैं. यह खंड और अधिक विस्तृत होता तो गुलेरीजी के भाषाविद को ज्यादा अच्छी तरह समझा जा सकता था.

यह कहा जा सकता है कि डा. मनोहरलाल ने गुलेरीजी पर एक संग्रहणीय पुस्तक संपादित की है जो रायकृष्ण दास, रघुनंदन प्रसाद शर्मा, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और प्रेमनाथ चतुर्वेदी आदि की संस्मृतियों से और भी महत्वपूर्ण बन गई है. गुलेरीजी की उपलब्ध कहानियों, निबंधों और भाषा, विज्ञान, लोक और कला, काव्य का प्रकाशन तो इस पुस्तक को समृद्ध करता ही है. □

गहरे सोच और अनुभव से जुड़ी भाषा

□ से. रा. यात्री

'खुशबू बहुत है' राबिन शॉ पुष्प का ताजा उपन्यास है. इस कृति में बहुत खुशबू है पर वह यों ही बैठे-बिठाये नहीं मिल पाती. उसे खोजने के लिए गहराई में जाना पड़ता है. उपन्यास का आरंभ फिल्मी वातावरण में होता है और यह इसलिए होता है कि उपन्यास का नायक इसी परिवेश में पीढ़ियों का संकट झेलते हुए जीने को विवश है.

पुष्प ने फिल्म जगत की नसों में फैले हुए जहर के मारक प्रभाव को प्रामाणिकता से प्रस्तुत किया है. साथ ही उसने यह भी स्पष्ट किया है कि हमारे समस्त जीवन में चाहे वह उद्योग-धंधे हों, राजनीति हो, साहित्य, संस्कृति अथवा धर्म हो, सभी जगह एक जैसी गंदगी भरी पड़ी है. मूल्यों का भायनक विघटन सर्वत्र एक जैसा है. उपन्यास में अनेक पात्र हैं किंतु बेबी और नीपा नाम की दो लड़कियों के

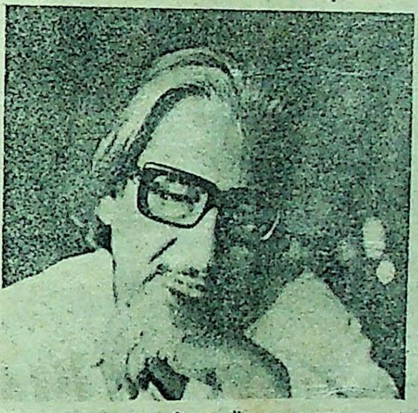

● राबिन शॉ पुष्प

अतिरिक्त सहजता किसी के लिये भी सहज नहीं है. सभी को तरह-तरह के मुखौटों में रहना पड़ता है. यही दोनों ऐसी हैं जो हर और खुश्बू बिखेरती हैं. पुरुषपात्रों में प्रकाश सिन्हा अपनी स्वाभाविक काव्तात्मकता से अंत तक जीवंत बना रहता है. तथापि उसके पास भी दो चहरे हैं. नारी पात्र तो त्रासदी के इतिहास से जुड़ी हुई हैं. हां, यह बात अलग है कि उन्होंने उसे अपना जीवन अर्पित नहीं कर दिया है.

उपन्यास का नायक रवि श्रीवास्तव एक ऐसी मां की संतान है जो दयाल से प्यार करती थी किंतु स्थितियों की विवशताओं ने उसे श्रीवास्तव के साथ विवाह सूत्र में बांध दिया. यह औरत हमेशा दयाल और श्रीवास्तव के द्वंद्व में मुब्तिला रहती है. डा. प्राभा सिन्हा भी पारिवारिक स्थितियों के द्वंद्व में झूलती है. हां छवि जोंस ही एकमात्र ऐसी औरत है जो दुखांत स्थितियों का इतिहास लेकर भी जीवंत बनी रहती है.

नायक अच्छी फिल्में बनाने की महत्वाकांक्षा पालता है पर सस्ती विज्ञापन फिल्में बनाने के लिए विवश है. एक मात्र प्रोफेसर दयाल है जो गलित राजनेता की बुभुक्षा का शिकार होकर सिनिक हो जाता है. वह नाटकों को समर्पित या किंतु महज एक सनकी बनकर रह गया. वह स्वानुभूत बात कहता है. इन नारों से कुछ नहीं होता क्योंकि इन नारों का इस्तेमाल कुर्सी छीनने के लिये किया जा रहा है. भोली-भाली जनता मर रही है जिसे रोटी चाहिए मगर कुर्सी से चिपके और कुर्सी छीनने का प्रपंच करने वाले एकदम सुरक्षित हैं.

बाहरी अनुभूति और ईमानदारी से जीने का इच्छुक एक पात्र प्रकाश सिन्हा इस पूरे उपन्यास पर छाया हुआ है. 'टूट के भी रोज-रोज मुकम्मल खड़ा हूं. जिंदगी देख में तुझसे कितना बड़ा हूं.'

गहरे सोच और अनुभव से जुड़ी होने के कारण पुष्प की भाषा इस माने में बड़ी संपन्न है कि उसे लंबी व्याख्या में नहीं जाना पड़ता. छोटे-छोटे वाक्य भी सोचने की दिशा देते हैं.

'खुशबू बहुत है'
लेखक : राबिन शॉ पुष्प
प्रकाशक : अमित प्रकाशन, गाजियाबाद
मूल्य : 22 रुपये.

चर्चित कृतियां

● **'श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी : व्यक्तित्व और कृतित्व'**
लेखक : डा. पीयूष गुलेरी.
प्रकाशक : ऋषभ चरण जैन एवं संतति. 21, दरियागंज, नई दिल्ली-2
मूल्य : 150 रुपये.

● **'गुलेरी साहित्यालोक'**
संपादक : डा. मनोहर लाल
प्रकाशक : किताब घर, मेन बाजार गांधीनगर, दिल्ली-31
मूल्य : 92 रुपये,

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक श्रद्धांजलि

लखनवी संस्कारों का चित्रकार चला गया!

मदनलाल नागर

अपने संस्कारों में कला को आत्मसात करने वाले देश के प्रमुख चित्रकार एवं उत्तर प्रदेश की आधुनिक कला के अग्रदूत श्री मदनलाल नागर का निधन भारतीय कला की अपूरणीय क्षति है. नागरजी पिछले कुछ वर्षों से हृदयरोग से पीड़ित थे, लेकिन कैनवस के प्रयोग अपनी गति से ही चलते रहे. आपने कला की अनवरत सेवा की और अंतिम समय तक उसी तहजीब और गलियों के माहौल को बनाते रहे, जिसमें जन्मे, पले, और उसी को अपना मानसिक संस्कार माना. नागरजी ने सामान्य विषयों में गहनता का अनुभव किया और उसे कला के प्रयोगों में संजोते रहे. कहना तो यों चाहिए कि उनकी सारी संरचनाएं अनुभूतियों की ईमानदारी से जुड़ी हुई थीं और यही उनकी उपलब्धियों एवं ख्याति की पृष्ठभूमि थी.

1946 से 56 यानी करीब 10 वर्षों तक नागरजी गहरे संघर्षों से जूझते रहे. बंबई और लखनऊ को मूल केंद्र मानकर अपनी रचना प्रक्रिया के साथ ही विभिन्न कला गतिविधियों का भी आयोजन करते रहे. नागरजी का संघर्ष कोई अटकाव नहीं था, बल्कि कुछ पाने की चेष्टा थी, जिसके लिए वे अनेक कलामंडपों एवं पहाड़ी स्थानों आदि पर गये, वहां का अध्ययन एवं चित्रण किया. नागरजी की कला यात्रा यथार्थवाद से प्रारंभ हुई और बिंदुवाद एवं घनवाद पर कुछ समय तक रुकी. वहां उन्हें वान-गाग की जीवन परिभाषा से भी जोड़ा गया. अपने भावुक हृदय से दैनिक एवं सामाजिक जीवन को भी रेखाओं और तैल-रंगों में संजोया, लेकिन इन सबके साथ वे लखनऊ की गलियों और उसके आकारों-स्वरूपों से अपने को अलग नहीं कर सके. गलियों के लिए नागरजी ने प्रभाव और प्रतीकों का सहारा लिया तथा संयोजन स्वयं उनके चिंतन का दार्शनिक पक्ष था. नागरजी ने जो भी किया, वह बुद्धिजीवी कलाकार का पक्ष था.

राष्ट्रीय पुरस्कार एवं उ. प्र. ललित कला अकादमी की अधिसदस्यता से सम्मानित नागरजी केंद्रीय अकादमी (सामान्य सभा) व उ. प्र. अकादमी (कार्यकारिणी) के सदस्य तथा उ. प्र. कलाकार संघ के अध्यक्ष थे. कला शिक्षा के क्षेत्र में लखनऊ कला महाविद्यालय को

गलियों के प्रारूप

27 वर्षों तक (1956 से 83) उ... सेवाएं देने के बाद ललित कला विभ... अध्यक्ष पद से अवकाश प्राप्त किया.

यह बात शुरू से मशहूर रही है कि जहां लखनवी इतिहास के झरोखे के लिए मूर्धन्य साहित्यकार अमृतलाल नागर एक प्रतीक... वहीं कला के आधुनिक आयामों में लखनवी दर्शन को संजोने में उनके छोटे भाई प्रो. मदन लाल नागर अपने में भारत के अनोखे चित्रकार हैं. अब अमृतलाल नागर अकले रह गये और प्रो. मदनलाल नागर वह इतिहास हो गये, जो हमेशा याद किया जाता रहेगा. □

▣ एन. सन्ना

हलचल

एक पौराणिक कथा का मंचन

▣ प्रभात मिश्र

भारतीय रंगमंच पर अनेक पौराणिक आख्यान अत्यंत सफलतापूर्वक मंचस्थ किये जा चुके हैं. इनके प्रस्तुतकर्त्ताओं ने हजारों वर्ष पुराने संदर्भ को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया. इसी श्रृंखला में विगत दिनों लखनऊ की नाट्य संस्था 'नक्षत्र' ने मंजूर एहतेशाम और सत्येन कुमार का नाटक 'एक था बादशाह' प्रस्तुत किया.

नगर की कई नाट्य संस्थाओं के युक्त प्रयास से नवगठित 'थियेटर फोरम' के तत्वावधान में प्रस्तुत इस नाटक में ईसा पूर्व के क्रूरतम बादशाह फिरौन की कथा और बाइबिल के उद्धरणों के माध्यम से सत्ता को हथियाने, उसे छल और क्रूरतापूर्ण कृत्यों से कायम रखने तथा अवाम पर बेपनाह जुल्म ढाने के सामयिक प्रसंग दिखलाये गये.

इस नाट्य प्रस्तुति के लिए निर्देशक कुमुद नागर ने यथार्थवादी स्वरूप चुना, परंतु सतर्कता इतनी थी कि दृश्यात्मक अन्विति बनाये रखते हुए, काल-परिवेश का सीधा परिचय कहीं परिलक्षित नहीं होता. प्रस्तुति की सफलता का श्रेय बेहिचक समूह को ही है. प्रमुख कलाकारों के बराबर ही छोटी भूमिकाओं के कलाकार प्रभावित करते हैं. कुल मिलाकर 'थियेटर फोरम' की अब तक की प्रस्तुतियों में 'एक था बादशाह' शीर्षस्थ है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

NEW! POWER PACKED SURF

नया पावर पैक्ड सर्फ़.

कण-कण में शक्ति का भंडार—पहले से कहीं ज़्यादा शक्तिशाली फ़ार्मूले से तैयार. गहरी सफ़ाई-धुलाई करे. सफ़ेद कपड़ों में लाए सफ़ेदी शानदार, रंगीन कपड़ों को बनाए सबसे चमकदार.

और यह सब करते हुए कपड़े को सही-सलामत रखे ताकि उसका नयापन बरकरार रहे, यानी हर कमीज़, हर चादर सदा लगे कोरी-कोरी, साफ़-सुथरी, ऐसी सफ़ेद जैसे नयी.

धुलाई-दर-धुलाई!

नयी निराली खुशबू: जो आपके कपड़ों में बस जाए. इतनी स्वच्छ, इतनी ताज़ी!

आकर्षक नया पैक: नये फ़ार्मूलेवाले पावर पैक्ड सर्फ़ के लिए विशेष.

तो देर किस बात की ... आज ही ले आइए अपना नया पावर पैक्ड सर्फ़!

सर्फ़ की धुलाई सबसे सफ़ेद... कपड़े दिखते सदा नये!

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन.

LINTAS-SU. 325-2721 HI

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों की सुविधा एवं बचत के लिए

नये रूपाकार में सारिका का यह अंक आपके हाथों में है. इस रूपाकार में हम आपको 100 पृष्ठों से अधिक की सामग्री 76 पृष्ठों में ही दे रहे हैं जबकि मूल्य में वृद्धि केवल 50 पैसे की ही हुई है. यदि आप वार्षिक चंदा हमें सीधे भेजें तो वर्ष में आपको 6 रुपये की और भी बचत हो सकती है. आपको करना केवल इतना है कि अपने शुल्क का राशि हमें बैंक ड्राफ्ट/मनी आर्डर/पोस्टल आर्डर सहित नीचे दिये गये कूपन के साथ तत्काल भेज दें.

शुल्क की रियायती दरें इस प्रकार हैं :

देश में (बंगलादेश, नेपाल सहित)

वार्षिक : 90 रुपये

छमाही : 47 रुपये

विदेश में सिर्फ समुद्री डाक से :

144 रुपये वार्षिक

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह मास के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम ....

पता ....

....

....

हस्ताक्षर ....

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें.

मुख्य प्रसार प्रबंधक
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

अगला अंक

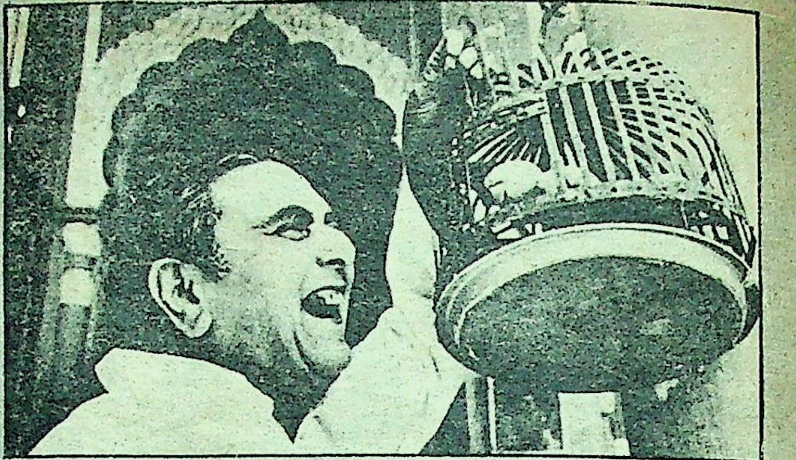

17 अगस्त : नागरजी के जन्म दिवस पर एक विशेष आयोजन...

कब लौं कहौ लाठी खाया करें, कब लौं कहौ जेल भरा करिए!

सन् 1929 में साइमन कमीशन के लखनऊ पहुंचने पर उसके विरोध में निकाले गये जुलूस पर लाठी प्रहार और अत्याचार देखकर अपनी प्रथम रचना के रूप में यह छोटी-सी कविता लिखकर अपना साहित्यिक जीवन शुरू करनेवाले तेरह वर्षीय एक किशोर और आज के कथा-सम्राट का नाम है—अमृतलाल नागर

अपने जीते-जी अपने-आप में हिंदी साहित्य की विरासत बन जानेवाले पद्मभूषण अमृतलाल नागर के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व को उनकी समग्रता में आलेखित कर रहा है—

सारिका : रजत जयंती वर्ष का सोलहवां विशिष्ट उपहार—

अमृतलाल नागर विशेषांक

"आखिर आप किस उम्मीद पर जिंदा हैं ?"—एक सवाल और नागरजी का जवाब.

- नागरजी की कहानियां, उपन्यास, संस्मरण, एक संस्मरण अपनी स्वर्गीया धर्मपत्नी के नाम, रिपोर्ताज, व्यंग्य, रेखाचित्र और खतो-किताबत आदि.
- नागरजी के निकट रहे प्रियजनों के नागरजी से संबंधित दुर्लभ संस्मरण एवं रेखाचित्र, जिनके संभावित हिस्सेदार हैं—नरेश मेहता, जैनेंद्र कुमार, नरेंद्र शर्मा, धर्मवीर भारती, श्रीलाल शुक्ल, ठाकुर प्रसाद सिंह, कुंवर नारायण, प्रभाकर माचवे, घनश्याम अस्थाना, बीर राजा, इंदुप्रकाश पांडेय, अभिमन्यु अनत एवं तोशो तनाका आदि.
- नागरजी से साक्षात्कार
- आत्मावलोकन : नागरजी की कहानी 'ओकेरी सरकार' और उस पर जैनेंद्र कुमार की समीक्षात्मक टिप्पणी.

सारिका

पाठकों एवं शोधार्थियों के लिए सदैव संग्रहणीय विशेषांक

खरीदना न भूलें, पढ़ना न भूलें 16 अगस्त, 1985

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar